सटीकं सानुवादञ्च

❀ ललितमाधवनाटकम् ❀

रचयिता—

रागानुगाचार्य्य :

श्रीमद्रूपगोस्वामी

प्रकाशक—

कृष्णदासबाबा

प्रकाशितग्रन्थ-संख्या—१३८.

* श्रीश्रीगौरहरिर्जयति *

श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित—

* ललितमाधवनाटकम् *

कयाचित् प्राचीनटिप्पन्या समलङ्कृतम्

कुसुमसरोवरनिवासिना कृष्णदासेन

हिन्दीभाषया सुपरिष्कृतम् ॥

सम्बत्—२०२४

गुरुपूर्णिमा

न्योछावर—रु० १२.५० पैसे

प्रकाशक

कृष्णदासबाबा

कुसुमसरोवर

मुद्रक—

गौरहरिप्रेस, कुसुमसरोवर, (गवालियरमन्दिर)

राधाकुण्ड (मथुरा)

समर्पणपत्रम्—

श्रीश्रीमद्राधारमणचरणदासदेव (बड़ेबाबाजी) के
अनुगत, संकीर्त्तन–प्रचारक, नित्यलीला-
प्रविष्ट, गुरुदेव, श्रीबाबाजीमहाराज (श्री-
श्रीरामदासबाबा) के पुनीत स्मरण
में यह ग्रन्थ प्रस्तुत होकर
समर्पित है ।

❀ दो शब्द ❀

प्रस्तुत नाटक "ललितमाधव" का यह सुन्दर अनुवाद संस्कृत, बंगला और हिन्दी के ममज्ञ विद्वान् बाबा कृष्णदासजी द्वारा किया गया है । बाबा कृष्णदास का जन्म अब से ५८ वर्ष पूर्व में हुआ था वे नवद्वीप समाजबाड़ी बंगाल में अपने गुरुस्थान मे बाल्यावस्था में कुछ दिन रहे । बाबा कृष्णदासजी महाप्रभु-सकीर्त्तन के प्रसिद्ध सिद्ध-पुरुष बाबा रामदासजीके शिष्य हैं ।

सोलह वर्ष की आयु में ही बाबा कृष्णदास भगवान् कृष्ण की पावन-पुनीत क्रीड़ा-स्थली ब्रजभूमि में आ गये थे । विगत् वयालीस वर्षों से वह निरन्तर ब्रज के समस्त पवित्र तीर्थ-स्थलों में निवास तथा भ्रमण करने के साथ साथ अनेक अप्राप्य हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज करते रहे हैं ! आपका कार्य प्राचीन साहित्य की पुस्तकों की खोज, अध्ययन और अनुशीलन का रहा है । विगत् कितने ही वर्षों से बाबा कृष्णदासजी कुसुमसरोवर स्थित गवालियर वाला मन्दिर में व्यवस्थापक रूप में निवास कर रहे हैं । निवास-स्थान क्या है—इसे बाबा कृष्णदासजी का साधना-स्थल कहा जाय तो अधिक उपयुक्त होगा । कोई कल्पना नहीं कर सकता कि एक शरीर से दुबला पतला संत अपने इस जावन-काल में इतना विशाल कार्य कर सकेगा और वह भी उस दशा में जब कि आज के इस भीषण युग में समस्त सुविधाओं और साधनों का अभाव हो । बाबा प्रातः से सायंकाल तक अपने दुबले पतले शरीर से निरन्तर लिखने, अनुसन्धान-अनुशोलन-शोध करने और अप्राप्य ग्रन्थों का वंगला तथा सस्कृत से हिन्दी अनुबाद करने में अनवरत्

परिश्रम करते रहते हैं । अब तक लगभग १५० पुस्तकों का प्रकाशन बाबा कृष्णदासजी कर चुके हैं।

उनकी हार्दिक कामना है कि भक्ति, साहित्य, अलङ्कार, लक्षण-ग्रन्थ आदि जिन ग्रन्थों का उन्होंने प्रकाशन कराया है इसका सम्यक् पठन पाठन हो—जब साधारण उससे लाभान्वित हो सकें। सबसे बड़ी उनकी कामना है कि उनके इस विशाल-पुस्तकालय में जहाँ भोज-पत्रों पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ सुरक्षित हैं इसकी उचित व्यवस्था हो जाय। अनेक शोधकर्त्ता छात्र अपनी प्रतिभा से इनग्रन्थों से लाभ उठासकते हैं। बाबा के इस भण्डार में अनेक रत्न ऐसे छिपे हैं जो आज के स्नातकों को एक वृहद्कायक्षेत्र प्रदान कर सकते हैं। प्रस्तुत नाटक बहुत ही सुन्दर एवं अनुपम है जो दसअङ्कों में समाप्त हुआ है। क्रीड़ाकुञ्जविहारी श्रीकृष्ण, राधा-चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, श्यामला आदि की लीलाओं मिलन-संयोग और वियोग शृङ्गार के दोनों पक्षों का अनुपम दृश्य उपस्थित करता है जिसके रसास्वादन में पाठक भाव-विभोर होकर अलौकिक आनन्द में निमग्न हो जाता है। इस नाटक की सर्वोत्तम विशेषता इसके दशम अङ्क में है जहाँ नन्दबाबा, यशोदा, राधा, चन्द्रावली आदि सबका द्वारिकापुरा में श्रीकृष्ण से मिलन होता है। नाटक सुखान्त है और भरतमुनि द्वारा प्रणीत नाट्य-साहित्य का समस्त परम्पराओं और विशेषताओ से परिपूर्ण है।

बाबा कृष्णदास ने इसका सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है जिसमे मूल ग्रन्थ का ही आनन्द प्राप्त होता है। आशा ह भक्त समुदाय इस साहित्यिक कृति से पूर्णतः लाभान्वित होगा।

प्रधानाचार्य—
राजकोय दीक्षाविद्यालय गोवर्द्धन
(मथुरा)

बद्रीप्रसाद सारस्वतः
एम० ए० एल० पी०
साहित्यरत्न

* प्राक्कथन *

महाप्रभु चैतन्य का आविर्भाव वैष्णव इतिहास में नवीन चेतना, नव-जागरण और नूतन-निर्माण के लिये ही नहीं वरन् उस क्रान्ति के लिये भी हुआ—जिसने एक ओर विश्रृङ्खलित बौद्ध खण्डहरों के मलवे से जन-मानस का परिष्कार किया तो दूसरा ओर आचार्य शङ्कर के मायावाद की घनी और दुर्गम झाड़ियों की भूल भुलैयों से भक्तों को अङ्गुली पकड़ कर दिशा-निर्देश किया। धर्म की हानि के समय, धर्म की रक्षा का दायित्व अपने ऊपर लेकर भक्त को आश्वस्त करने वाले भगवान् ने धर्म के भ्युत्थानार्थ जिन विभूतियोंको उत्तरदायित्व दिया, उनमें भगवान् महाप्रभुचैतन्य और उनका परिकर आचार्यपाद रूप और सनातन आदि गोस्वामी-वृन्द थे, जिन्होंने धर्म के अभ्युत्थानार्थ नाम सङ्कीर्तन एवं लीलानु-करण, धर्मस्थलों का जीर्णोद्धार और धर्म ग्रन्थों का सृजन किया। आचार्य रूपगोस्वामी द्वारा भक्ति के सूत्रों का परिवर्त्तित परिस्थि-तियों के अनुरूप लोकोपकारी दृष्टि से प्रस्तुतीकरण वैष्णवसाहित्य की वह अमूल्य निधि है जिसके सहारे वैष्णवधर्म और वैष्णवजन अन्य धर्मों की तुलना में अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

गोस्वामीजो के साहित्य में हम केवल साहित्यकता की खोजें तो यह गोस्वामीजो के प्रति न्याय न होगा, क्यों कि उन्हें साहित्य का भण्डार भरने की न तो आवश्यकता थीं न अपेक्षा ही। फिरभी यदि पण्डितगण आत्म-सन्तोष के लिये उनके साहित्य को अल-ङ्कार शास्त्र की कसौटी पर कसें तो उन्हें रञ्च-मात्र भी निराशा न होगी। उनका साहित्य खरा सोना ही है जिसे किसी भी परीक्षा-विधि से अन्यथा सिद्ध नहीं किया जा सकता। यहाँ छन्दः और

अलङ्कार दोनों ही प्रचुर मात्रा में स्वाभाविक रूप से आये हैं। छन्दों की दृष्टि से जितनी विविधता आचार्यरूप के वाङ्मय में दृष्टिगत होती है वह अन्य किसी आचार्य में शायद ही मिले। छन्द: सर्वथा त्रुटि हीन और विषयानुकूल मिलेंगे। विस्तार भय से उनका विस्तृत विवेचन यहाँ सम्भव नहीं। यह तो रुचि-सम्पन्न विद्वानों के लिये पृथकत: साहित्य सेवा का अवसर दे सकता है।

ललितमाधव और विदग्धमाधव आचार्यरूपगोस्वामी के वाङ्मय की श्री-वृद्धि करने वाले अप्रतिमरत्न है। इन मनोहर नाटकों के आधार पर कितने ही हिन्दी और वंगला नाटकों की रचना हुई। इनके विषय से सम्बधित अनेक नाटक ब्रजप्रदेश के रङ्गमञ्चपर एक मात्र गोस्वामीजी द्वारा प्रतिपादित उज्ज्वल रस का प्रज्ञान कराने के लिये खेले गये। इन नाटकों की अनेक अनुकृतियाँ हुईं, अनेक अनुवाद हुए और भक्तों ने बड़े मनोयोग के साथ उनका रसास्वादन किया। ललितमाधव और विदग्धमाधव यथार्थ रूप से दो पृथक नाटक नहीं। श्रीकृष्ण की माधुर्य और ऐश्वर्य मूर्तियों का दो पृथक् रूपों में चित्रण इन नाटकों के पार्थक्य का कारण है।

श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु में जिन रसोंका और उज्ज्वलनीलिमणि में जिस उज्ज्वलरस का प्रतिपादन किया गया था वह सैद्धान्तिक दृष्टि से कितनाभी पुष्ट क्यों न रहा हो परन्तु प्रयोगात्मक रूप से प्रस्तुती· करण की अपेक्षा रखता था। इसी दृष्टि से दृश्य और श्रव्य दोनों ही काव्यों में इन रसों का सम्यक् परिपाक आचार्य रूप को आव· श्यक प्रतीत हुआ। यह निर्विवाद सत्य है कि ललितमाधव, विदग्धमाधव और दानकेलिकौमुदी शताब्दियाँ तक ब्रजभूमि के रङ्गमञ्च से, भक्तों के हृदय में भक्ति रस की धारा प्रवाहित करते रहे। इन नाटकों ने भक्ति के अङ्कुरों को प्रस्फुटित कर अधिक

दृढ़ और शक्तिशाली रूप प्रदान किया।

बहुत दिनों से मेरी उत्कट अभिलाषा थी कि ललितमाधव और विदग्धमाधव नागरी लिपि में उपलब्ध हो। आज बाबा कृष्णदासजी कुसुमसरोवरवालों की कृपा से यह आकांक्षा पूर्ण हुई है। ललितमाधव का हिन्दी अनुवाद और टीकाओं सहित मुद्रण आवश्यक था। भक्ति-रस के सम्यक् बोध के लिये इन टीकाओ का अवलम्बन आवश्यक है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी के विद्वान् और सहृदय रसिकजन इस मुद्रण की सहायता से आचार्य-रूपगोस्वामी के दिव्यसाहित्य का आस्वादन कर सन्तोष लाभ करेंगे।

बाबा कृष्णदास ने वैष्णवसाहित्य के प्रचार और प्रकाशन का जो महत्वपूर्ण कार्य किया है वह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। उनके परिश्रम के लिये मैं श्रद्धापूर्वक साधुवाद देता हूँ।

बाबा कृष्णदासजी चाहते हैं कि अब कुछ उत्साही, उदार, विद्वान्, भक्त और साहित्य-मर्मज्ञ उनके इस कार्य में सक्रिय हाथ बटा कर अपना पूर्ण सहयोग देकर इसे निरन्तर बढ़ाते रहें क्यों कि अब उनका स्वास्थ्य अनवरत् परिश्रम और आयु के कारण गिरता जा रहा है। तो भी मैं प्रभु से उनके दीर्घजीवन की प्रार्थना करता हूँ।

लज्जाराम ललाम

एम० ए०

प्रधानाचार्य, श्रीवृन्दावनविद्यापीठ

वृन्दावन (यू० पी०)

दि० ४-७-६७

केशवदेव शर्मा
एम० ए० पी० एच० डी०,
सेंट्रल हिन्दी इन्स्टीट्यूट,
(आगरा)

मुझे अपनी हार्दिक भावना व्यक्त करते हुए अति प्रसन्नता है कि अब में अपने जीवनदर्शक बाबा कृष्णदासजी महाराज के विषय में एक दो शब्द लिख रहा हूँ। मेरा बाबाजी से सर्वप्रथम परिचय सन् १९६० में मथुरा में डा० नारायणदत्त शर्मा द्वारा कराया गया जब में "चैतन्यदर्शन एवं अन्य वैष्णवदर्शन" नामक विषय लेकर अपना पी० एच० डी० संबन्धी शोधकार्य कर रहा था।

बाबाजी ने वास्तव में इस क्षेत्र में मेरी अपूर्व सहायता की है तथा आज भी वे मेरे डी० लिट सम्बन्धी शोधकार्य में अत्यन्त रुचि ले रहे हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बाबाजी गौड़ीयप्रदर्शन के क्षेत्र में एक ही स्तम्भ हैं। वे मुझे समय समय पर मुद्रित तथा अमुद्रित अनेक पुस्तकें प्रदान कर सहायता करते रहते हैं। उन्हीं के बल पर मैंने गौड़ीय बेदान्ताचार्य परीक्षा संस्कृत विश्वविद्यालय, से उत्तीर्ण की है। "षट्सन्दर्भ" सम्बन्धी शोधकार्य की डीलिट के क्षेत्र में उन्हीं का प्रसाद है।

अतएव मेरी हार्दिक कामना है कि बाबाजी शोधकर्त्ता तथा वैष्णव दर्शन-प्रेमियों का हित करने के लिए अधिक से अधिक जीवन प्राप्त करें जिससे इस क्षेत्र में भारतदेश सुसम्पन्न हो सके।

गौड़ीय वैष्णवदर्शन के प्रख्यात विद्वान् बाबा कृष्णदासजी ने ललितमाधवनाटक का प्रकाशन करते हुए एक अत्यन्त अभाव की पूर्त्ति की है। यह उनका कार्य इस कारण से और भी स्तुत्य है कि

उन्होंने ग्रन्थ के साथ ही हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किया है तथा भूमिका भो लिखी है। इस कारण यह ग्रन्थ बोधगम्य तथा सर्व-सुलभ बन गया है।

इस नाटक में अधिक प्रभावपूर्ण स्थल चतुर्थाङ्क है जिसमें दिखाया गया है कि उद्धव एवं पौर्णमासीदेवी के प्रयत्न से द्वारिका में ब्रज-लीला नाटक का अभिनय होता है जिसको पौर्णमासी की प्रार्थना से भरतमुनि ने बनाकर नारद को दिया है। नारद ने तुम्बुरु को एवं तुम्बुरु ने गन्धर्व को सिखाया था। गन्धर्वगण द्वारका में लीलाभिनय करते हैं तथा विरहपीड़ित श्रीकृष्ण नाटक के दर्शक हैं। वे अपने रूप-माधुर्य में मोहित होकर उसके आस्वादन के लिए राधासारूप्य की वाञ्छा करते हैं।

केशवदेव शर्मा

ता० ४-७-६७,

एम० ए० पी० एच० डी०

सेंट्रल हिन्दी इन्स्टीटयूट,

(आगरा)

* जयगौर *

सर्व साधारण हिन्दी भाषा भाषी एवं धार्मिक जनता को जानकर अत्यन्त आनन्द होगा कि एक परम भागवत निःकिंचन वंग-भाषी महन्त श्रीकृष्णदास बाबाजी मैनेजिंग सदस्य श्रीकृष्ण-चैतन्यालय कुसुमसरोवर श्रीराधाकुण्ड-वासी ने अब तक हिन्दी

राष्ट्र भाषा में स्वयं (कुछ) अनुदित और अप्राप्य ब्रजभाषा के १५० ग्रन्थों को प्रकाशित करके हिन्दी राष्ट्र भाषा का मानवर्द्धन किया है । ब्रजभाषा और संस्कृत के अप्राप्य साहित्य को खोज करके श्रीमन्माध्वगौड़ीय साहित्य को जनता के प्रकाश में लाकर गौरवशाली हुए हैं। जो ग्रन्थ वंगभाषा या केवल संस्कृत में प्रकाशित थे और जो अप्राप्य थे उनको राष्ट्रभाषा में अनुवाद के द्वारा प्रकाशित करके यशस्वी हुए हैं।

उन ग्रन्थों में कुछ ग्रन्थों का संक्षेप में परिचय बाबाजी की भूमिका के द्वारा ज्ञात होगा। श्रीमन्माध्वगौड़ीयसंप्रदाय के प्रमुख आचार्य्य प्रवर रसिकाचार्य्य-सब रस एवं विशेषतः अप्राकृत उज्वल राधागोविन्द के रस के प्रवर्तक प्रभुवर श्रीमद्रूपगोस्वामि चरण के द्वारा विरचित ग्रन्थों में—उज्वलनीलमणि, ललितमाधव एवं दानकेलिकौमुदी जो श्रीराधागोविन्द की अप्राकृत लीलाओं के अत्यन्त निगूढ़ मार्मिक भावों को प्रकट करने वाले ग्रन्थ हैं।

उन अपूर्व ग्रन्थों को उक्त महन्त बाबाजी ने प्रकाशित करके राष्ट्रभाषी जनता का महान् उपकार किया है और धन्य भागी हुए हैं।

अन्त में— मैं अपने प्रिय महन्त बाबाजी के लिये श्री गौरसुन्दर से प्रार्थना करता हूँ कि वह इसी तरह से अप्राप्य ग्रन्थों का राष्ट्रभाषा में प्रकाशित करके हिन्दी राष्ट्रभाषा भाषी जनता के लिये श्रीमन्माध्वगौड़ीय साहित्य प्रकाशन करते रहे और चिरायु रहे।

तुम्हारा ही—

गोस्वामी दामोदराचार्य

श्रीराधारमणमन्दिर, श्रीवृन्दावन।

आषाढ़ कृष्णा १४

गुरुवार, २०२४

* मुखबन्ध *

विदग्धमाधव की समाप्ति काल १५८६ सम्बत् में तथा ललित-माधव की समाप्ति काल १४५६ शकाब्द ज्येष्ठमास चतुर्थी तिथि है। भद्रवन में इस की समाप्ति हुई। १७८६ शकाब्द में नित्यानन्दवंशीय श्रीस्वरूपगोस्वामि ने "प्रेमकदम्ब" नामक इस का एक वंगभाषा में पद्यानुबाद किया है। साहित्यदर्पणमें नाटकके जो समस्त लक्षणादि बतलाये गये हैं वे समस्त आद्याचार्य भरतमुनि के मत में सम्पूर्ण अनुरूप नहीं हैं और उतने संगत भी नहीं है। अतएव ग्रन्थकार रूपगोस्वामी ने भरतमुनि के नाट्यशास्त्र एवं रससुधाकर के मतानुसार नाट्यशास्त्र की समस्त लक्षणावली का विश्लेषण करके "नाटकचन्द्रिका" नामक ग्रन्थ की रचना की। उस नाटकचन्द्रिका के समस्त उदाहरण का स्थल यह ललितमाधवनाटक जानना। नाटकचन्द्रिका के साथ इस का मिला कर पठन-पाठन करने से हृदय में अपूर्व माधुर्यास्वादन होगा।

श्रीरूपगोस्वामिपाद महोदय ने अपने नाट्यशास्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "नाटकचन्द्रिका" में जो लक्षण दिये हैं उनके उदाहरण प्राय: समस्तरूप से ललितमाधवनाटक में पाये जाते हैं। नाटकचन्द्रिका में नाटकलक्षण की परिराटी इस प्रकार हैं—

नायक के दिव्य, अदिव्य एवं दिव्यादिव्य ये तीन भेद ; ख्यात, मिश्र एवं क्लप्त भेद से तीन प्रकार इतिवृत्त; प्रस्तावना; आशीर्वाद नमस्कार एवं वस्तुनिर्देश भेद से तीन प्रकार नान्दी ; प्ररोचना ; कथोद्घात, प्रवर्त्तक, प्रयोगातिशय, उद्घाटक एवं अवलगित भेद से पाँच प्रकार आमुख ; सन्धि ; वीज-विन्दु-पताका-प्रकरी एवं प्रधानकार्य तथा अगकार्य रूप से पाँच प्रकार प्रकृति ; आरम्भ, यत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति एवं फलागम यह पञ्च अवस्था ; मुख,

प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, एवं उपसंहृति भेद से पाँच प्रकार सन्ध्यंग ; द्वादश प्रकार बीजभेद, त्रयोदश प्रकार प्रतिमुखसन्धिभेद, चौदह प्रकार निर्वहण – सन्धि – भेद, इक्कीस प्रकार सन्ध्यन्तर, छत्तीस प्रकार भूषणभेद, चार प्रकार पताकास्थान ; विष्कम्भक-चूलिका-अंकास्य-अंकावतार, प्रवेशकादि अर्थोपक्षेपक, स्वगत, प्रकाश, जनान्तिक आदि नाट्योक्तिसमूह, अङ्क का स्वरूप, अङ्क-संख्या; नाटक का रस; संस्कृत एवं प्राकृत आदि भाषा का विधान, भारती आदि वृत्तिचटुष्टय; नर्म एवं रस का विभेद; इत्यादि विषय लक्षण एवं उदाहरण के साथ वर्णित हैं। इन समस्त नाटकभेदों के उदाहरण "ललितमाधव" से लिए गये हैं।

प्रस्तुत इस "ललितमाधवनाटक" के साथ जो टिप्पनी दी गई है उस के रचयिता सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं है। श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्त्ति के सम्बन्ध में यह सन्देहास्पद है कि—टिप्पना के आदि व अन्त में कहीं पर किसी प्रकार वर्णना व पुष्पिकादि नहीं है। केवल मूलग्रन्थ की व्याख्या हुई है। कोई कोई श्रीजीवगोस्वामिपाद के शिष्य श्रीराधाकृष्णदासजी इस के रचयिता ऐसा कहते हैं॥

इस ललितमाधवनाटक के प्रकाशन में आधारभूत दो संस्करण मुझे मिले। एक तो श्रीरामनारायणविद्यारत्न महोदय, वहरमपुर के द्वारा संकलित सस्करण, दूसरा वसुमती–साहित्यमन्दिर से श्रीसतीशचन्द्रमुखोपाध्याय महोदय द्वारा प्रकाशित संस्करण। इन दोनों संस्करण की सहायता से हम सुखपूर्वक इस ग्रन्थप्रकाशन में समर्थ हुए। दोनों संस्करण के अनुवाद से हमें यथेष्ट सुविधा मिली। श्रीपुरीदास–महोदय के संस्करण से भी काफी सहायता प्राप्त हुई॥

मैं इन सबका आभारी हूँ अलमति-विस्तरेण॥

इति कृष्णदासबाबा

उत्तरप्रदेश के राज्यपालमहोदय एवं अन्य महानुभावों द्वारा बाबा कृष्णदास को प्रमाणपत्र

ईंग्लिश से हिन्दी अनुवाद

राज्यपाल
उत्तर-प्रदेश

राज्यपालशिविर
उत्तर-प्रदेश
लखनऊ
अप्रैल २७, १९६७.

गौड़ीय सम्प्रदाय के श्रीकृष्णदास बाबा, जो बाबा रामदास के शिष्य हैं और इस समय कुसुमसरोवर राधाकुंड मथुरा में निवास कर रहे हैं एक ख्याति प्राप्त लेखक हैं। इन्होंने उत्तरप्रदेश में भक्ति तथा सांस्कृतिक वातावरण को गौड़ीयगोस्वामियों के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद कर बहुत समृद्धिशाली बनाया है। यह एक विचित्र पहेली ही है कि मथुरा, वृन्दाबन और ब्रजभूमि जो भक्ति-ग्रन्थों का गोपकाल से प्रधान स्थान है वहाँ यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा में उपलब्ध नहीं थे। गौड़िया सम्प्रदाय के प्रधान लेखकों की लगभग १५० पुस्तकों का अनुवाद करने का श्रेय बाबा कृष्णदास को है। जिनका वितरण हो रहा है।

इस महान् उद्देश्य के निमित्त जो भी सहायता प्रदान की जाय उसे उचित ढंग से उपभोग में लाई हुई समझा जाय क्यों कि बाबा कृष्णदास एक सन्यासी का जीवन-यापन कर रहे हैं और उन्होंने इस सुन्दर उद्देश्य के लिए अपना जीवन पूर्णतः अर्पित कर दिया है। उनकी समस्त विद्वत्ता और उपलब्ध साधन इन पुस्तकों के प्रकाशित करने में लगे हुए हैं मेरी हार्दिक कामना है कि इस कार्य में निरन्तर उन्नति होती रहे।

विश्वनाथदास

ता० ६-१०-६४

यह अतिहर्ष का विषय है कि मैं जैसे ही दिल्ली विश्वविद्यालय में पी० एच० डी० के लिए काम करने लगी तो मुझे "वैष्णवदर्शन को बलदेवविद्याभूषण की देन" नामक विषय दिया गया। दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के रीडर, डाँ० रसिकविहारीजोशी ने मेरा मार्ग दर्शन किया कि इस क्षेत्र में मुझे बाबा कृष्णदासजी महाराज से पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकती है। फलस्वरूप मैं श्रीकृष्णचैतन्य मन्दिर, कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड में आई और मैंने वास्तव में बाबाजी महाराज को चैतन्यदर्शन का उद्भट्ट विद्वान् देखा। बाबाजी वैष्णव संप्रदाय की प्रकाशित अथवा अप्रकाशित पुस्तकों को प्रकाशित कराने का प्रयत्न में लगे हुए हैं।

वास्तव में बाबाजी की इस क्षेत्र में निस्वार्थ सेवा है। अतएव वे तथा उनके शिष्य श्रीविश्वम्भर दास प्रशंसा के पात्र हैं।

सुदेशकुमारीरहेजा
एम० ए० (संस्कृत) रिसर्च स्कालर,
दिल्लीविश्वविद्यालय, दिल्ली

हाईकोर्ट इलाहाबाद के चीफ जस्टिस के द्वारा—

आज २९ मई ६७ को गवालियरमन्दिर के दर्शन किए। महाराज कृष्णदासजी के दर्शन वहीं हुए। महाराज कृष्णदासजी ने बहुत से ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया है जो भगवत् प्रेमियों के लिए अमृत समान हैं।

महाराजजी की सेवा कोई मूल्य तो हो ही नहीं सकता परन्तु मानव समुदाय सदैव ही उनका अनुग्रहीत रहेगा॥

जगदीशसहाय

एच० पी० बागची, एम० ए० एल० एल० बी,
एडवोकेट, हाईकोर्ट, आगरा (यू० पी०)
ता० ५-१०-६५.

मुझे पण्डित केशवदेव शर्मा एम० ए० हिन्दी, एम० ए० संस्कृत, साहित्याचार्य तथा व्याकरणाचार्य से ज्ञात हुआ कि श्रीबाबा-कृष्णदासजी, जो कुसुमसरोवर, राधाकुण्ड (मथुरा) में निवास करते हैं, उनके पास एक ऐसा अगाध साहित्य है जो गौड़ीयवैष्णव संप्रदाय से सम्बन्धित है तथा जिसका प्रकाशन हिन्दी में हो रहा है । अतएव मैंने श्रीकेशवदेव शर्मा के साथ वहाँ जाने का निश्चय किया। मुझे अति प्रसन्नता हुई कि बाबाजी के पास "षट्सदर्भ" तथा "सिद्धान्तरत्न" आदि ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनका वे प्रकाशन कराने का इरादा कर रहे हैं। वे अब तक सौ से अधिक लघु एवं दीर्घ ग्रन्थों का प्रकाशन करा चुके हैं । यह कथन असंगत नहीं है कि भविष्य में इस प्रकार के कार्य के लिए एक बड़ी धनराशि की आवश्यकता है।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि राज्यसरकार इस कार्य के लिए अधिक से अधिक सहायता प्रदान करे जिससे इन अमूल्य गौड़ीय-वैष्णव ग्रन्थों की रक्षा हो सके । मैं प्रार्थना करता हूँ कि बाबा-कृष्णदास महाशय चिरजीवी वनें जिससे वे अधिक से अधिक कार्य कर सकें । बाबाजी महाराज पी० एच० डी० तथा० डी० लिट् के छात्रों का गोड़ीय दर्शन के क्षेत्र मे मार्गदर्शन करते रहते हैं, मैं इस कार्य के लिए उनको धन्यवाद देता हूँ ।

हरप्रसाद बागची

धन्यवाद-पत्र

साहित्यप्रेमी जिन जिन उदार प्रकृति सज्जनों से इस साहित्य-सेवा रूप प्रभु-प्रसाद में हार्दिक-सहानुभूति मिली तथा अकैतव-उत्साह मिला है उन महानुभावों को मैं धन्यवाद देकर अपनी वाणी को समाप्त करता हूँ।

(१) श्रीमान् विश्वनाथदासजी, राज्यपालमहोदय, (उत्तरप्रदेश)

(२) स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज, वृन्दावन,

(३) श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दार गोरखपुर,

(४) सेठ जयदयालजी डालमिया नई दिल्ली,

(५) श्रीमान् रामनारायणजी वैद्य, झाँसी,

(६) श्रीमान् लज्जाराम, ललामजी, वृन्दावन विद्यापीठ-प्रधानाचार्य,

(७) सेठ मूलचन्दजी, झारसुगुड़ा, सम्बलपुर (उड़िशा)

(८) श्रीमान् गोपालदासजी, डागा, (राधाकुण्ड)

(९) बाबा दीनेश शरणजी महाराज, वृन्दावन,

(१०) गोस्वामी दामोदरलालजी महाराज, वृन्दावन,

(११) श्रीयुक्त प्राणकिशोर गोस्वामी महोदय, कलकत्ता,

(१२) सेठ ताराचन्दजी, हाथरस,

(कृष्णदास)

ललित-माधव-नाटक की सारगर्भकथा

प्रथमाङ्कः—प्रारम्भ में ग्रन्थकार श्रीरूपगोस्वामीजी नाट्यशास्त्र के विधानानुसार ग्रन्थ-प्रतिपाद्य देवता श्रीकृष्णचन्द्र का प्रारम्भिक आशीर्वाद रूप मंगलाचरण का पाठ करते हैं। जिसको नाट्यशास्त्र में प्रस्तावना कहा जाता है। प्रस्तावना में नान्दी की जाती है, जो सुखरूप होती है।

मंगलस्तुति ही नान्दी का स्वरूप है। आपने "नाटकचन्द्रिका" नामक नाटक-लक्षणीय ग्रन्थ में कहा है—

"प्रस्तावनायास्तु मुखे नान्दी कार्या सुखावहा।
आशीर्नमष्क्रियावस्तुनिर्देशान्यातमा मता॥"

यह नान्दीपाठ तीन प्रकार का होता है। (१) आशीर्वाद (२) नमस्कार तथा (३) वस्तुनिर्देश।

प्रथम श्लोक में आशीर्वाद एवं द्वितीय श्लोक में नमस्कार का विधान किया गया है और साथ ही साथ वस्तुनिर्देश भी। द्वितीय-श्लोक में श्रीकृष्ण को मुदिर (मेघ) रूप से उपमित किया गया है। उस श्लोक में--

कृष्णपक्ष की व्याख्या:—जो श्रीकृष्ण आठों दिशाओं में रहने वाली श्रीराधा, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैव्या, श्यामला, एवं भद्रा, इन ब्रजरमणियों को निबिड़ श्रृङ्गाररस के सिंचन के द्वारा संतृप्त और कस्तूरीलिखित पत्र-भंगियों की शोभा के द्वारा सुन्दरियों का भूषण विधान करते हैं, पुनः जो निज विशाल हृदय में अतुलकान्ति वाली-श्रीराधा एवं चन्द्र से भी उज्वलकान्तिवाली चन्द्रावली को रखकर मन्द मन्द पदसंचार के द्वारा भ्रमण करते हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्र को हम नमस्कार करते हैं।

मेघपक्ष में—जो श्याममेघ अपने जल के द्वारा आठों दिशाओं को सिञ्चित और उत्पन्न मञ्जरियों की शोभा के द्वारा उपवन समूह को सुशोभित करता हुआ पुनः अपने विस्तृत-हृदय में सूर्य से उत्पन्न उज्वल कान्ति एवं उज्वल-चन्द्रशोभा को ढ़कता हुआ सञ्चारित होता है उस श्याम-मेघ के लिये हम नमस्कार करते हैं॥

तदनन्तर सूत्रधार आकर—ग्रन्थ लिखने का कारण निर्देश करता है कि-दीपावली अमावस्या में गोवर्द्धनपूजा के लिये राधा-कुण्ड के तट पर माधवमण्डप-मन्दिर के सम्मुख वैष्णवबृन्द उपस्थित हुए हैं, इधर बृन्दावन के निकुञ्जबिलास के रसिक, प्रफुल्ल-कमलों से शोभायमान ब्रह्मकुण्ड के निकट भूमि के अधीश्वर, भगवान् गोपीश्वरमहादेवजी से स्वप्न में आदेश प्राप्त कर निजरचित ललितमाधव नामक नाटक के द्वारा उन वैष्णवों की सेवा के लिए मैं अत्यन्त उत्सुक हो रहा हूँ। अब यहाँ सूत्रधार रूपगोस्वामीजी निज अभीष्ट देवता भगवान् कृष्णचैतन्यदेव का मङ्गलाचरण का पाठ करते हैं—

निजप्रणयितां सुधामुदयमाप्नुबन् यः क्षितौ
किरत्यलमुरोकृत्य द्विजकुलाधिराजस्थितिः ।
सलुञ्चिततमस्ततिर्मम शचीसुताख्यः शशी
बशीकृतजगन्मनाः किमपि शर्म्म विन्यस्यतु ॥ १ । ४ ॥

अर्थात्—जो पृथ्वीतल में उदित होकर निज उज्वल प्रेमरस श्रीरूप सुधा का वितरण करते हैं, जो द्विजकुल के अधिराज के रूप में प्रसिद्ध हैं, जिन्होने अज्ञान तम समूह का विनाश किया है और जो जगत् के जीवों के मन को हरण करने वाले है वे शचीसुत गौर-चन्द्र हमारा कल्याण विधान करें॥

कथा की सूत्ररूप से अर्थ-सूचना करने वाला सूत्रधार कहा

जाता है। यथा—नाटकचन्द्रिका में कहा है—

"सूत्रधारः स विज्ञेयः कथासूत्रार्थसूचकः" ॥

यहाँ पर श्रीरूपगोस्वामी ही सूत्रधार हैं। तदनन्तर—आकाशवाणी होती है कि—अहो सूत्रधार ! तुम किस प्रकार इस महा-साहस में प्रवृत्त हो रहे हो ?

अब सूत्रधार कहता है—तुम सत्य कहते हो परन्तु मैं पराधीन हूँ, महादेवजी की आज्ञा है, अवश्य ही इस का पालन करना है—

अब सूत्रधार दैन्यात्मकरूप दो श्लोक पाठ कर पुनः मस्तक में अञ्जली रख कर अपने पूज्य, जगद्गुरु सनातनगोस्वामी को प्रणाम करते हैं। उस श्लोक का तात्पर्य-चतुः सनों में (सनकादिकों) में तृतीय जो सनातन पहले इस जगत् में परमहंस धर्म का उपदेश करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं अब वे पुनः भक्तसमूह में साङ्गोपाङ्ग भक्ति-रहस्य का सञ्चार करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं, उन पूर्ण-स्वरूप सनातन नामक विश्वगुरु को प्रणाम करते हैं ॥

तदनन्तर—मुखरावेशधारिणी नटी रङ्गस्थल में उपस्थित होती है। यह मुखरा श्रीराधिका की नानी है, जो ब्रज में मान्य-गण्या एवं बृद्धा मानी जाती है। वह नटी रङ्गमञ्च पर आकर रङ्गमङ्गल विधान में अपने को असमर्थ बताती है परन्तु सूत्रधार उस को उत्साहित करता है। उससे नटी किसी महानुभाव की विपत्ति की आशङ्का को लेकर मनोगत खेदभाव को व्यक्त करती है। पुनः उस से सूत्रधार कहता है कि हे आर्य्ये ! महानुभावों की विपत्ति चिरस्थाई नहीं है। वह विपत्ति शीघ्र ही नाश हो जाती है। भक्तजन तम, रज, सत्वमय प्राचीन कर्म के द्वारा-नीचयोनि, नरयोनि, देवयोनि एवं नरकादि प्राप्त करता है। तो भी भगवान् उस भक्त को अपने चरण-प्रान्त में ले लेते हैं क्यों कि वे कभी अपने भक्त का परित्याग नहीं करते ॥

के साथ यमुना के कालियह्रद में पहुँचती है । पिङ्गला के निषेध करने पर भी वह नहीं मानती । इधर श्रीकृष्ण भी नववृन्दा को लेकर वहाँ उपस्थित होते हैं और राधिका को जलमग्ना देख कर स्वयं डूब जाते हैं। पुन: राधा को अपने स्पर्श सुख दे कर जल से उद्धार करते हैं। उसके बाद राधिका के साथ सबका मिलन-संलापन होता है। तदनन्तर चन्द्रावली के अनुमोदन से नन्दयशोदादि के समक्ष मे राधा का कृष्ण के साथ विवाह होता है साथ में पद्मा, शैव्या, भद्रा तथा श्यामला का भी। इस वृत्तान्त को जाम्बवान् के मुख से अवगत होकर पर्वतराज बिन्ध्य रैवतपर्वत के साथ द्वारकानगरी में उपस्थित होता है। उस समय गरुड़जी मृदुहास्य के साथ उन षोलह हजार कुमारियों को लाकर पर्ववेदी मे उपस्थित कराते हैं। इस प्रकार विवाहोत्सव का समाधान किया जाता है । इस विवाहपर्व में देवराज इन्द्र पुलोमजा शची को लेकर, कुबेर अपनी पत्नी ऋद्धि को लेकर, सूर्यनन्दन यम धूमोर्णा को लेकर, वरुण अपनी पत्नी गौरी को लेकर, सूर्य संज्ञा को लेकर, वायुदेव शिवा को लेकर, अग्निदेव स्वाहा को लेकर तथा चन्द्रदेव रोहिणी को लेकर द्वारका में उपस्थित हुए हैं।

इस प्रकार द्वारका में विवाहोत्सव होता है। तदनन्तर श्रीकृष्ण के आदेशानुसार राधिका अपने मनोगत भावव्यञ्जक वर की प्रार्थना करती है । जिसका "सख्यस्ता मिलिता निसर्गमधुरा" इत्यादि, "चिरादाशामात्रं त्वयि विरचयन्त:" इत्यादि और "या ते लीलापदपरिमलोद्गारिवन्या परीता" इत्यादि श्लोकत्रय के द्वारा चित्रण किया गया है। श्रीकृष्ण उसमें सम्मति प्रदान करते हैं।

इस प्रकार नाटक समाप्ति की गई है ॥

लेखक—कृष्णदासबाबा — कुसुमसरोवर

श्रीरूपगोस्वामीप्रभु के द्वारा रचितग्रन्थावली:—

(१) हंसदूत, (२) उद्धवसन्देश, (३) कृष्णजन्मतिथि-विधि, (४-५) गणोद्देशदीपिका बृहत्-लघु दोनों, (६) स्तव-माला, (७) विदग्धमाधव, (८) प्रस्तुत-ललितमाधव, (९) प्रस्तुत-दानकेलिकौमुदी, (१०) भक्तिरसामृतसिन्धु, (११) उज्ज्वल-नीलमणि, (१२) प्रयुक्ताख्यातचन्द्रिका, (१३) मथुरामहिमा, (१४) पद्यावली, (१५) नाटकचन्द्रिका, (१६) लघुभागवता-मृत, (१७) उपदेशामृत, (१८) निकुञ्जरहस्यस्तव, (१९) स्मरणमङ्गलस्तोत्र, (२०) विरुदावलीलक्षण।

इसके अतिरिक्त श्रीरूपगोस्वामिपाद के नाम से आरोपित अनेक स्तव व ग्रन्थ दिखने में आ रहे हैं—

(१) पञ्चश्लोकी, (२) प्रेमान्धस्तव, (३) उज्ज्वलचन्द्रिका, (४) गङ्गाष्टक, (५) साधनपद्धति, (६) श्रीकृष्णचैतन्यमहा-प्रभोः सहस्रनामस्तोत्रम्, (७) श्रीमन्नवद्वीपाष्टक, (८) श्रीराधा-ष्टक, (९) श्रीरूपचिन्तामणि, (१०) उपासनाविधि, (११) प्रेमसम्पुट ॥

इनमें से हमारे द्वारा सानुवाद देवाक्षर में प्रकाशित श्री-रूप प्रभु के ग्रन्थों का नाम—

(१) हंसदूत, (२) उद्धवसन्देश, (३-४) गणोद्देशदीपिका बृहत् लघु दोनों, (५) प्रस्तुत-ललितमाधव (६) प्रस्तुत-दानकेलि-कौमुदी, (७) उज्वलनीलमणि, (८) मथुरामहिमा, (९) निकुञ्ज-रहस्यस्तव, (१०) स्मरणमङ्गलस्तोत्र, (११) विरुदावलीलक्षण, (१२) श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभोः सहस्रनामस्तोत्र, (१३) उपासना-विधिसूत्रपाठ ॥

अवस्थित है इसे ब्रजलीलाउपासकों के प्रतीति उत्पादन कर देना और पुरली ा उपासकों के चित्त में पुरलोला का माध्यम से ब्रज-लीला का अनुपम माधुर्य को संचारित कर देना इस नाटक का महान् उद्देश्य है। प्रस्तुत यह ललितमाधव विदग्धमाधव से आकार में वृहत्तर है। विदग्धमाधव में सात अङ्क तथा ललितमाधव में दश अङ्क है। पात्र-पात्री की संख्या भी ललितमाधव में अधिक है। भगवान् गोपीश्वर महादेव के स्वप्नादेश से दीपावली-अमा-वास्यामहोत्सव में गोवर्द्धन आराधना के लिये राधाकुण्ड के तट-वर्त्ती श्रीमाधवमन्दिरप्रांगण में समागत वैष्णववृन्द की तुष्टि के लिये इस का अभिनय प्रवर्त्तित हुआ है यह सूत्रधार की उक्ति से जाना जाता है।

अस्तु—प्रारम्भिक अवस्था में मैं जब इस "ललितमाधव" का पठन-पाठन करता था तब मन में महती इच्छा होती थी कि इस का हिन्दी अनुवाद के साथ देवाक्षर में प्रकाशन हो, जिस से एतद्-देशी रसिक भक्त इस का अनुभव करें। आज प्रभु-कृपा से मेरा यह अभिलाषा सम्पूर्त्ति हुई कि जिस से हम सटीक हिन्दी अनुवाद के साथ देवाक्षर मे प्रकाशन में समर्थ हुए। सम्पादन में अधिक उपा-देय तब होता जब मूल-एवं टीका के साथ ही अनुवाद रहता। परन्तु पहले अनुवाद प्रस्तुत नहीं था। बाद में प्रस्तुत करके ही अनुवाद पाछे जोड़ दिया गया। सहज में बोध के लिये मैंने एक सारगर्भकथा लिखी। उस को भी इस में जोड़ दिये। आशा है रसिक-भक्त-विद्वान् इस का सरस आस्वादन करेंगे।

बाबाकृष्णदास—

श्रीश्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितं

ललितमाधवनाटकम्

प्रथमाङ्कः

श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ।

सुररिपुसुदृशामुरोजकोकान् मुखकमलानि च खेदयन्नखण्डः ।
चिरमखिलसुहृच्चकोरनन्दी दिशतु मुकुन्दयशःशशी मुदं वः ॥१॥

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।

अथ श्रीनन्दनन्दनान्तःपुरचरैर्भगवद्भक्तवरैः श्रीकृष्णचैतन्यकृपाधरैः श्रीमद्रूपगोस्वामिचरणैर्मदेकशरणैरुज्ज्वलनीलमणौ लक्षितं समृद्धिमदाख्यसम्भोगं स्फुटं दर्शयितुं विरच्यमानस्य ललितमाधवाख्यस्य ग्रन्थस्य प्रथमपद्यं व्याचक्षे सुररिपुसुदृशामित्यादि । मुकुन्दयश एव शशी वो युष्मभ्यं मुदं दिशतु । अखण्ड इत्यनेन पूर्णचन्द्रस्योपमानत्वं दर्शितम् । चन्द्रस्य सदातनपूर्णत्वाभावादस्य तत् सत्त्वाद्व्यतिरेकालङ्कारो वा । किं कुर्व्वन् सुररिपुसुदृशामुरोज एव कोकास्तान् मुखान्येव कमलानि च खेदयन् । अखिलाः सुहृद एव चकोरास्तान्नन्दितुं शीलं यस्य सः । आशीर्व्वादस्य प्राथमिकत्वात्तद्रूपमङ्गलं प्रथमं कृतम् । समस्तवस्तुविषयरूपकालङ्कारोऽत्र वाच्यः । अप्रस्तुतप्रसङ्गा व्यङ्ग्या । कंसादि–सुररिपुविशेषे नन्दादिसुहृद्विशेषे च वक्तव्ये सुररिपुमात्रस्य सुहृन्मात्रस्य च ग्रहणात् ॥१॥

अपिच ।

अष्टौ प्रोक्ष्य दिगङ्गना घनरसैः पत्राङ्कुराणां श्रिया
कुर्व्वन्मञ्जुलताभरस्य च सदा रामावलीमण्डनम् ।
यः पीने हृदि भानुजामतुलभां चन्द्राकृतिं चोज्ज्वलां
रुन्धानः क्रमते तमत्र मुदिरं कृष्णं नमस्कुर्म्महे ॥२॥

नान्द्यन्ते सूत्रधारः ।—अलमतिविस्तरेण । समन्तादवलोक्य । हन्त भोः ।

सन्तत-वृन्दाटवीनिकुञ्जवेदि-निवासदीक्षारसज्ञस्य स्फुरदुद्दण्ड-

---

"मुदिरः कामुके मेघे हर्षणे च निगद्यते" इत्यभिधानात् । कामुकं हर्षप्रदं वा । कृष्णनामानं यशोदास्तनन्धयम् । कृष्णं श्यामं मुदिरं मेघं वा । दिशि दिशि गता अङ्गनाः श्रीराधा चन्द्रावली ललिता विशाखा पद्मा शैव्या श्यामला भद्रा एकत्रीकृत्य ता घनरसैरङ्गाङ्गीभूत-निबिड़-शृङ्गारविशेषैः प्रोक्ष्य निषिच्य तर्पयित्वा । कस्तूर्य्या लिखितपत्रभङ्गानां शोभया । मनोज्ञातिशयस्य सम्पत्त्या सुन्दरीश्रेण्या मण्डनं कुर्व्वन् सर्व्वोत्कर्षेण वर्त्तते । वृत्त्यर्थे क्रमेरात्मपदम् । च पुनः उज्ज्वलाख्यवतीं चन्द्रतोप्युज्ज्वला आकृतिर्यस्यास्तां चन्द्रावलीं धारयन् । पक्षान्तरे तु यः कृष्णो मेघो अष्टौ दिशोऽङ्गना इव घनरसैर्मेघपुष्पं घनरस इत्यमरात् जलैः प्रोक्ष्य पत्राङ्कुराणां पुनर्मञ्जवो या लतास्तासामतिशयस्य च श्रिया शोभया सदा आरामावलीनामुपवनश्रेणीनां मण्डनं कुर्व्वन् । यः पीने हृदि भानुजां सूर्य्यजातां अतुलाभामतुल्यां कान्तिम् । च पुनरुज्ज्वलां चन्द्रस्याकृतिं रुन्धानः आवृण्वन् क्रमते तमित्यादि पूर्व्ववदुन्नेयम् ।"नान्दी नमस्क्रियान्विता वस्तुनिर्द्देशान्विता च" । वस्त्वत्र ललितादिषु तत्रापि राधाचन्द्रावल्योश्च कृष्णस्यानुरागस्तासां कृष्णे चेति ज्ञेयम् ॥२॥

राधा—(समाश्वस्य तिर्य्यक् कृष्णमवलोकते)।

कृष्णः—प्रिये ! भूयः किन्ते प्रियं करवाणि ?

राधा—(स्मितं कृत्वा) वहिरङ्गजनालक्ष्यतया श्रीगोकुलमपि स्वस्वरूपैरलङ्करवामेति ।

कृष्णः—प्रिये! तथास्तु, तदेहि स्वसुस्तवाभ्यर्थनामवन्ध्यां करवाम् ।

(इति सर्व्वैराबृतो निष्कान्तौ)

(इति निष्क्रान्ताः सर्व्वे)

इति श्रीललितमाधवनाटके पूर्णमनोरथो नाम दशमाऽङ्कः ॥१०॥

नाटके समुचितामीश्वरः स्वैरमप्रकटयन्नुदात्तताम् ।
ग्रत्र मन्मथमनोहरो हरिर्लीलया ललितभावमाययौ ॥

इति श्रीललितमाधवाख्यं नाटकं समाप्तम् ॥

गार्गीति । "समाश्वसिहि समाश्वसिहि" ।

राधेति । वहिरङ्गजनैरलक्ष्यतया तदीयैः स्वरूपैः स्वस्य च स्वरूपैरित्यर्थः ।

कृष्ण इति । तव स्वसुश्चन्द्रावल्या ग्रभ्यर्थनां युष्मत्पाणिग्रहणरूपाम् ग्रवन्ध्यां सफलाम् ।

इति श्रीललितमाधवनाटके पूर्णो गोपीनां कृष्णकर्त्तृकस्वपरिणयरूपो मनोरथो यत्र सः । पूर्णमनोरथो नाम दशमोऽङ्कः ॥

नाटकेति । उदात्ततां उदात्तनायकताम । ललितं लालित्यम् ।

इति श्रीललितमाधवाख्यनाटकटिप्पनी सम्पूर्णा ॥

परिशिष्ट

पूर्णं कलाचतुःषष्टया लक्षणैर्भूषणैरपि ।
भजन्तु श्रितगान्धर्व्वं धीरा ! ललितमाधवम् ।
नन्देषुवेदेन्दुमिते शकाब्दे
शुक्रस्य मासस्य तिथौ चतुर्थ्याम् ।
दिने दिनेशस्य हरिं प्रणम्य
समापयं भद्रवने प्रबन्धम् ।
तटस्थेनापि गम्भीरे रसस्रोतसि यन्मया ।
सर्व्वतोमुखमाकीर्णं तत् क्षमध्वं मनीषिणः ॥

पूर्णमिति । पूर्व्वोक्तया कलाचतुःषष्टया लक्षणैर्नाटकलक्षणैः । पक्षे, द्वात्रिंशल्लक्षणैः । भूषणैः । नाटकभूषणैः पक्षे, कौस्तुभादिभूषणैः । श्रिता: गान्धर्व्वाश्चतुर्थी नाटकोक्ता येन स तम् । पक्षे,श्रिता गान्धर्व्वा राधा येन तम् ।

नन्देति । चतुर्द्दशशत्येकोनषष्टिशाके । ज्यैष्ठमासस्य चतुर्थ्यां तिथौ सूर्य्यवारे प्रबन्धं ग्रन्थम् ।

तटस्थेति । गम्भीरे रसस्रोतसि तटस्थेनापि ,मया यत् सर्व्वतोमुखं जलम् । कबन्धमुदकं पाथः पुष्करं सर्व्वतोमुखमित्यमरः । पक्षे, सर्व्वत्र स्रोतसि मुखमाकीर्णं निक्षिप्तमित्यर्थः ।

❀ श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ❀

भाषा—ललितमाधव

प्रथमाङ्क

असुर-रमणियों के स्तन रूप चक्रवाक एव उनके मुखकमल को जिसने म्लान किया है, जो समस्त सुहृद्चकोर गण को आनन्द प्रदान करता है वह अखंड मुकुन्द-यश चन्द्रमा सवदा तुम सब का आनन्द विधान करें ॥१॥

और भी—उस कृष्णमेघ को हम सब नमस्कार करते हैं—जो कि निविड़ जलों से निदाघ ताप तापित आठ दिशा-वधूओं को अभिसिंचित करता है एवं मञ्जुलतावली में पत्रांकुर समुद्गत करा कर उपवनों को शोभित करता है, और जो अपने पीनोन्नत वक्षः में सूर्य्य की अतुलनीय आभा एव चन्द्रमा की उज्वलकान्ति को आवृत्त कर भ्रमण करता है ॥

कृष्णपक्ष में—कृष्ण रूप यशोदानन्दन उन श्यामसुन्दर को हम नमस्कार करते हैं, जिन्होंने विरह सन्तापित नाना दिशाओं में प्राप्त श्रीराधा, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैव्या, श्यामला एवं भद्रा नाम्नी अष्ट नायिकाओं को एकत्र कर निविड़ आनन्द रस में अभिषिक्त किया अर्थात् आंगीभूत निविड़ शृङ्गार रस विशेष से तृप्त किया, पत्रावली रचना के द्वारा उन ब्रजवालाओं को सौन्दर्य्य-मण्डित किया, और जो अतुल्यदीप्तिवाली वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा तथा चन्द्र से भी उज्ज्वल कान्तिवाली चन्द्रावली को निज पीनोन्नत वक्षः में धारण कर भ्रमण कर रहे हैं ॥२॥

नान्दीपाठ के बाद सूत्रधार रङ्गस्थल में आकर कहता है—

सूत्रधार—अधिक कहने का प्रयोजन नहीं है (चारों ओर देख कर) अहे नटगण ! सुनो,

निरन्तर बृन्दावन की निकुञ्जवेदी में निवास रूप दीक्षारस मर्म्म का जानने वाले, प्रफुल्ल एव उद्ध्वनाल वाले कमलों से मण्डित ब्रह्मकुण्ड के निकट भूमि के अधीश्वर, गोपीश्वर करके प्रसिद्ध, भगवान् चन्द्रशेखर देव के स्वप्नादेश निदेश से दीपावली उत्सव के प्रारम्भ में श्रीगोवर्द्धन आराधन के लिये राधाकुंड तटस्थ माधवी-माधव मन्दिर की पूर्वदिशा में वैष्णवबृन्द उपस्थित हुए हैं। मैं निजरचित ललितमाधव नामक नाटक के द्वारा उनकी सेवा के लिये उत्सुक हो रहा हूँ ॥३॥

अतः पहले अपने अभीष्टदेव (श्रीकृष्णचैतन्यदेव) के निकट प्रार्थना करता हूँ—

जिन्होंने क्षितितल में उदय होकर निज प्रेमसुधा को प्रचुर परिमाण में विकीर्ण किया है, जिन्होंने द्विजकुलाधिराज नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की, वे समस्त तमः नाशन, जगमनः वश कारी शची-सुत नामक चन्द्रमा हमारा कल्याण विधान करें ॥४॥

(आकाश में कान देकर)

क्या कहते हो ? अहो ! तुम इस प्रकार महान् साहस कार्य में क्यों उद्योगी हो रहे हो। भो ! यह सत्य ही दुःसाहस है, मैं जानता हूँ तो भी मैं पराधीन हूँ अर्थात् महादेवजी से आज्ञा प्राप्त हूँ, सुनिये ॥५॥

कहाँ तो यह गुणवती सभा और कहाँ मूढ़बुद्धि वाला मैं। परन्तु प्रबल गुरुआज्ञा से पराजित हो रहा हूँ। शरणागत के आनन्ददाता, करुणा के सागर, करुणामय प्रभु की केवल करुणा ही आज मुझ जैसे व्यक्ति का एकमात्र आश्रय (सम्बल) है ॥

(सम्मुख में देखकर)

अहो ! हे श्रीकृष्ण—चरणकमल के मधुपगण ! आप सब करुणा वितरण कीजिये। आप जैसे महानुभावों की कृपा का अवलम्बन कर आज यहाँ इस महान् कार्य में निर्भय होकर प्रवृत्त हो रहा हूँ। क्यों कि शान्त, श्रीसम्पन्न, परम भागवत गण सर्वतोभाव से दोष समूह को सद्गुण रूप में ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार कि उष्णता-रहित मृदु (कोमल) किरण वाला नक्षत्र-पुंज आकाश में उदय होकर रजनी-समूह को विभूषित करता है ॥६॥

(ऐसा कह कर मस्तक पर हाथ रख कर)

जो पहले अथवा सृष्टि के प्रारम्भ में इस जगत में परमहंसों के अनुष्ठित धर्मपद्धति प्रचार के लिये प्रकट सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनत्कुमार इन चार सिद्ध पुरुषों में से तृतीय पुरुष रूप में अर्थात् सनातन नाम से अवतीर्ण हुए थे अब वे सम्पूर्ण भक्तिरस-रहस्य का भक्तों में सञ्चारण के लिये एकाकी अवतीर्ण हुए हैं। उन परिपूर्ण स्वरूप विश्वगुरु श्रीसनातन को (ग्रन्थकार के ज्येष्ठ सहोदर श्रीसनातनगोस्वामी) मैं (सूत्रधार रूप रूपगोस्वामी) प्रणाम करता हूँ ॥७॥

अब मैं निरवद्य-संगीतविद्या में विद्याधरी-स्वरूप माननीया नट-वृन्देश्वरी बृद्धा मुखरा को इस रंगभूमि में अवतारित करने की इच्छा करता हूँ ॥८॥

(नटी का प्रवेश)

नटी—वत्स ! मैं सम्प्रति रंगमङ्गल-संविधान के लिये उत्साहित होकर भी मनोऽभिनिविष्ट नहीं कर पाती हूँ ॥९॥

सूत्रधार—आर्य्ये ! क्यों इस प्रकार कह रही हो ? देखो देखो, शारदोत्सव उज्वलदीप्ति से शोभा प्राप्त हो रहा है, इधर वैष्णव-गण की सभा देदीप्यमान हो रही है, और यह गोवर्द्धन गिरि

श्रीकृष्ण की विमल कीर्त्तिधारा का उद्गिरण कर रहा है। इस विषय में मैं अधिक क्या कह सकता हूँ कि यहाँ मधुरमूर्त्ति माधव स्वयं उद्भासित हो रहे हैं। अतएव-तुम्हारा विशुद्ध पुण्यलक्ष्मी का परमोदय हो रहा है जानना ॥१०॥

नटी—वत्स ! किसी एक महानुभाव जन की विपत्ति को लेकर ही यह आतङ्क शृङ्खला बढ़ गई है परन्तु यह साधारण लोकचर्या को लेकर नहीं ॥११॥

सूत्रधार—आर्य ! महानुभावों की विपत्तियाँ सर्वदा अनित्य होती हैं अर्थात् क्षणस्थायि होती हैं यह तो जगत् का नियम है ॥१२॥ क्यों कि—

भक्तजन यदि विपिन में, अथवा किसी दिशा में, किंवा आकाश में अथवा पाताल में गमन करते हैं तो भी भगवान् अवश्य उन भक्तजनों को अपने चरणान्तिक में ले आते हैं, और उन्हें कभी परित्याग नहीं करते हैं। तात्पर्य-भक्तजन यदि तमोमय प्राचीन कर्म-फल वश में आकर बन में गमन करते हैं अर्थात् पशुत्व प्राप्त हो जाते हैं, रजोमय कर्मफल के हेतु दिगन्तर में गमन करते हैं अर्थात् नरत्व प्राप्त होते हैं और सत्त्वमय कर्म करके स्वर्ग में गमन करते हैं अर्थात् देवत्व प्राप्त होते हैं किम्बा अतिगर्हित कर्म्म निबन्धन से रसातल में गमन करते हैं अर्थात् नरक में गमन करते हैं तो भी भगवान् अपने भक्तजन का कभी परित्याग नहीं करते हैं, वे अपने चरण निकट उनको अवश्य लाते हैं। यहाँ श्रीराधिकादि भक्तगण का विपिन गमन (खाण्डवादि गमन), दिशान्तर गमन (प्राग्ज्योतिष पुरादि गमन) त्रिदिव गमन (सूर्य्यमण्डलादिगमन) रसातलगमन (जाम्बवान् गृह गमन) आदि दिखलाया गया है, परन्तु भगवान् ने बाद में उन सबों को एकत्र कराकर अपने चरणान्तिक को प्राप्त कराया अर्थात् लीलारसास्वादन कराया ॥१३॥

नटी—पुत्र ! सत्य कहते हो, परन्तु यह स्नेह की विवेकहारिणी प्रवृत्ति है जिससे मैं मोहित हो रही हूँ ॥१४॥

सूत्रधार—हे आर्ये ! कहो तो कहाँ पर तुम बद्धस्नेहा हो रही हो ?

नटी—पुत्र ! चारणकुल-नन्दन कलानिधि नाम से कोई एक व्यक्ति है ॥१५॥

सूत्रधार—उसे कौन नहीं जानता। क्यों कि—
वह बहुविध उत्तम नृत्यकला में सुशिक्षित है, गुणशाली है, नव-किशोर है, युद्धक्षेत्र में शत्रु विजय पर दृढ़-संकल्प वाला है और समस्त-कला में पारदर्शी है ॥१६॥

नटी—विधातानुग्रह से मुझ बृद्धा को एक नातिनी प्राप्त हुई है। जिसका नाम "तारा" है अर्थात् राधा है। उस असाधारण कन्या को उस कलानिधि के हाथ सम्प्रदान के लिये मेरा दृढ़संकल्प हो रहा है ॥१७॥

सूत्र—इन दोनों वर-कन्या का मिलन अत्यन्त दुर्घट है। परन्तु लोगधिक्कार भय से अर्थात् समस्त लोग धिक्कार न करें इस भय से अथवा प्रशंसा प्राप्त लोभ से विधाता ने परस्पर-योग्य यह वरकन्या का मिलन-सघटन मानो बल पूर्वक करा रहा है ॥१८॥

नटी—परन्तु इस देश के अधिकारी किरातराजा (अर्थात्-व्याधधर्मी कंस) उस कन्या रत्न के लाभ के लिये अभिलाषा कर रहा है। इसी लिये वह नृत्य दिखाने के छल से पराभव की इच्छा कर उस कलानिधि को अपनी राजधानी में ला रहा है ॥१९॥

सूत्रधार—आर्य्ये ! मुझको ज्योतिर्व्विद समझना। अतः वर्त्तमान लग्नानुसार जो होगा सो आपके निकट यथार्थ वर्णन कर रहा हूँ, (क्षणकाल चिन्ताकर सहर्ष पूर्वक) आप किसी भी प्रकार चिंता मत करना, क्यों कि—

वह कलानिधि रंगभूमि पर नृत्य करता हुआ उस किरातराजा को मार डालेगा और यथा समय पर शुभक्षण में तारा का पाणि-ग्रहण करेगा ॥२०॥

(नेपथ्य में) हाय ! कंसराजा के भय से राधा-माधव का पाणिग्रहण को स्पष्टरूप में कहने के लिये असमर्थ होकर "कला-निधि रंगभूमि पर" इत्यादि छल से उस बात को बोध कराती हुई, यह धन्यात्मा कौन है जो कि चिन्तातुर मुझको आश्वासित कर रही है।

सूत्रधार—(नेपथ्य के ओर देखकर) देखो देखो-मुनिराज सान्दीपनि की माता, वीणावादन-रसिक श्रीदेवर्षि नारदजी की शिष्या, जगत में साध्वी करके सुविख्याता, काशपुष्प की भाँति शुभ्रकेशवाली, परमधन्या पौर्णमासी आज गर्गदुहिता नान्दीमुखी के साथ आलाप करती हुई सभ्रमपूर्वक रंगभूमि की ओर आ रही है ॥२१॥

अतः आओ हम सब शीघ्र ही परवर्त्ती अभिनय का उपयुक्त वेश ग्रहण के लिये चलें। (दोनों का प्रस्थान)

(यह प्रस्तावना हुई) ॥२२॥

(अनन्तर यथा निर्दिष्टा पौर्णमासी प्रवेश करती हैं)

पौर्णमासी—अहो ! ("राधामाधव के पाणिग्रहण की कथा" इत्यादि पूर्ववाक्य का पाठ कर) वत्से गार्गि । सुनो, श्रीकृष्ण की दृष्टि-कटाक्ष तरंगों से चचलायमाना तपनतनया श्रीयमुना के मिलन से गभीर स्वरूप, राधा की स्मितचन्द्रिका रूप सुरधुनी प्रवाह में सश्लिष्ट दिव्य त्रिवेणीधारा रूप पवित्र तीर्थ में अमृतरस का पान कर, अन्तः सन्तोष तुषार संप्लवनलवता से तापोच्चय का दूर करने वाले हम सब मानो सात जगत् का अतिक्रमण कर वर्त्तमान सबके उद्ध्वस्थान में विराजमान हो रहे हैं ॥२३॥

गार्गी—आर्ये! पहले आपने अभिमन्यु के साथ राधा का विवाह संघटन किया है, अब किस प्रकार से पुनः राधा के साथ श्रीकृष्ण का मिलन चाह रही हो ? ॥२४॥

पौर्णमासी—वत्से ! यह मायाविवर्त्त है, अर्थात् माया के द्वारा एक वस्तु में अन्य वस्तु का भ्रम हो रहा है जिस प्रकार शुक्ति में रजतभ्रम अथवा रज्जु में सर्पभ्रम है। नहीं तो विधाता का वर रूप अमृत के द्वारा समृद्ध, बिन्ध्यपर्वत के तपस्यारूप कुसुमों से ग्रथित, माधव-हृदय में स्निग्धता-सम्पादन-कारिणी, माधुरी-मकरन्द-स्वरूपिणी, वैजयन्ती मालिका समान श्रीराधा का पाणिग्रहण करने में पृथक् अर्थात् कौन नीच व्यक्ति समर्थ हो सकता है ? ॥२५॥

गार्गी—कैसा वह बिन्ध्य का वरामृत है ? ॥२६॥

पौर्णमासी—विधाता ने बिन्ध्यपर्वत को यह वर दिया था कि हे बिन्ध्य ! तुम्हारी अपनी अभिलाषानुसार सर्वोत्तमा दो कन्या होंगीं, जो कि अपने गुणों के द्वारा भुवन को विस्मापित करेंगो एव जिनके जामाता धूज्जंटी विजयी होगा ॥२७॥

गार्गी—पुत्रवर का परित्याग कर बिन्ध्य ने किस लिये कन्या-लाभ की अभिलाषा की ? ॥२८॥

पौर्णमासी—जामाता सम्पद् से गर्व्वित गौरीपिता गिरिराज हिमालय को सौभाग्य स्पर्द्धा से ॥२९॥

गार्गी—बड़ा आश्चर्य्य है, यह बिन्ध्य पर्वत अपने गोत्र का उत्कर्ष सहन करने में कभी सक्षम नहीं होता है। क्यों कि—पहले तो इसने सुमेरु पर्वत को जीतने के लिये अपनी बृद्धि की थी परन्तु कुम्भयोनि अगस्त्य ऋषि को सन्मान कर नहीं बढ़ने पाया ॥३०॥

पौर्णमासी—हाँ मनस्वियों का ऐसा ही स्वभाव होता है।

गार्गी—कौन व्यक्ति बिन्ध्यपर्वत के निकट से राधिका को गोकुल में लाया है ?

पौर्णमासी—जातहारिणी पूतना के द्वारा, ॥३१॥

गार्गी—(भय के साथ) आर्ये ! जातहारिणी तो बालकों को भोजन कर लेती है, उस जातहारिणी के ग्रास से इस कल्याणी कन्या ने जो रक्षा प्राप्त की यह अत्यन्त सौभाग्य का विषय है।

पौर्णमासी—लोकोत्तर कुमारों के संहार तथा कुमारियों के अपहरण के लिये कंस के द्वारा यह पूतना नियुक्ता हुई थी ॥३२॥

गार्गी—इन दोनों अमंगल कार्य्यों में कंस की प्रवृत्ति क्यों हुई ?।

पौर्णमासी—देवि ! देवकी-कन्या के वचनानुसार।

गार्गी—वह वचन किस प्रकार था ? ॥३३॥

पौर्णमासी—अरे कंस ! जिन्होंने पूर्वजन्म में युद्धक्षेत्र में उन्नत चक्र के द्वारा कालनेमि नामक तुम्हारे मस्तक का छेदन किया है जिनके युगल चरणारविन्द देववन्दनीय हैं ऐसा विवेकी जन जानते हैं, वे जगत् के मूलाधार आज आनन्दामृत सागरों से प्रणयिजन का आनन्द विधान करते हुए चन्द्रोदय के समय (अर्थात् निशीथ में) प्रादुर्भूत हुए हैं ॥३४॥ और भी देवी ने यह कहा—

हम से भी अधिक अत्युत्तम माधुर्य्यशालिनी आठ महाशक्तियाँ (राधा, चन्द्रावली, ललिता, विशाखा, पद्मा, शैव्या, श्यामला तथा भद्रा) कल हों अथवा परसों हों पृथ्वितल में प्रकट होंगी। उनमें से दोनों बहिन गुणवृन्दों की मन्दिर स्वरूपिणी तथा अत्यन्त मनोज्ञा होंगीं। जो उनका विवाह करेगा वह राजेन्द्र होगा एवं युद्ध में महादेवजी को भी पराजित करने वाला बलशाली होगा ॥३५॥

गार्गी—दूसरी बहिन चन्द्रावली का क्या वृत्तान्त ?

पौर्णमासी—बिन्ध्याचल के पुरोहित ने राक्षसनाशक मन्त्रपाठ किया, उससे पूतना भयभ्रान्ता होकर शीघ्रतया पलायन कर रही थी, उस समय उसके हाथ से स्खलित होकर आद्या चन्द्रावली विदर्भदेश वाली नदीधारा में गिर गई ॥३६॥

गार्गी—आर्ये ! मेरे पिता सर्वज्ञ होकर भी इस प्रकार क्यों कहते हैं कि—राधिका दुर्वासामुनि के वर से वृषभानुऔरस में उत्पन्ना कन्या है ॥३७॥

पौर्णमासी—ब्रह्माजी की प्रार्थनानुसार हरिमायाने चन्द्रभानु-पत्नी एवं वृषभानु की पत्नी के गर्भ से आकर्षण कर बिन्ध्यगिरि-पत्नि के गर्भ में उन दोनों बालिकाओं का स्थापन किया था ॥३८॥

गार्गी—(आश्चर्य के साथ) क्या चन्द्रभानु-वृषभानु दोनों को उनकन्याओं का यह जन्मरहस्य मालूम था ?

पौर्णमासी—क्यों नहीं, वह दुर्वासा अपने कृत उपकार को न जना कर किस प्रकार विश्राम कर सकते थे ?

गार्गी—इन सब बातों को आपने किस प्रकार ज्ञात किया ?

पौर्णमासी—गुरुवर श्रीनारदजी के उपदेश प्रसाद से, उसी कारण से ही मैं राधिका के प्रति अनुरक्त हो रही हूँ ॥३९॥

गार्गी—आपने निश्चय उस निहतराक्षसी गोद से एकमात्र राधिका का लाभ किया ॥४०॥

पौर्णमासी—केवल अकेली राधिका नहीं और भी पांच कन्याओं का मैंने लाभ किया ।

गार्गी—वे सब कौन हैं ?

पौर्णमासी—ललित चन्द्रवदनवाली राधासखी ललिता, चन्द्रावली की सहचरी रुचिरा पद्मा, भद्रचरितवाली भद्रा, कल्याणकारिणी शैव्या, तथा श्याम कान्ति वाली श्यामा ये पांच हैं ॥

गार्गी—गोपिकाओं के हाथ में इन्हें किसने समर्पित किया ? ॥४१॥

पौर्णमासी—मैंने इन कुमारिकाओं में से पांच कन्या का गोपन में आभीररमणियों में वितरण करके एकान्त में यशोदाधात्री मुखरा से "यह अधिकगुण वाली राधिका तुम्हारे जामाई वृषभानु की कन्या है तुम इसको आनन्द से ग्रहण करो" ऐसा कह कर उसके

हाथ में राधा को समर्पित किया ॥४२॥

गार्गी—तब तो निश्चयरूप से यह ज्ञात हुआ कि राधा की दूसरी सखी विशाखा गोकुल में उत्पन्न हुई है।

पौर्णमासी—नहीं नहीं, यह विशाखा यमुना-प्रवाह में बहती हुई जा रही थी जिसको जटिला ने प्राप्त किया ॥

गार्गी—नदीप्रवाह में बहती बिन्ध्यपर्वत की ज्येष्ठ कन्या चन्द्राबली को किसने लाभ किया ?

पौर्णमासी—विदर्भराजा भीष्मक ने।

गार्गी—अहो ! दोनों भगिनी की विच्छेदसंघटनकारिणी विधातृ को कैसी निष्ठुरता है ? ॥४३॥

पौर्णमासी—पुत्रि ! पुनः दोनों भगिनी का जो मिलन संघटन हुआ है उस में उस विधातृ को करुणा ही सम्बल रूप जानना।

गार्गी—वह किस प्रकार ?

पौर्णमासी—कराला का नातिनी उस चन्द्रावली का वयःक्रम जब पांच वत्सर था तब देवी बिन्ध्यवासिना के आदेश से गोवर्द्धनपर्वत एवं बिन्ध्यपर्वत के गुहा निवासी जाम्बवान कुण्डलनगर से उस चन्द्रावली को ले आया।

गार्गी—(स्वगत) मैंने पिता के मुख से सुना था कि—चन्द्रभानु आदि की कन्याएँ भीष्मकादि की कन्याओं के साथ एकतत्त्व हैं, परन्तु शरीरादियों से भिन्न हैं। अतः इनका एक शरीरता-सम्पादन निश्चय माया के द्वारा भ्रान्ति उत्पादत मात्र है। जो भी कुछ हो पीछे जानूँगी, अब उसका रहस्य उद्घाटन में कोई फल नहीं (प्रकाश्य में) निश्चय चन्द्रावली आदि के साथ गोपगण का विवाह माया के द्वारा निर्वाहित हुआ है ॥४४॥

पौर्णमासी—ऐसा ही है। परन्तु अपने को पतिमानने वाले गोपों की कुमारियों में जो पत्नि-भावना है वह केवल ममतामात्र

से जानना । क्यों कि कुमारियों का प्रेक्षण तक भी उनके लिये अतिदुर्घट था ।

गार्गी—तब तो श्रीकृष्ण के प्रति उन आठ कुमारियों का अनुराग कोई आश्चर्य का विषय नहीं है ।

पौर्णमासी—केवल आठ कुमारियों की कथा क्या कह रही हो, गोकुल में किस हरिणनयना रमणी का श्रीकृष्ण में अनुराग न था ? ॥४५॥

गार्गी—सत्य कहती हो, क्यों कि अब शताधिक-षोलह सहस्र कन्याएं चन्द्रावली आदि पच कन्या के साथ मिल कर "हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि !हे अधिश्वरि ! हे देवि ! नन्दगोप पुत्र को हम सब के पति कीजिये, हम सब आप को प्रणाम करतीं हैं" इस प्रकार चण्डिका अर्चन कर प्रार्थना करती हैं ॥

पौर्णमासी—गर्गाचार्य्य ने कहा कि—"कामरूप में प्रकाशित कामाख्यादेवी कुमारिकाओं से परिपूजिता होकर उन की समस्त कामना पूरण करेगी" । इस गर्गवचनानुसार हे गुणवति ! ब्रज की समस्त हरिणनयना कामाख्या देवी की उपासना करती हैं ॥४६॥

गार्गी—किसने सूर्य्य आराधना में राधा को नियुक्त किया ?

पौर्णमासी—तुम्हारे पिता गर्ग ने ।

गार्गी--आर्ये ! मैंने पिताजी के मुख से सुना है कि--इन समस्त कन्याओं के साथ भविष्य में विवाहित पतियों का संगम उन में विच्छेद उत्पादन करेगा ।

पौर्णमासी--वत्से ! तुमने ठीक कहा है। इसी लिये ही मैंने किशोरी शिरोरत्न उन राधा-चन्द्रावली के निरोध के लिये अभिमन्यु एवं गोवर्द्धन की जननी जटिला तथा भारुण्डा को आग्रह के साथ नियुक्त किया है ॥४७॥

गार्गी--क्यों ग्राप दोनों सहोदरा को एकत्र सम्मिलित नहीं करा रही हैं?

पौर्णमासी--सर्वदा सञ्चरणकारी दुष्टकंस के चरों की सन्देह-शंका से।

गार्गी--इस ग्रपूर्व बृत्तान्त को क्या ग्रौर कोई जानता है?

पौर्णमासी--नहीं नहीं, परन्तु मेरे उपदेश बल से केवल कृष्ण-बलराम की जननी (यशोदा-रोहिणी) जानती हैं ॥४८॥

(नेपथ्य में)

हे पद्मे ! तुम मञ्च (शय्या) से गात्रोत्थान करो, हे भद्रे ! तुम मयूरपुच्छ से मुकुट रचना त्याग करो, श्यामे ! तुम माला-निर्म्माण को छोड़ दो, हे ललिते ! तुम कुंकुम चूर्णों को मत पीसो, हे विशाखे ! तुम सारिपाठ से विरत हो, ग्रौर हे शैब्ये ! तुम कवरी-संस्कार का त्याग करो, देखो तो गौग्रों की खुर-सञ्चारित सुगन्धि-धूलिराशि पूर्वदिशा में छा गई है ॥

पौर्णमासी--देखो देखो, यह धूलिपुञ्ज सम्मुख में श्रीहरि का उद्देश कर ग्रन्धकार को संगमित कर रहा है। इस से ब्रजसुन्दरियों की ग्रलौकिक उपासना पद्धति सवदर्शी श्रुति के निकट प्रकाशित नहीं हो रही ॥४९॥

गार्गी--(संस्कृतभाषा में) निपुण, उत्तम-वंशजात जो वंशी-काकली लज्जा का ग्रपहरण करा कर राधा को गृह से वन में ग्राक-र्षित करा रही है वह निसृष्टार्था दूती जय प्राप्त हो रही है ॥५०॥

(नेपथ्ये में) हे धन्ये ! तुम वाम नेत्र में काजल न लगा कर धावित मत हो, पद्मे ! तुम चरण में वाहुभूषण ग्रंगद को पहिन कर मत जाग्रो, हे सारङ्गि ! तुम एक ही चरण में नूपुर ध्वनि करती ग्रर्थात् एक ही चरण में नूपुर पहन कर मत भागो, हे पालि ! तुम इस प्रकार मेखला गिरा कर मय जाग्रो, हे लवङ्गि ! तुम गण्ड

में कपाल भूषण तिलक लगा कर मत धावो, हे कमले ! तुम नेत्र में अलक्तक अर्थात् महावर लगा कर क्यों जा रही हो, वह तो चरण में लगा जाता है। इस प्रकार उत्तरलिता होकर तुम सब मत धावित हों, क्यों कि मुरली तो बड़ी दूर में कूजित कर रही है ॥५१॥

गार्गी—अहो ! नीलाम्बर (नोलाकाश) रुचिधारी, शुभ्रवर्ण ज्योत्स्नासमूह से मधुर, गोपरूप नक्षत्रावलि से परिवेष्टित माथुर चन्द्रमा विराजमान कर रहा है। पक्षान्तर में नीलवस्त्र धारी, श्वेत-वर्ण गाभीमण्डल से मनोहर, गोपबालकों से परिवेष्टित माथुरचन्द्र बलरामजी विराजमान हैं ॥५२

पौर्णमासी—(आनन्द के साथ) हस्ताग्र में सरल यष्टि को धारण कर, पीतवर्ण पट्टवस्त्र से कटितट शोभित कर, सर्वत्र बिखरी हुई नील-कान्ति के द्वारा नीलकमल का तिरस्कार करते हुए आभी-रियों की प्रेमलक्ष्मी परिणति श्रीकृष्ण विहार कर रहे हैं ॥

अत: हम दोनों अब यशोदा के निकट चलें।

(दोनों का प्रस्थान) ॥५३॥

(अङ्कमुख) ॥५४॥

(तदनन्तर वयस्यगण से परिवृत श्रीकृष्ण का प्रवेश)

कृष्ण—सखा मधुमङ्गल ! देख, देख, गौएं प्रचुर तृणगुच्छ का आस्वादन नहीं कर रही हैं । जो निरन्तर "हम्बा हम्बा" शब्द करती क्लान्तमुखी हो गई हैं। उन सब के नेत्र चञ्चल हो रहे हैं । मुवलित कंठ वाली वे सब गौएं गोकुल जाने के लिये मार्ग में उत्कण्ठित हो गई हैं ॥५५॥

मधुमंगल—सौभाग्यवश ये सब स्नेहवत्सला गौएं बनभ्रमण से परिक्लान्त इस ब्राह्मण के ऊपर करुणा वितरण कर रही हैं ॥५६॥

बलराम—देखो देखो, सम्मुख में वेग के साथ धेनुगण दो

चार पाँव गमन कर मार्ग में ग्रीवा वक्र कर पीछे की ओर दृष्टिपात कर रही हैं, इनको वकारि श्रीकृष्ण में अपने वत्स-समूह से भी बलवान प्रेमानुबन्धन व्याकुलित कर रहा है ॥५७॥

कृष्ण—(पश्चिम दिशा की ओर दृष्टिपात करके) समय के विपरिणाम से हीन-वार्य्य के कारण सूर्यविम्ब आश्रयरहित आकाश मे चलने के लिये असमर्थ हो गया है ! वह मानो मन्दीभूत-किरण के द्वारा अथवा शिथिल हाथ से भाण्डीरवट की चूड़ा का अवलम्बन कर अस्ताचल की शिखर में गिर रहा है ॥५८॥

बलराम—देखो ! देखो ! हम सब ब्रज के निकट आ गये हैं क्यों कि चारों ओर पर्वत-शिखर के समान ऊँचे उपले के स्तूप और उपले के चूर्ण से परिपूर्ण स्थल दिखायी दे रहे हैं।

अत: आज हम सब यमुना-सलिल में अवगाहन कर अत्यंत परिश्रम का उपशम करें। (ऐसा कहकर सखाओं के साथ प्रस्थान) ॥५९॥

कृष्ण—हे सखे ! मधुमंगल, देखो, देखो, नवीन चन्द्रकान्त-मणि द्रवित होकर जिसको पाद्य-प्रदान कर रहा है, रत्नाकर (सागर) उच्छलित होकर सरत्न-तरल-तरंगों के द्वारा जिसको चारु अर्घ्य-दान कर रहा है और दिग्-बधूगण समुल्लसित होकर नक्षत्रपुञ्ज-वितरण के द्वारा जिसको पुष्पाञ्जलि प्रदान कर रहा है। वह शशि उद्गत-मदनानन्द-रस से पुलकितांग होकर उदय हो रहा है। ६०॥

मधुमंगल—प्रिय वयस्य ! इस हीन-कलंकित-चन्द्रमा की क्या आवश्यकता है। देखो ! लतामंडलांतर्गत षोडश कलायुक्त सहस्र-चन्द्र-मण्डल प्रकाशमान हो रहे हैं ॥६१॥

कृष्ण—(देखकर) यह वटु यथार्थ कहता है। बहु विषय में समता रहने पर भी निश्चय एक ही कर्म के द्वारा चन्द्रमा पराजित

हो रहा है। क्यों कि शशि एवं इन ब्रजरमणियों के मुखचन्द्र दोनों नवीन-नवीन निविड़-सुधा परिपूर्ण हैं और दोनों सबको प्रियदर्शी हैं, तथा अपनी प्रभा के द्वारा पद्म-समूह को म्लान करते हैं, और दोनों शुचि, शुभ्रवर्ण एवं समस्त कलाओं से परिपूर्ण हैं। परन्तु आज कुरंगधर शशि ब्रजसुन्दरियों के सुरंगधर-बदन के निकट पराजित हो रहा है ॥६३॥

मधुमंगल-भो वयस्य! तुम उत्कर्ण हो रहे हो, क्यों कि कदम्ब-कुञ्ज की दक्षिण दिशा में कोई रमणी आकर्षण-मंत्र का पाठ कर रही है ॥६४॥

कृष्ण—वह, यह, विश्वमोहिनी शैव्या की क्षुद्र वेणु है, जिसके विभ्रम के प्रारम्भ में हमारी वेणु स्तम्भित हो रही है।

(ऐसा कहकर कुछ पग आगे जाकर उत्कंठा के साथ) ॥६५॥

नववल्लरी के समान गोपबालिका भद्रा और उसकी रंगमल्ली बीणा दोनों मेरी धृति को हरण कर रही हैं, दोनों का स्तन तुम्बी-फल के समान है। (वीणा के दोनों भाग में स्तन के समान दो तुम्बीफल संयुक्त है) शैव्या का स्तन पीनोन्नत है। दोनों प्रवाल-सुषमा को धारण करने वाली हैं। (शैव्या का अधर एवं कर-चरणतल की सुषमा प्रवाल के समान रक्तवर्ण है, वीणा भी रक्त-वर्ण है) दोनों कल-भाषण में अर्थात् कलाकौशल में उल्लसित हैं ॥६६॥

मधुमङ्गल—वयस्य ! आश्चर्य है, आश्चर्य है, यमुना के मध्य में कोई एक कच्छपी (कमठि) अर्थात् बीणा कुन, कुन शब्द कर रही है ॥६७॥

कृष्ण—(हास्यपूर्वक) यह श्यामला की मनहारिणी श्रेष्ठ वीणा कामकेलि नाटक के नान्दीपाठ के द्वारा बार बार शब्द भ्रम की श्री को धारण कर रही है जिससे मेरा मन आनन्दित हो रहा

है। (ऐसा कह कर परिभ्रमण करते हुए सहर्ष) ॥६८॥

निकट में पद्मा के मणिबधन वलय का पूर्ण कलसिजन मेरा प्रमोद बद्धन कर रहा है।

(चारों ओर दृष्टिपात करते हुये) सखे मधुमंगल ! आज क्यों यहाँ अभी तक चन्द्रावलि का परिमल (गंध) नहीं प्राप्त हो रहा है। चलो वांयी ओर कराला के गृहप्रान्त में स्थित वाटिका में प्रवेश करें। (परिभ्रमण करते हैं) ॥६९॥

मधुमंगल—(आगे देखकर) यह तो उपनंद-पुत्र सुभद्र की बधू कुंदलतिका इधर आ रही है। (कुंदलता का प्रवेश)

कुंदलता—कृष्ण ! असमय में प्रफुल्ल अशोक वृक्ष को देखकर प्रशंसा क्यों नहीं कर रहे हो ॥७०॥

कृष्ण—(अशोक वृक्ष की ओर दृष्टिपात कर स्वगत) यह निश्चय चन्द्रावलि की चरणचातुरी की चमत्कारिता है अर्थात् इस अशोक वृक्ष में असमय में पुष्पोद्गम होना उसके ही पदाघात का परिणाम है।

(उत्कठा के साथ अभिनंदन करके)

इस मनोहर अशोक कानन से समुत्थित चन्द्रावलि के कनक-नूपुर के कनकन सिजन कलहंस समूह के कूजन को पराजित कर मंत्रवत् मेरे कर्ण-कुहर को आनन्दित कर रहे हैं) ॥७१॥

कुन्दलता—हे सुन्दर ! भारुण्डा के अंतर्गृह में निरुद्धा रहने पर भी चन्द्रावलि को मैं अपनी चातुरी-चेष्टा से बाहर लायी हूँ।

कृष्ण—भारुण्डा ने अकारण ऐसा कर्कश व्यवहार क्यों किया ॥७२॥

कुन्दलता— केवल भारुण्डा ने ऐसा नहीं किया अपितु जटिला-दिक समस्त बृद्धाओं ने भी किया ॥७३॥

(पद्मा के साथ चन्द्रावलि का प्रवेश)

चन्द्रावलि—(संस्कृत में) हे सखि ! वह दुर्जनी वृद्धा मेरे प्रति तर्जन करे तो करने दो, अथवा कोई अपवाद रूपी राहु मेरे कुल-मर्यादारूपी-चन्द्र को कवलित करे तो करने दो। तो भी मेरे चक्षु-भ्रमर मुरारी के मुख पद्म अवलोकन रूप माध्विक पान का लोभ परिहार करने में अक्षम्य है ॥७४॥

कृष्ण—(चन्द्रावलि के निकट उपस्थित होकर सानन्द) हे रमणि ! इस उज्वल चन्द्रमा ने तुम्हारे मुख की भ्रूक्षेप-लीला से पराजित होकर आकाश में शरण ली है। वह वहाँ भी अधीरता प्राप्त करके विजयी उस मुख की सेवा के लिये द्विजराज (दंतपंक्ति) रूप में प्राप्त हुआ है। इसलिये तुम चन्द्रावलि आख्या लाभ कर रही हो ॥७५॥

कुन्दलता—हे कृष्ण ! तुम्हारे हृदय में लम्बी माला के मध्य की मुक्तामणि में प्रतिविम्बिता एव दर्पिता होकर मेरी दौरानी चन्द्रावलि तुम्हारे हृदय में प्रवेश कर रही है ॥

कृष्ण—(ईषद् हास्यपूर्वक) कुन्दलतिके ! चन्द्रावलि तुम्हारी दौरानी किस प्रकार हुई ? ॥७६॥

कुन्दलता—हे गोकुल-युवराज ! गोबर्द्धन मल्ल तो इसका झूंठा स्वामी है और तुम तो हमारे सत्य ही देवर हो ॥७७॥

चन्द्रावलि— (भ्रूभंग करके निवारण करती हुई) धृष्टे ! कुन्दलता तो भ्रमर को आकर्षित करती है ॥७८॥

कुन्दलता—हे देवर ! यह निकुञ्ज-गृहिणी कहती हैं कि यह बृन्दावन-भ्रमर रसिक नहीं है क्यों कि वह प्रफुल्ल पद्मालि (पद्म-समूह तथा पद्मा की सखी) का मधुरस पान नहीं कर रहा है ॥७९॥

पद्मा—अरी ! अलीकभ्रम शंका करने वाली कुन्दलते, ठहरो, ठहरो, बन संचारी भ्रमर के निकट विशाखा सहचरी (शाखारहित

भिंटी पुष्प एवं विशाखा की सखी राधा) सुलभ होती है। अमृतोत्पन्ना पद्मालि (पद्मश्रेणी एवं पद्मा की सखी चन्द्रावलि) कभी सुलभ नहीं है ॥८०॥

कुन्दलता—हे चन्द्रावलि ! तुम्हारी अभिलाषा को मैं जानती हूँ। वृथा क्यों लज्जा कर रही हो। तुम अपने पीनोन्नत स्तन-बन्धु हार के द्वारा हरि का वक्षस्थल अलंकृत करो। ८१॥

चन्द्रावलि—(असूया के साथ) कुन्दलतिके ! तुम अपने कठस्थित हार के द्वारा उसको अलंकृत करो।

कुन्दलता—माधव ! चन्द्रावलि की कर्णलतिका को गुच्छित करो अर्थात् उसके कर्णभूषण के साथ अपना कर्णभूषण संलग्न करो

चन्द्रावलि--सखि ! प्रियजन को देखने के लिये समुत्सुक ब्रजेन्द्रनदन के मार्ग में तुम प्रतिबन्धक मत होना ॥८२॥

कुन्दलता--हे सखि ! तुमसे अत्यंत प्रिय इनके और कौन हैं।

पद्मा--हे राधा सखि ! विरमित होउ ॥८३॥

कृष्ण--हे कमल-लोचनी तुम्हारे असाक्षात् में कभी मेरा हृदय को बाधा स्पर्श नहीं करती है। परन्तु राधा ही हृदय को आक्रमण कर अवस्थान करती है। (ऐसा कहकर भयभीत हो जाते हैं और पहले राधा पीछे बाधा इस प्रकार उलट कर पाठ करते हैं)।

इस पक्ष की व्याख्या यह है कि तुम्हारे असाक्षात् में भी मेरे हृदय से राधिका लेशमात्र भी नहीं रहती हैं। परन्तु बाधा ही निरन्तर आक्रमण करती है ॥८४॥

पद्मा--महापुरुष कभी असत्य भाषी नहीं होते हैं।

(नेपथ्ये में)--हे कुन्दलते ! क्या तुम सचमुच नही जानती हो। गोवर्द्धन प्रस्तरपुञ्ज के समान कठोर है ॥८५॥

कुन्दलता—हाय ! हाय ! रणचण्डि भारुण्डा क्रोध से उग्रमूर्ति

धारण कर रही है ॥

चन्द्रावलि—(भय के साथ) सखि पद्मे ! वृद्धा व्याघ्र की भांति गर्जन कर रही है अतः चलो यहाँ से चलें।

(पद्मा के साथ चली जाती है)

कुन्दलता—मैं भी गोकुलेश्वरी यशोदाजी के यहाँ जा रही हूँ। (निष्क्रमण) ॥८६॥

कृष्ण—(आगे जाकर उत्कंठा के साथ) अहा ! काम-क्रीड़ा के अभ्यास से विशृंखल विशाखा की नितम्ब देश से स्खलित मेखला की कलध्वनि आज काम के धनु के पुनः पुनः टंकार की भांति मेरे मन में भ्रांति जात भय उत्पादन कर रहा है। (बांया ओर देखकर) हे सखा ! कुन्दलता सत्य कह रही है, क्यों कि आज राधा का माधुर्य अनुभूत नहीं हो रहा है। मैं अब माता के पास जाता हूँ। (ऐसा कह कर चले जाते हैं) ॥८७॥

(पौर्णमासी, गार्गी, रोहिणी आदि के द्वारा परिवृत यशोदा का प्रवेश)

यशोदा—हाय सखी रोहिणी, न जाने वत्स अब तक क्यों नहीं आ रहा है ॥८८॥

(कुन्दलता का प्रवेश)

कुन्दलता—(हास्यमुख से) माता ! खेद मत करो (वह सुविमान-लम्बिनी आकाशचारिणी वृन्दारक-रमणियों के हास्य पुष्पवर्षण से उपास्यमान होकर विलम्ब कर रहा है। अर्थात् देवी-पक्ष में मनोहर विमान अर्थात् रथ है जिनका, गोपीपक्ष में विगत-मान अर्थात् त्यक्त परिमल जिनके, अम्बरालम्बिनी का अर्थ आकाशचारिणी है। गोपीपक्ष में वस्त्रों को सम्यकरूप से धारण करने वाली। वृन्दारक-रमणियों का अर्थ देवरमणियां है। पक्ष में मनोहर रमणियां हैं। हसितपुष्प का अर्थ विकसित पुष्प है। पक्ष में

हास्यरूप पुष्पों के वर्षण से ॥८६॥

रोहिणी—मैंने एक दिन देखा है कि दोनों कुमारी राधा, चन्द्रावलि के सौन्दर्य को देखकर वृन्दारक-सुन्दरी अप्सरागण भी ग्लानि प्राप्त हो गयी हैं ॥९०॥

यशोदा—हे भगवति ! नवमालिका चन्द्रावलि और माधवी राधा दोनों गुण सौरभ्य से मेरी समस्त आशाओं को परिपूर्ण करती हैं। तो भी कृष्ण की भांति उनमें से छोटी राधा सौन्दर्य-मकरन्द से मेरे नेत्र-भ्रमर को विशेष रूप से आनन्दित करती है ॥ ॥९१॥

पौर्णमासी—गोकुलेश्वरि ! समस्त गोकुलवासियों का यह अभिमत है।

गार्गी—कुन्दलते ! तुम प्रतिदिन गोकुलेश्वरी के घर राधा को क्यों ले जाती हो ॥९२॥

यशोदा—दुर्वासाजी ने राधा को वर दिया था कि तुम जो द्रव्य प्रस्तुत करोगी वह अमृत-तुल्य होगा, उसका जो उपभोग करेगा वह दीर्घायु होगा। इसीलिये मैं राधा को बुलाती हूँ।

पौर्णमासी—गोकुलेश्वरी ! कृष्ण की शंका कर जटिला दुःखित हो जाती है ॥९३॥

यशोदा—(हँसकर) दुग्धमुख बालक में शंका का अवसर कहाँ है।

कुन्दलता—(धीरे से) रानी-माता का पुत्र सत्य ही दुग्धमुख है क्यों कि जिसने गोवर्द्धन को क्रीड़ा-कन्दुक बनाया है।

पौर्णमासी—(आगे दृष्टिपात करके सहर्ष) अहो ! सम्मुख में व्रजराज गृहिणी रूप खान से समुत्पन्न हरि रूप हरित्वर्ण मणि ब्रह्माण्ड-मंडल के मुकुट में आरोहण करने की योग्यता प्रकाशकर शोभित हो रही है।

(श्रीकृष्ण का प्रवेश)

कृष्ण—मां ! तुम अपने अश्रुपूर्ण नेत्रयुगल का मार्जन करो । मैं तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हो रहा हूँ ॥६४॥

रोहिणी—(दीपावलि के द्वारा निर्मञ्छन कराकर संस्कृत-भाषा में) हे वत्स ! तुम्हारी माता गौओं के आगमन मार्ग में नयनद्वय विन्यास कर किसी प्रकार अत्यन्त दीर्घ दिवस के शेष दो प्रहर यापन कर रही है । अब त्वद्गत प्राण स्नेह-वत्सला उसकी गोद में सर्वस्व धनरूप तुम आरोहण कर आनन्द रस से अभि-सिंचित करो ॥६५॥

कृष्ण—(माता की गोद में मस्तक रखकर) मा ! मुझे मणि-मंडित अलकार दो । (ऐसा कह कर बाल्यभाव प्रकाश करने लगे)

पौर्णमासी—हे कृष्ण ! गाओं के खुर से उत्थित रेणु-कणि-काओं के द्वारा तुम्हारी गैरिकादि धातु से विरचित तिलकावलि आच्छादित हो गयी थी, अतः तुम्हारी माता यशोदा स्तन-कलश से निसृत स्नेहमधुर परमपवित्र दुग्धधारा के द्वारा प्रक्षालन कर, तुम्हारा नव अभिषेक कर रही है ॥

कुन्दलता—(परिहास पूर्वक) कृष्ण ! तुम महारानी यशोदा का स्तनामृत पान करो क्यों कि तुम कुत्सित-रंग में अथवा कुंज-गृह में बहु (अनेक) अथवा बधुओं के साथ केलि प्रसङ्ग में अत्यंत क्लान्त हो गये हो ॥६६॥

यशोदा—वत्से ! तुम क्यों हँसी करती हो । अभी इसकी कौमार अवस्था अतिक्रान्त नहीं हुई है । स्तनपान में क्या दोष है ।

कुन्दलता—भगवति ! महारानी सत्य कह रही है क्यों कि वे आज भी बालामंडल (बालक समूह अथवा रमणी समूह) के साथ महारास में क्रीड़ा करते हैं ।

यशोदा—हे भगवति ! महारास किसको कहते हैं ?

कृष्ण—(लज्जा के साथ भ्रू भंगी कर कुंदलता को देखने लगे)

पौर्णमासी—(ईषद्हास्य करके) गोपेश्वरि ! वह एक प्रकार को नृत्यलीला है ।

कुन्दलता—(कृष्ण के कान में) तृष्णाकुला चकोरी पिंजड़ा में बद्ध होकर बहुकाल से उत्तप्त हो रही है । अतः हे तारापति ! (राधानाथ !) शीघ्र अशोक-कुञ्ज में चरण प्रसारित करो । (कृष्ण भ्रू-संकेत के द्वारा स्वीकार करते हैं) ॥६७॥

नेपथ्य में—हे वत्स ! तुम्हारा मुखचन्द्र देखे बिना हमारे अन्तर में अत्यन्त ताप उत्पन्न होकर हमको सन्तप्त कर रहा है। अतः तुम शोघ्र आकर आलिंगन रूप शीतल चन्दन को प्रदान करो।

कृष्ण—सम्मुख में मेरे कल्याण अभिलाषी पिता व्रजराज विद्यमान हैं। मैं इनको आनन्दित करूँ। (यशोदादियों के द्वारा आहूत होकर चले जाते हैं) ॥६८॥

कुन्दलता—(भ्रमण करती हुई) क्या सौभाग्य की बात है। ललिता, राधा को वकुलकानन में लायी है ।

(तदनन्तर ललिता के साथ राधा वकुल कानन में प्रवेश करती है)

राधा—अरी ललिते ! उपस्थित इस रात्रि की प्रशंसा करो । जिसके द्वारा तुम सबकी कोई सुखआशा अंकुरित हो रहा है ॥६९॥

ललिता—रञ्जन करने के कारण ही रात्रि का एक नाम रजनी है।

कुन्दलता—(अग्रसर पूर्वक) ललिते ! आज रजनिमुख में तुम सबने ईषद् हास्ययुक्त-कटाक्ष कुवलय के द्वारा कृष्ण की अर्चना नहीं की है।

राधा—(रोमांचित होकर) वह कृष्ण कौन है ? जिसका नाम मेरे कर्ण में अतिथि होकर उन्मत्ता कर रहा है ॥१००॥

कुन्दलता—सखि ! अलौकिक वस्तु का यह स्वभाव है कि

सर्वदा उपभोग करने पर भी. पहले उपभोग नहीं किया इस प्रकार अनुभव होता है ॥१००॥

ललिता—कुन्दलते ! केवल लोकोत्तर वस्तु का इस प्रकार गाढ़ानुराग, ऐसा नहीं । जिसका जिससे अनुराग है वह उसके लिये नवनवायमान प्रतीत होता है ॥१०१॥

राधा—ललिते ! हमारे प्रश्न का उत्तर न देकर अन्य बात क्यों चलाती हो।

ललिता—(संस्कृत में) हे सखि ! नवजलधर-मण्डली के अहंकार को विडम्बित करने वाली देह-कान्ति वाले कोई ब्रजेन्द्र-कुल न्दन नवीन-युवा शोभायमान हो रहा है। जिसकी वंशीध्वनि स्थिर-पतिव्रता रमणियों की निर्विबन्ध-ग्रन्थि मोचन करने में विजयी प्राप्त हो रहा है ॥१०२॥

राधा—(अश्रुपूर्ण नेत्र से) कुन्दलते ! जो मेरे कर्ण में अतिथि हुआ क्या वह क्षणकाल के लिये नेत्र का पथिक नहीं होगा ॥१०३॥

कुन्दलता—हे तृष्णाकुले ! काल हो तो सन्ध्याकाल में विशाखा ने उसको तुम्हारे साथ सम्मिलित कराया था।

राधा—सखि ! अच्छी बात का स्मरण कराया है । एकबार प्रियसखी के द्वारा विद्युत्-विकास की भाँति गोकुल-युवराज का दर्शन किया था जिससे हतभागिनी का नेत्र चमत्कार प्राप्त हुआ ॥१०४॥

(तदनन्तर श्रीकृष्ण का प्रवेश)

श्रीकृष्ण—कलविंक समूह की मधुर कलध्वनि को कलङ्कित करने वाला ललिता के सुन्दर कङ्कन-स्वर की झंकार कर्णगोचर हो रही है जो कि मेरे चित्त में वेतसी निकुञ्ज के रंग को सञ्चारित कर रहा है। (पुनः उत्कर्ण होकर पुलक के साथ) यह राधा की

किंकिणि झंकृति मेरे हृदय में प्रवेश कर नाना विकार उत्पादन कर रही है । जो कि आकाश में माधुर्यलहरियों से स्मरमद से सरस सारसों के शब्दों को स्तम्भित कर रही है ॥१०५॥

राधा—(चमत्कार के साथ संस्कृत में) अहो ! यह अपूर्व कौन विश्वकर्मा मरकतमणि की श्याममय-शोभा के द्वारा गोष्ठ गृह को परिपूर्ण कर रहा है । अर्थात् श्यामसौंदर्य प्रवाहों से गोष्ठ का परिपूर्ण कर रहा । जो कि एक ही सार्थ दीर्घ अपांग छटारूप से सांणित प्रशस्त मुखकुठार के द्वारा सत सत रमणियों के कुलधर्मरूप प्रस्तरों का भेदन कर रहा है ॥१०६॥

ललिता—यह तो तुम्हारे प्रणनाथ हैं ।

राधा—(उन्माद के साथ संस्कृत में) हे कृशोदरि ! क्या यह गोप कुमुदिना के चन्द्रमा रूप हैं ?, क्या गोकुल में शोभित युवराज सम्बन्धी उत्सव हैं ?, क्या यह मेरे मनरूपी पिक के विनोद के लिये पुष्पाकर हैं ? जो कि अमृत लहरियों से मेरे दोनों नेत्रों का सिञ्चित कर रहे हैं ॥१०७॥

कृष्ण—(आश्चर्य के साथ) ये कौन चमत्कार विद्या है, जो कि बारबार रसलहरियों से मेरी अन्तर की तृष्णा को विस्तारित करती है । हाँ, मैंने जानलिया वह विस्तारित अपांग-लीला-माधुर्य-परिवाहिनी कोई अनिवचनीय कल्याण दीर्घिका रूपिणी हैं ॥१०८॥

(पुनः लक्ष करके) हाँ, सत्य है, क्यों कि जिसमें लोमावलि रूप शैवालमञ्जरी शोभा पा रही है और दोनों स्तनरूप रथांग युगल एक साथ विचरण कर रहे हैं । पुनः जिसमें दोनों कर-कमल, दोनों चरण-कमल और मुखकमल रूप पाँच कमल बाहु रूप दोनों मृणाल में विराजमान हैं । नेत्ररूप सफरि (मछली) युगल अत्यंत चञ्चलित होकर क्रीड़ा कर रहे हैं । आज ब्रज में वह अनुराग जल से परम पवित्र परिपूर्ण राधारूप दीर्घिका शोभा पा रही है ॥१०९॥

राधा—न जाने क्यों मेरा मस्तक घूर्णित हो रहा है। तुम अपने हाथ का अवलम्बन करो।

ललिता—तुम शान्त हो, धैर्य धारण करो। (ऐसा कहकर राधा के हाथ को अपने स्कन्ध में धारण करने लगी) ॥११०॥

कृष्ण—(कुछ निकट आकर) हे राधे ! चन्द्रमा तुम्हारे कान्तिपरिपूर्ण वदन को देखकर लज्जित हो गया है। वह मानो मुख के तुल्य श्री प्राप्त करने के लिये कृश (क्षीण) होता हुआ गङ्गातरङ्ग में स्नान करके महादेवजी की जटा में आश्रित रहकर तपस्या कर रहा है। (ऐसा कहते हुए आगे बढ़ने लगे) ॥१११॥

राधा—(नेत्रप्रान्त के द्वारा श्रीकृष्ण को दिखाकर) ललिते ! मेरी रक्षा करो ॥११२॥

कृष्ण—हे प्रिये ! तुम्हारे अत्यन्त कृष्ण अपांग के द्वारा यह कृष्ण वशीभूत हुआ है जो कि म्लान से म्लान एवं प्रफुल्लता से प्रफुल्लता को प्राप्त कर रहा है।

राधा—(पुलक के साथ) कुन्दलते ! इस सुन्दर शिरोमणि का तुम निवारण करो क्यों कि मैं गुरुजन के पराधीना हूँ, मन्द-भागिन हूँ ॥११२॥

(जटिला का प्रवेश)

जटिला—अरे ! महामोहना ! तुमने समस्त गोकुलबालाओं को धर्मपथ से भ्रष्ट कर दिया है ! केवल मेरे पुत्र के पुण्यबल से एक हमारी बधू बची थी। अब तो गोकुल में सतीनाम लेने के लिये एक को तो छोड़ दो। (ऐसा कहकर राधा को लेकर ललिता तथा कुन्दलता के साथ जटिला चली जाती है) ॥११३॥

कृष्ण—अहो ! प्रिया तो चली गया अतः मैं भी गौओं को

एकत्र करने के लिये प्रस्थान करता हूँ।

(सबका प्रस्थान) ॥११४॥

"सायं-उत्सव" नामक प्रथम अङ्क समाप्त हुआ।

द्वितीय अङ्क

(अनन्तर वृन्दा आकाश मण्डल को देखती हुई प्रवेश करती है।)

वृन्दा—अहो, स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि आज दैववश रात्रि का क्षय लक्षण उपस्थित हो गया है क्यों कि उसका पति चन्द्रमा अपनी कान्ति को गोपन कर बारुणी मदिरा पीकर अर्थान्तर में, (पच्छिम दिशा का अवलम्बन कर) नीचे गिरता जा रहा है। गुरु वृहस्पति अगौरवता प्राप्त कर अत्यन्त निस्तेज हो गये हैं। समस्त नक्षत्र-परिवार क्षीण होते हुये तिरोहित होने लगा है ॥१॥

(पदचालन करती हुई)

अहो ! रात्रिशेष में दधिमथन विनोदजात गागरियों का यह गुरुगम्भीर शब्द आज स्वर्गपुरी के प्रकोष्ठ समूह का आक्रमण कर देवताओं को समुद्रमन्थनोत्सव स्मारित करा रहा है ॥२॥

(आगे दृष्टिपात करके)

अहो ! देखो यह मालती दधिमन्थन कर रही है। बारबार मन्थन रज्जु का आकर्षण एवं विकर्षण क्रम से उसके हस्तद्वय क्रम से कुञ्चित एवं प्रसारित हो रहा है। उससे कङ्कण-शब्द के साथ गागरियों का गम्भीर गर्ज्जन (शब्द) मिश्रण हो रहा है, एवं चारों ओर विक्षिप्त फेनराशि के द्वारा गृहाङ्गन चित्र विचित्र हो रहा है ॥३॥

(पार्श्व में दृष्टि कर ईषत् हास्य के साथ)

अहो ! देखो अन्धकार पुञ्ज-विस्तार के अवसान हो जाने पर अत्यन्त दुःखिता यह पाली अपने मुख को ढ़क कर भय भोत हो कुञ्ज से गोष्ठ के लिये जा रही है । गमनवेग से मस्तक तिरछा हो रहा है। स्कन्ध पर विलुलित वेणी गिरी हुई है, वह नोचे मस्तक कर मन्द मन्द चरण फेंकता तथा नयनयुगल चारों ओर अल्प फेंक कर जो जा रही है उससे तो यह अपने रात्रि-विलास को व्यक्त कर रही है ॥

(पुनः अन्य ओर देख कर आश्चर्य के साथ)

अहो यह श्यामला गोकुल के लिये जा रही है, जो कि श्रीहरि के नाभिपद्म के चिर सहचर पीतवस्त्र को अपनी कटी (कमर) में लपटाइ है, उनके वक्षः स्थित श्रीवत्स-चिन्ह के साथी परम प्रिय मनोहर हार को भी धारण कर रही है और श्रीहरि के मकराकृति कुण्डल अपने कानो में पहने हुई है । इस के गण्ड में श्रीहरि के हस्त रचित पत्रावली शोभा पा रही है ॥४॥

(पुनः अन्य ओर देख कर खेद के साथ)

अहो ! यह पद्मा विप्रलब्धा होकर अपने घर के लिये जा रही है। हाय ! इस को कबरी शिथिल (विलुलित) नहीं हुई, इसकी बिम्बाधर की रक्तिमा विकृत नहीं हुई, मस्तक की पत्रावली रचना बिन्दुमात्र से विलुप्त नहीं हुई, इसकी मुखकान्ति विषाद पूर्ण हो रहा है ॥५॥

(नेपथ्य में पद्मा सखी का बचन)

हे कृष्ण ! आज जब मल्लिका कुसुमावली प्रस्फुटित हुई थी तब मेरी सखी केलिकुञ्ज में प्रफुल्लिता हो गई थी । परन्तु जब कि शेफा-लिका (हारसिंगार) कुसुम गिरने लगे तब तो मेरी सुकुमारांगी सखी पृथ्वी पर गिर गई । जब कि प्रभात के समय कुमुदावली

मुद्रित हो गई तब वह बाला हताश होकर दोनों नेत्र को मूंदने लगो। इससे और अधिक मैं क्या कहूँगी ? तुम और प्रणाम छल से उपहास मत करो ॥६॥

बृन्दा—निश्चय यह पद्मा-सखी का पद्मनाभ श्रीहरि के प्रति तिरस्कार वाक्य है।

(नेपथ्य में)

हाय मैं ज्वलन्त अङ्गार पुञ्ज के समान चिन्ता समूह से हृदय में चर्चित होकर पृथ्वी पर जागरण कर किसी प्रकार से रात्रि-यापन कर रही हूँ ॥

बृन्दा—आश्चर्य्य ! भगवती पौर्णमासी सम्मुख में विराजमान हैं।

पौर्णमासी—(प्रवेशकर पूर्व श्लोक पाठ कर) अहो ! वनदेवी बृन्दा सम्मुख में उपस्थित है अतः उस के पास जाती हूँ ॥

बृन्दा—(प्रणाम करके) भगवति ! अब आप की चिन्ता का कारण क्या है ? ॥

पौर्णमासी—वत्से ! मथुरानगर से आगत मन्त्रिचूड़ामणि उद्धव ने हम से कहा है ॥७॥

कि भोजकुल के कलङ्क दुष्ट राजा कंस ने अरिष्ट एवं केशी नामक दो दैत्यों का आदर के साथ आह्वान कर आदेश दिया - हे सखा युगल ! कुमारी-हरण कारिणी पूतना नन्दगोकुल में किसी एक दिव्यबालक के द्वारा निहत हो गई । यह किंवदन्ती फैली हुई है। इस कारण उस कुमार की परमात्यन्तिकी सम्पत्ति का निदान-भूत एवं मेरी आत्यन्तिक बिपत्ति के कारण स्वरूप वह कुमारिका भी उस गोकुल में निवास कर रही है ऐसा मैं तर्कणा कर रहा हूँ। इसी लिये अब गोकुल को बृन्दावन नाम से अभिहित किया गया है। अतः तुम दोनों यत्न पूर्वक इसका समस्त तत्त्व अवगत करो ॥८॥

बृन्दा—उस के बाद क्या हुआ ?

पौर्णमासी—तदनन्तर केशो के द्वारा राधा-माधव के अद्भुत प्रभाव का अनुभव कर प्रतीति के द्वारा यथार्थ निवेदन किये जाने पर वह कंस राधा-अनुराध से गोकुल अवरोधार्थ स्वयं उद्यत हो गया।

बृन्दा—(भीत होकर) उस के बाद, उस के बाद ।

पौर्णमासी—अनन्तर अरिष्टासुर के द्वारा श्रीराधा के विवाह प्रवाद निवेदन किये जाने पर वह अपने सर्वोत्तम सुहृत् शङ्खचूड़ नामक दुष्ट यक्ष को कुमारीहरण के लिये नियुक्त करने लगा ॥

बृन्दा—यथा स्थल पर आपकी चिन्ता हुई है । यदि यह श्री-राधा दुष्ट के द्वारा आक्रान्त होती है तो त्रिलोको को दुःख से सन्तापित करेगी ॥६॥

क्यों कि–जो सब अपने गुण-परिमल से समस्त दिशाएँ आनन्दित कर सर्वोपरि शोभा पा रही हैं वे सब कुमारियाँ यदि खलजन संस्पर्श से दग्ध होती हैं तो किस के मन में पीड़ा नहीं होगी । अधिक तो क्या कहूँगी ? चित्रा दुष्टजन के द्वारा आक्रान्त होकर अत्यन्त दुःख प्राप्त कराती है । दूसरा अर्थ—चित्रा नाम्नी तारा मन्द के द्वारा अर्थात् शनि के द्वारा आक्रान्त होने पर वह जगत की दुःखदायिनी बन जाती है। पक्षान्तर में—चेतना का त्राण करने वाली चित्रा अर्थात् राधा है ॥ ०॥

(भय के साथ प्रवेश कर)

कुन्दलता—भगवति ! आश्चर्य है, आश्चर्य है।

पौर्णमासी—क्या आश्चर्य ?

कुन्दलता—मैंने देखा कि गोवर्द्धन-मल्ल के गृहप्रान्त में सूर्यदेव उदय हो रहा है ।

बृन्दा—(आनन्द के साथ) भगवति ! चिन्ता मत करना,

क्यों कि—राधा की दीर्घकाल आराधना से एवं मित्र वृषभानु के प्रति सौहृद्य के हेतु अनुरक्त सूर्य्यदेव राधा की रक्षा के लिये आगमन कर रहे हैं ॥

पौर्णमासी—यह सूर्यदेव नहीं है परन्तु कंसपक्षीय यक्ष ही होगा।

कुन्दलता—चक्षुः विक्षोभकारी किरण-माला से यह दुर्लक्ष्य हो रहा है, अतः यक्ष की सम्भावना नहीं है ॥१२॥

पौर्णमासी—यह किरण-मण्डल संसर्गजात है परन्तु स्वाभाविक नहीं है।

कुन्दलता—कहाँ से किस हेतु संक्रान्त हुआ है ?

पौर्णमासी—चूड़ामणि के कारण।

बृन्दा—कहाँ से यह महारत्न प्राप्त हुआ ? ॥१३॥

पौर्णमासी—कुबेर महाकोश मण्डल के रक्षकों के अध्यक्ष इसने रत्नाधार प्राणधारक मणि का अपहरण किया है।

बृन्दा—आर्य्ये ! आज रविवार है, श्रीराधा पूजा के लिये अवश्य सूर्यमण्डप में जायेगी। आप जा कर निषेध कीजिये।

कुन्दलता—बृन्दे ! बहु क्षण पहले उसने मन्दिर से वहाँ गमन किया है ॥

पौर्णमासी—कुन्दलते ! तब तो तुम शीघ्र किसी उपाय से श्रीकृष्ण को राधा के निकट ले जाओ । मैं भी बलदेव को लाने के लिय जा रही हूँ ॥

(ऐसा कह कर बृन्दा के साथ बाहर जाती है)

(विष्कम्भक)

कुन्दलता—(परिक्रमण करती) अहो ! श्रीराधिका जटिला, ललिता एवं विशाखादि के द्वारा परिवेष्टिता होकर इधर आ रहीहै ॥

(अनन्तर यथा निर्दिष्टा राधा का प्रवेश)

राधा—(स्वगत) हृदय ! तुम उत्कंठा से तपायमान मत हो, यहाँ तुम्हारा प्रियदर्शन नितान्त दुर्घट है ॥१५॥

कुन्दलता—राधे ! मङ्गलमय समय में तुम आई हो।

जटिला—(सक्रोध) चपले ! "राधे राधे" ऐसा स्पष्ट मत कहो, क्यों कि इसके श्रवण से कृष्ण आ जावेगा।

ललिता– (मन्दहास्य से) आर्ये ! ठीक कह रही हो।

जटिला—ललिते ! सूर्यमण्डल लेपने के लिये मैं पहले जा रही हूँ। (ऐसा कह कर प्रस्थान) ॥१६॥

राधा—कुन्दलते ! हम सब के दुर्लभदर्शन तुम्हारा देवर अब कहाँ है ?

कुन्दलता—अरि लोलुपे ! तुम तो रात्रि-दिन उस के साथ क्रीड़ा करती रहती हो, तो भी तुम इस प्रकार उत्कण्ठित क्यों हो रही हो ? ॥१७॥

राधा—सखि ! इस प्रकार उपहास से क्या लाभ होगा ? तुम सब धन्या हो, क्यों कि निरन्तर अबाधरूप से नेत्रपुटों से बार बार वह आश्चर्य्यामृत पूर पान करती हो हमने तो लेश मात्र पुन्य नहीं किया, क्यों कि उस कथा श्रवण तो हमारे लिये दुर्लभ हो रही है

कुन्दलता—हे राधे ! अमृत समुद्र में गोता लगाने वाले व्यक्तियों का व्यवहार इस प्रकार तृष्णावह होता है ॥१८॥

राधा—अरी ! परदुःखानभिज्ञ ! एक बात को सत्य बताओ, जिस मूहूर्त में मेरे लिये स्वप्न में भी उनका दर्शनलाभ सुलभ है, क्या वह पवित्र-मूहूर्त उपस्थित होगा ? अथवा दुर्लभ-वस्तु में लालसा से क्या लाभ होगा ? हे कुन्दलते ! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो, अनुकम्पा करो अनुकम्पा करो। आज जिसके द्वारा उस श्यामला-कौमुदी का तुमने पान किया है, उस पुण्यमय अपने वामलोचन का

प्रान्तभाग खिन्न इस क्षीण मन्दभागनी के प्रति क्षणकाल अर्पण करो ॥१६॥

कुन्दलता—(असूया के साथ देखकर) तुम्हारी भाँति परपुरुष अभिलाषिनी के साथ बचन के द्वारा भी आलाप करने का प्रयोजन नहीं है। (ऐसा कहकर जटिला के निकट दौड़ कर) हे आर्ये! तुमने सूर्य पूजा कराने वाले एक ब्राह्मण का अनुसन्धान क्यों नहीं किया है।

जटिला—वत्से ! सत्य कहती हो, अतः मेरे प्रति प्रसन्न होकर एक विचक्षण ब्राह्मण को लाओ।

कुन्दलता—आपकी जैसी आज्ञा। (ऐसा कह कर प्रस्थान करती है) ॥२०॥

ललिता—सखि राधे ! देखो, आर्या ने मण्डप का लेपन कर लिया है। भगवान् सूर्यदेव की बन्दना करो।

राधा—(सूर्य को प्रणाम करके) देव ! अभीष्ट दर्शन कराओ ॥ ॥२१॥

(अनन्तर मधुमङ्गल एवं कुन्दलता के साथ विप्रवेशधारी कृष्ण का प्रवेश)

श्रीकृष्ण—(समक्ष में राधा को देखकर हस्तावरण पूर्वक) जो कि मेरे मनरूप-करीन्द्र के विहार के लिये सुरधुनी स्वरूपा है, जो मेरे नयनरूपी-चकोरों के लिये शारदीय-विमल-चन्द्रप्रभा के सदृश है और जो मेरे वक्षरूप आकाशतट में अलङ्कार रूप मनोहर तारावलि है वह राधिका आज मैंने उन्नत मनोरथ के द्वारा प्राप्त की है ॥२२॥

राधा—(दूर से कृष्ण को देखकर जनान्तिक के प्रति संस्कृत में) हे सहचरि ! मदमत्त हस्ति की भाँति विभ्रम वाला, जलद-कान्ति वाला यह निर्भीक-युवक कौन है ? ब्रजभूमि में कहाँ से

आया है। हाय ! जो कि चञ्चल अपांग वीक्षण रूप तस्कर के द्वारा मेरे चित्तरूप कोषागार से धैर्यरूप धन का लुण्ठन कर रहा है। (पुनः दृष्टिपात करके) हाय ! धिक्, धिक् क्या प्रमाद, क्या प्रसाद, ललिते देखो, देखो, इस ब्रह्मचारी का दर्शन कर मेरा हत-हृदय विक्षोभित हो रहा है। अतः अग्निप्रवेश ही इस महापाप का प्रायश्चित है ॥२३॥

ललिता—सखी सत्य कहती हो। शरीर के वर्ण सादृश के कारण समानता का भ्रम हो रहा है।

राधा—(पुनः देखकर, संस्कृत में) हे सहचरि ! ये निश्चय ही ब्राह्मण-वेशधारी श्रीहरि हैं। नहीं तो हमारी अन्तरात्मा द्रवीभूत क्यों होती। देखो, चन्द्रकान्तमणि की वेदी बिना चन्द्रकिरण के कभी घर्मवारि प्रसव नहीं करती है।

विशाखा—सखि ! सुन्दर कहती हो। ये सचमुच माधव हैं।

कुन्दलता—आर्ये, जटिले, शास्त्रदर्शी इन ब्राह्मणजनों का अवलोकन करो ॥२४॥

मधुमङ्गल—जटिले ! सूर्यपूजा-विधान में मैं विचक्षण हूँ। अतः पहले लड्डू लाओ।

जटिला—अरे चञ्चल ब्राह्मण, तुम कृष्ण के सहचर हो। अतः तुम यहाँ से दूर जाओ। यह सौम्य, श्यामलवर्ण-ब्राह्मण मेरी बधू को पूजा करायेगा ॥२५॥

कृष्ण—हाय ! वृद्धगोपिके। राजपुर में विख्यात दुष्ट-स्वभाव वाला दुर्लील गोपराज-नन्दन का क्या यह ब्राह्मण-बालक सखा है, तब तो इसे शीघ्र यहाँ से बाहर करदो।

जटिला—आर्य ! तुम शीघ्र सूर्यदेव की पूजा कराओ।

कृष्ण—(अपांगभंग के द्वारा श्रीराधा का आलिंगन कर) हे कल्याणि तुम्हारा नाम क्या है ?

जटिला—(कृष्ण के कान में) ऐसा मत बोलो।

कृष्ण—(आश्चर्यान्वित होकर) अहो ! ये ही वह पुण्यवती हैं जिसके पातिव्रत की कथा सुनी है।

जटिला—मेरी बहू ने ही एकाकी गोकुल में कीर्ति रखी है ॥२६॥

कृष्ण—पातिव्रते ! ताम्रकुण्ड ग्रहण करो, मैं मन्त्रपाठ कर रहा हूँ।

राधिका—(उत्कम्प के साथ ऐसा करने लगती है)

कृष्ण—हे राधे ! निभृत में तुम्हारे विरहदुःखराशि का भोगकारी मेरा दुःख तुम्हारे अधर दर्शन से बढ़ गया है। अतः हे चञ्चलाक्षी कठिन हृदये ! मेरे प्रति क्षणमात्र कुटिल अपांग भङ्ग का दर्शन कराओ "ओम् सवित्रे नमः" अर्थात् सूर्यदेव को नमस्कार।

अभिप्राय यह है कि तुम्हारे कटाक्ष लवरूप सवित्र के लिये नमस्कार।

(यह बचन नरलीला के कारण कहा गया है नहीं तो सूर्य के बन्दनीय श्रीकृष्ण इस प्रकार क्यों कहते)

जटिला—कुन्दलते ! यह ब्राह्मण बालक कैसा अश्रुत मन्त्रपाठ कर रहा है।

मधुमङ्गल—(उच्च हास्य के साथ) हे वृद्धे ! तुम मूर्ख ग्वालिनी हो। केवल गाय भगाने वाले री री शब्द को ही जानती हो। हमारे वेदमन्त्र को तुम क्या समझ सकती हो। अतः सुनो, जो कि पाठ किया गया है। यह कौसुमेषवी शाखा की तृतीय वर्ग के ललना शुभकरी ऋचा हैं अर्थात् मन्त्र हैं।

(श्लेषार्थ—कौषमेषवी का अर्थ कन्दर्प सम्बन्धी कुसुमवाण, तृतीयवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ कामादि के बीच में काम, ललना शुभकरी का अर्थ स्त्रियों का मङ्गल दायिनी) ॥२७॥

(सभी हास्य करने लगे)

जटिला—(लज्जित होकर) जो हो तुम अच्छी तरह से पूजा कराम्रो जिससे मेरा पुत्र कोटि-गौ प्राप्त करे।

कृष्ण—हे धन्ये! प्रतिमा की पूजा तो हो गयी, अब तुम भक्ति के साथ गगन-प्रकाशक पद्मबन्धु सूर्य के लिये अर्घ्य प्रदान करो

पक्ष में—पीतवस्त्रधारी जीवन सखा मेरे लिये अत्यन्त उदार-भाव से प्रीतियुक्त होकर पूजा करो ॥२८॥

राधा--(सम्भ्रम दिखाने लगी) ॥२९॥

कुन्दलता--(संस्कृत में) अब सूर्यदेव कन्याराशि का उपभोग कर रहे हैं अतः तुम प्रस्फुटित कमलपुष्प के द्वारा मित्र सूर्य के लिये अर्घ्य प्रदान करो।

पक्ष में-कन्या समूह के भाग्यकारी सम्मुख-स्थित सखा को हास्यरूप कमल के द्वारा मनोहर अर्घ्य प्रदान करो।

राधा--(नेत्र प्रान्त से श्रीकृष्ण को देखने लगी)

कृष्ण--हे कल्याणी! सूर्यदेव की यह पूजा-बिधि सुन्दर रूप में शेष हुई है अब तुम रक्तवर्ण पुष्पांजलि के द्वारा इष्टदेव को आनन्दित करो।

राधा--(बन्धुक पुष्पांजलि देती हैं)

मधुमङ्गल--जटिले! सुमिष्ट पक्वान्न की दक्षिणा दो। हम सरलता से कह रहे हैं ॥३०॥

कृष्ण--हे पेटुक बाचाल ब्राह्मण-बालक! ठहरो, गोकुल-वासियों का मैत्रीलाभ ही मेरी दक्षिणा है।

जटिला--(हँसकर) भो बटुराज! मेरे घर पर चलो, वहाँ मैं अभीष्ट भोजन कराकर मणिमुद्रिका दान करूँगी।

मधुमङ्गल--(सानन्द) आर्ये! जब तुम्हारी ब्राह्मणों को भोज्य देने की इच्छा हुई है, तो तुम सप्त पुत्रवती होओगी।

कृष्ण--वृद्धे ! तुम इस ब्राह्मण बालक को भोजन कराओ । मैं अब पौर्णमासी के निकट जाकर गुरु गर्गदेव के आदेश को सुनाता हूँ ॥३१॥

कुन्दलता--कैसा आदेश ? ।

कृष्ण--माता पौर्णमासी ! आपकी प्रेमपात्री वृषभानु-नन्दिनी पर महान विपत्ति का संशय है । अतः उनको कल्पतरु के समीप लेकर रक्षोघ्न-मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करो ।

कुन्दलता--(व्यथा प्रगट करती हुई, कान के समीप जाकर) आर्यें ! सौभाग्यवश कल्पवृक्ष सम्मुख स्थित है । अतः तुम जाकर भगवती को यहाँ भेजो । इस ब्राह्मण-बालक को भी भोजन कराओ । हम इस गर्गशिष्य को कुछ समय यहाँ रखती हैं ॥३२॥

जटिला--(वटु के साथ चली जाती है)

कुन्दलता--(हँसती हुई) राधे ! पारितोषिक तो दो, क्यों कि तुम्हारे दुर्लभ मनोरथ का निर्वाह मैंने किया है ॥३३॥

राधा--(कुटिल कटाक्षपात कर) कुन्दलते ! मेरा क्या मनोरथ ?

कुन्दलता--सखि ! भृकुटि मत करो, मैं तो तुम्हारी सूर्याराधना की बात कह रही हूँ ।

कृष्ण--कुन्दलते ! पद्मिनी पति की पूजा तो समाप्त हुई अब दक्षिणा दिवाओ । (यहाँ "पद्मिनी नारी के पति" इस वाक्य से श्लेष में अपने को भी लक्ष्य है) ॥३४॥

कुन्दलता--राधे ! रवि-कार्याभिज्ञ आचार्य की तुम दक्षिणा के द्वारा प्रीति सम्पादन करो । पक्ष में--प्राकृतभाषा में रवि एवं रति का उच्चारण एक ही प्रकार है । अतः आकारित (निमन्त्रित) रतिकर्माभिज्ञ आचार्य मुझ प्रति दक्षिणा होकर अर्थात् अनुकूला होकर अनुराग के द्वारा प्रसन्न करो ॥

विशाखा—(मृदुहास्य के साथ) कुन्दलते ! तुम दक्षिणादान में अभिज्ञ हो, अतः तुम ही दक्षिणा दो क्योंकि यज्ञ में विशेष रूप से निपुण अपने देवर को पुरोहित बना कर लाई हो । यहाँ भी श्लिष्टार्थ यह है—हम सब वामा प्रतिकूला नायिका है तुम दक्षिणा हो अर्थात् नायक की अनुकूला हो ॥३५॥

ललिता—विशाखे ! आकार से ज्ञात होता है कि—निश्चय पूजा कारयित्री कुन्दलता ने आचार्य को दक्षिणा दी है ।

कृष्ण—ललिते ! यह भ्रातृजाया मेरी पूजनीया है, सुतरां मैं ने इस का आचार्यत्व नहीं किया ॥३६॥

राधा—सखि ललिते ! तुम ने तो सुन्दर रूप से पूजा-शेष किया है । तब अब और अधिक विलम्ब क्यों कर रही हो ।

कृष्ण—श्रीराधिका के क्रम विस्तारित कलाविलास का आधिक्य कन्दर्प--बोधन को सुदृढ़ कर रहा है । वह राधिका संग क्षणदापति चन्द्र की भाँति मेरी दृष्टि का आनन्द विधान कर रहा है ॥३७॥

(नेपथ्य में)

हे पुण्डरीकाक्ष ! वियोग के हेतु तुम्हारा मार्ग दुर्लभ हो रहा है ।

कृष्ण—(व्यथित होकर उच्चस्वर से) अहे ! क्या दुर्लभ ?

(पुनः नेपथ्य में) यत्न के साथ गोपगण से अन्वेषण किये जाने पर भी पशु मण्डल दुर्लभ हो रहा है ॥३८॥

कृष्ण—ललिते ! मैं जब तक पशुदल सन्धान पूर्वक सुसज्जित हो कर नहीं आता हूँ तब तक तुम प्रियतमा को रत्नसिंहासन में उपवेशित कराओ । (ऐसा कहकर प्रस्थान)

ललिता—सखि ! आगे चरण-निक्षेप करो ।

राधा—ललिते! प्रसन्न हो,प्रसन्न हो,मैं अत्यन्त भीता हो गई हूँ ।

(संस्कृत में) सखि ! सन्ध्या प्रायतः गत हो गई है, गुरुजन मेरे चरित्र के प्रति आशका करते हैं, मेरा कलङ्क (अपवाद) अत्यन्त प्रचारित हो रहा है, में अत्यन्त सरला कुलवती हूँ, समस्त पशुपालिका के सुहृत् तुम्हारे वयस्य अत्यन्त चञ्चल है, अतः मैं विनम्र पूर्वक कहती हूँ कि किसी निर्जन स्थान में मुझे मत ले चलो ॥३९॥

कुन्दलता—राधे ! तुम्हारे अस्खलित पतिव्रत की कथा मैं जानती हूँ । अतः अपने मुख से स्वयं घोषित मत करो ।

विशाखा—(असूया के साथ) कुन्दलते ! तुम्हारी भाँति ऐसी कौन रमणी है जिसको बंशी त्रिसन्ध्या में आकर्षित करती है ॥४०॥

कुन्दलता—(परिहास के साथ हँस कर संस्कृत में)
मैं उदारचित्त से तुम्हारा आशीर्वाद करती हूँ कि—तुम्हारी भाँति जन में पतिव्रता-व्रत अखण्डित रूप से अवस्थान करें जिससे कि समस्त माधुरी की सारभूत वेणुध्वनि को श्रवण कर तुम्हारा मन धैर्यच्युत न होवें ॥

(सब कल्पवृक्ष के ओर गमन करते हैं) ॥४१॥

कृष्ण—(प्रवेश कर) अहो ! कुरङ्गनयनी श्रीराधिका ने कुटिल नयनों के कटाक्ष भङ्गिमारूप जाल का बिस्तार कर अधिक स्वर से भंग प्राप्त मेरे चित्त कुरङ्ग को शीघ्र बाँध लिया है ॥४२॥

राधा—(कान कान मे) कुन्दलते ! गुञ्जावली का सौभाग्य तो देखो। (सस्कृत में) हे गुञ्जावलि ! तुम जगत् में कठोर अङ्गवाली हो, और नीरसतया विदित हो, तुम्हारे मध्यदेश में निगूढ़ छिद्र मौजूद है और मुख में मलीनता (कालिमा) भी विद्यमान है, तो भी तुम अतिगर्व के साथ श्रीहरि के वक्ष में निवास करती हो। अहो ! अनुराग प्रीतिभाजन जनों के किन दोषों को आवृत नहीं कर लेता है ? ॥४३॥

कुन्दलता—(निम्नस्वर से) राधे ! तुम्हारे कठोर स्तनमणि

के द्वारा आक्रान्त यह वराकी यहाँ किस प्रकार स्थिर हो सकती ? है ॥४४॥

(नेपथ्य में) अहो ! दनुजदमन श्रीहरि के बक्षः रूप आकाश में जगदपूर्व राधानाम्नी मनोहर तारा (अनुराधा) जय प्राप्त हो रही है। जो अपनी कान्ति के द्वारा सप्तविंशति मुक्ताग्रथित हार को पराजित एवं तमोनाशकारी चन्द्र-सूर्य्य को एक ही साथ निराकृत करती है ॥४५॥

कुन्दलता—(नेपथ्याभिमुख में देखकर) वृन्दे ! तुम तो सूर्य-चन्द्र दोनों की तिरोधान को कथा कह रही हो, उस तारा के माहात्म्य ज्ञान में तुम अनभिज्ञा हो । क्यों कि लक्ष सूर्य पराभव कारी चन्द्रावली-नाथ के ऊपर इसका पौरुष स्पष्टरूप में लक्षित हो रहा है ॥४६॥

सखाद्वय—कुटिलचरित्रे ! वृथा हास्य कर प्रियसखी को क्यों लज्जित करती हो ? ॥

कुन्दलता—(संस्कृत में) राधे ! लज्जा त्याग कर कुञ्जगृह में प्रवेश करो, तुम्हारे मङ्गल हों, तुम अनङ्गसमर में जयी हों, प्रातः-काल में मुरारी के समक्ष सहचरियाँ तुम्हारी विजय कीर्त्तिगाथा का गान करें ॥४७।

कृष्ण—(ईषत् हास्य कर) अहो ! इस जगत में शीतलता के आधार स्वरूप जितने मधुर रस मौजूद हैं वे सब तृषित-व्यक्ति के द्वारा पान किये जाने पर उन की आन्तरिक तृष्णा का हरण करते हैं परन्तु श्रीराधा के वदनचन्द्र की कान्ति रूप अमृतधारा पुनः पुनः पीत होकर अत्यन्त तृष्णा को वर्द्धित करती है ॥४८॥

राधा—(कान कान में संस्कृत से) हे चञ्चलाक्षि ! मेरे मन में तब तक गुरुजनों के आन्तरिक भय का प्रकाश एवं कुलमर्य्यादा का उदय रहता है कि जब तक कमल-नयन श्रीहरि

के दोदुल्यमान मकरकुण्डलों से शोभित प्रफुल्ल गण्डों से युक्त वदन-कमल नयनगोचर नहीं होता है ॥४६॥

कुन्दलता—हे सुन्दर ! इस रत्नसिंहासन में राधिका को आरोहण कराओ।

श्रीकृष्ण--(ऐसा करने लगे)

ललिता--सखी सब सुनकर कानाफूसी करने लगेंगे, अतः शङ्ख-चूड़ा का अर्थात् शङ्खनिर्मित चूड़ी के शब्द को स्थागित करो ॥५०॥

(शङ्खचूड़ का प्रवेश)

शङ्खचूड़--(लतान्तर में छिपकर) गोबर्द्धन मल्ल के द्वारा वर्णित लक्षणों से ज्ञात होता है कि यह वही कुमारी रत्नसिंहासन में विराजित है। अतः अवसर जानकर अपने कर्म का अनुष्ठान करूँगा। (ऐसा कहकर लतान्तर में स्थित रहता है)

कृष्ण--प्रिये ! क्षणकाल के लिये मेरे उरु-रूप इन्द्रनील-मणि पीठ को अलंकृत करो।

राधा--गोकुल-युवराज ! आपके समान श्रेष्ठ-पुरुषों के पक्ष में कुलरमणियों का धर्मध्वंश करना उचित नहीं है ॥५१॥

(नेपथ्य में-हा, नातिनी राधे बहुक्षण से तुम कहाँ गई हो)

कृष्ण--कुन्दलते ! यह मुखरा क्यों विलाप कर रही है।

कुन्दलता--(हँसकर) हे मोहन ! जहाँ तुम समान निकुञ्ज-नागर लीला अपांग तरङ्ग का विस्तार करता है, वहाँ बृद्धाओं के विलाप का अभाव कहाँ हो सकता है।

(मुखरा का प्रवेश)

मुखरा--(सम्मुख में राधामाधव को देखकर स्वगत कहती है) हा दुर्दैव ! इस हरिरूप चन्दनतरु का त्यागकर इस कल्पलता को अरड बृक्ष के साथ तुमने क्यों संयोजित किया है ! (प्रकाश में) हे वत्से ! क्यों इस लम्पट चूड़ामणि की लीला-कुरङ्गी हुई हो ॥५२॥

ललिता—(मिथ्या दिखकर) आर्ये ! इस कन्या ने हम सब को बलपूर्वक विड़म्बित किया है।

मुखरा—अरे नारी-चोर ! ठहर, ठहर।

कृष्ण—(स्वगत) ये बृद्धा अत्यन्त कठोर स्वभाव वाली है। अत: यहाँ छिप जाता हूँ (छिप जाते हैं)

मुखरा—(सक्रोध) ललिते ! इस धूर्त को पकड़ो, पकड़ो।

ललिता—हूँ, अब क्यों भागते हो ॥५३॥

मुखरा—(भागती हुई सामने कुञ्ज में जाकर, तर्जन के साथ) भाग्यवश आज तुम को प्राप्त किया है, अरे ! कुरङ्गावलि-भुजङ्ग ! अर्थात् कोटर के सर्प (पक्ष में—कुञ्जावलियों में कामुक !) आज तुम भाग्यवश ही मिले हो।

कृष्ण—हाय ! इस गाढ़ अन्धकार में इस अन्ध-वृद्धा ने मुझे कैसे देखा है।

मुखरा—(मस्तक सञ्चालन कर बार बार देखने लगी)

कृष्ण—(स्वगत) निश्चय इस जरति को दृष्टि आकाश कुसुम की भाँति है।

मुखरा—ओ, मा ! ये तो महान अन्धकार-पुञ्ज है।

कृष्ण—(मृदुहास्य करने लगे) ॥५४॥

मुखरा—(अन्य ओर जाकर) हाँ, अब तुम को प्राप्त किया। (पुन: देखकर भय के साथ) रे धूर्त्त ! तुमने बाराह-नृसिंहादि नाना अवतार धारण किये हैं। पौर्णमासी यह सत्य कहती है। क्यों कि अब तुम सूर्य के समान उज्वलरूप से हमें भय दिखाकर पलायन कर रहे हो।॥५५॥

शङ्खचूड़—मुत्तिभूत, विक्रममण्डल रूप इस बालक के दृष्टिपथ में भाग्यवश मैं नहीं आया हूँ। (ऐसा कह कर आगे बढ़ता है)

सब—(देखकर भय के साथ) श्रार्य, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये !

मुखरा—(सक्रोध) श्ररे श्यामल ! ऐसा कार्य करना उचित नहीं है ॥५६॥

ललिता—हे बुद्धिहोने ! इस प्रकार कठोर व्यक्ति को तुम कृष्ण समझ रही हो।

शङ्खचूड़—बन्धुवर कंस राजा के मनोरथ सफल करने के लिये इस पद्मिनी कुमारी को सिंहासन के साथ मस्तक पर रखकर ले जाऊँगा। (ऐसा करके बाहर चला जाता है)

सब—(ज्ञानशून्य होकर) हा कृष्ण तुम कहाँ हो ॥५७॥

कृष्ण—(कुञ्ज से बाहर श्राकर विषाद के साथ) हे सुन्दरि ! श्राज मैं श्रसंख्य श्रभिलाषाश्रों के द्वारा व्यग्र होकर तुमको इस शरदपूर्णिमा की परिमल से पूर्ण बृन्दावन धाम की कुञ्जों में लाया हूँ। परन्तु हाय ! प्रतिकूल दैव शङ्खचूड़ रूप कपटाकार धारण कर किस प्रकार साहस से यहाँ से ले गया है। (ऐसा कह कर क्रोध के साथ हुंकार करते हुए घूमने लगे) श्रार्ये ! भय मत करो, मैं तुम्हारे समीप हूँ।

मुखरा—(श्रश्रुपात करते हुए) हे चन्द्रमुख ! तुम विजय-लक्ष्मा के द्वारा स्वयं वरित हों ॥५८॥

कृष्ण—(विक्रम प्रकाशक शब्द करते करते) रे, रे दुष्ट ! श्रीराधा के निकट श्रपराधी, तुम्हारी तरह दुराचारी के प्रति जब तक मैं दण्डविधान नहीं करूँगा, तब तक मुझको गुरुतर खेद रहेगा। सर्वप्रकार से धर्मविध्वंसिनो मृत्युरूपा कालरात्रि तुम्हारे प्रति धावित हो रही है। श्रब मैं क्या करूँगा ॥५९॥

कुन्दलता—ललिते ! देखो, देखो। ये हताश होकर राधिका

को त्यागकर कृष्ण के साथ युद्ध करने के लिये प्रयास कर रहा है।

(नेपथ्य में)—कहाँ तो अति विशाल तालबृक्ष की भाँति उन्नत बाहु वाला, तथा गिरितट को भाँति विस्तृत वक्ष वाला यह अधम यक्ष और कहाँ बालतमाल की भाँति कोमल एवं कामदेव को भाँति सुकुमार सुकान्ति वाला यह बालक। इसका अन्य कोई चतुर सहायक नहीं है। हे गोष्ठेश्वरि यशोदे! नहीं जानती हूँ कि तुम्हारी तपस्या का आज क्या परिणाम होगा?

सब—(सुनकर अचेत हो जाते हैं।)॥६०॥

(पटक्षेपण के अनन्तर पौर्णमासी का प्रवेश)

पौर्णमासी—वत्से! ललिते, व्यथित मत हो, इस खल स्फुलिंग को शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त समझ लो।

(नेपथ्य में)—मयूर-पिच्छचूड़ श्रीकृष्ण अपने बाहुदण्ड के आटोप-भङ्गिमा से शत्रु के विकट शरीर के मर्दन में गौरवान्वित होकर, अटवा-मण्डल में क्रीड़ा करते करते अपने दन्तांकुर से कुटिलाकार वाले एवं भयङ्कर मस्तक वाले शङ्खचूड़ के मुकुट से स्वर्ग की प्रचण्ड-सूर्य किरण की भाँति उज्वल रत्न का दण्डरूप से आकर्षण करने लगे ॥६१॥

पौर्णमासी—सौभाग्यवश रत्नाकर्षण छल से इसके जीवन का आकर्षण कर श्रीकृष्णने बध किया है, अतः आज बृन्दावन-शृगालों के पारण के उत्सव का सम्पादन होगा। (पुनः देखकर सहर्ष) देखो, देखो, यह यक्ष, रक्षामणि च्युत होकर मृत्युमुख में पतित हुआ है ॥६२॥

(पुनः नेपथ्य में)—पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण ने क्रीड़ा करते करते मुष्टि के द्वारा पापात्मा इस यक्ष के प्राणदण्ड दिया है और शान्ति प्रदान की है ॥६३॥

पौर्णमासी—(सम्मुख में दृष्टिपात करके सानन्द) अहो ! युद्ध में विकट आक्रमण रूप-उद्यम-प्रकाश के द्वारा शत्रुध्वंश के क्रोधावेश में मधुसूदन की सुन्दर चूड़ा भूमि पर गिर गयी है, और जो स्वर्गवासी देवतागणो के द्वारा कुसुमवर्षा के साथ आद्रित होकर हमारे नेत्रयुगल को आनन्द बिधान कर रहे हैं ॥६४॥

विशाखा—भगवती ! प्रातःस्मरणीय श्रीबलदेव को सम्मुख करके समस्त सहचर उपस्थित हो गये हैं।

पौर्णमासी—अहो देखो ! पुरुषोत्तम इस मनोहर मणिश्रेष्ठ को बलराम को अर्पण कर रहे हैं।

ललिता—देखो ! सखा समूह को विदा करके माधव अकेले ही राधा का अनुसरण कर रहे हैं ॥६५॥

पौर्णमासी—देखो, देखो, भयभीत श्रीराधिका के द्वारा आलिंगित और मयूरपुच्छ विरचित मनोहर चूड़ाधारी मुकुन्द हम सब के निकट आ रहे हैं, श्रमकणों से जिनका वदन उल्लसित हो रहा है ॥६६॥

(यथा निर्दिष्ट श्रीकृष्ण का प्रवेश)

श्रीकृष्ण—हा, नेत्रों से कलिन्दसुता यमुना के कमलों की निन्दा करने वाले ! हे गोविन्द ! हे गोकुल पुरन्दर के नन्दन ! मेरी आज शीघ्र रक्षा करो, रक्षा करो,इस प्रकार आर्तनादकारी आभीरनयना राधा को मैं विस्मरण नहीं करूँगा।

पौर्णमासी--(आगे आकर) हे यशोदानन्दन ! तुमने आज हमारे चिन्ता पर्वत को उखाड़ लिया। (ऐसा कहकर राधिका के साथ माधव को आलिंगन करने लगी) ॥६७॥

मुखरा--(दोनों हाथों से सादर श्रीकृष्ण का मुख मार्जन करके)हे वीर! तुम्हारी आराधिता राधिका आज भाग्यवश तुम्हारे द्वारा रक्षित हुई।

(मधुमङ्गल का प्रवेश)

मधुमङ्गल—प्रिय वयस्य ! बलरामजो ने इस मणीन्द्र को श्रीराधा के लिये प्रदान किया है।

कृष्ण—मणिसमूह में यह श्रेष्ठ है और कौस्तुभ के समान है। अतः राधा के कण्ठ-भूषण योग्य है।

ललिता—जैसी आपकी आज्ञा।

कृष्ण—अब सब चलो, उस दुष्ट-विजय की कथा के द्वारा पिता-माता को आनन्दित करें।

(गमन करते हैं) (सब का प्रस्थान) ॥६८॥

(ललितमाधव नाटक का शङ्खचूड़ बध नामक द्वितीय अङ्क समाप्त हुआ)

तृतीयोऽङ्क

(तदनन्तर बृन्दा के साथ आलाप करती हुई पौर्णमासी का प्रवेश)

पौर्णमासी—हाय ! रात्रि का शेष मुहूर्त्त क्यों अतीत हुआ ? देखो देखो, दूर से सूर्यरूप शरभ (सिंहजयी अष्टपदी) के प्रकाश से उदय शलतट को समुज्वल देख कर चन्दनपिंड की भाँति पीले चन्द्ररूप-सिंह भय से अस्ताचल में प्रवेश कर रहा है ॥१॥

बृन्दा—भगवति ! महासमुद्र मन्थन की भाँति गम्भीर कोलाहल शब्द सुन कर सभय मैं आयी हूँ, अतः क्या व्यापार है कहिये ॥

पौर्णमासी—पुत्रि बृन्दे ! यह व्यापार तुम्हारे कर्णकुहर गत नहीं हुआ है ॥

बृन्दा—भगवति ! क्या व्यापार ?

पौर्णमासी—वृषासुर बध से वर्द्धित रोष पर्वततुल्य केशी दानव का अपूर्व पराक्रम से वध कर गत-काल श्रीकृष्ण के गोष्ठ में प्रवेश करने पर कंस के द्वारा आदेश प्राप्त कर गान्धिनीनन्दन अक्रूर ने रथारोहण कर नन्दभवन में आगमन किया है । वह राजदूत पूर्व-पर्वत में सूर्यदेव के उदय होने पर अर्थात् प्रातःकाल में बलदेव के साथ श्रीकृष्ण को मथुरा ले जावेगा ॥

बृन्दा—(क्षणकाल तुष्णी होकर दीर्घनिश्वास त्याग कर विह्वल के साथ)

हाय ! यदि अक्रूर श्रीकृष्ण को मधुपुरी ले जावेगा तो मैं किस के लिये बनभूमि में नवीन-कुञ्ज की रचना करूँगी ? अथवा किस लिये उसमें सुशोभन पुष्पशय्या बनाऊँगी ? और असमय में सुगन्धि सञ्चार कर लताओं को प्रफुल्लित कराना क्या आवश्यक होगा ॥२॥

पौर्णमासी—(व्यथा के साथ) हा देव ! तुझे धिक्कार है । प्रभात होने के भय से प्लुतस्वर से रोने वाला एवं पुनः पुनः अक्रूर के प्रति क्रोधाक्षेप करने वाली कमलनयनी ब्रजबालाओं के उत्सुक-नयन से जागर्त्त रहते रहते वह रात्रि क्षणकाल की भाँति अति-क्रान्त हुई है ॥३॥

बृन्दा—(अश्रुपात करती करती) हाय ! हाय अक्रूररूप मन्दराचल ने सुविस्तृत गोकुल सागर को विक्षोभित कर भ्रमवश हरिरूप चन्द्रमा का हरण कर विरह क्लेशरूप कालकूट का अर्पण कर रहा है ॥४॥

पौर्णमासी—वत्से ! आओ यहाँ से गोपराज के नगर द्वार पर चलें । (ऐसा कह कर परिक्रमण करती सम्मुख में देख कर वाष्पा-कुलनयन से)

आहा ! यह तो नन्दगृहिणी यशोदा विरह से उत्कण्ठिता होकर यात्राकालोचित कोई मङ्गलाचरण नहीं कर रही है । वह बुद्धि-विभ्रान्ता होकर वात्सल्योपयोगी कोई पाथेय वा उपहार नहीं दे रही है परन्तु केवल नयनजलों से धूलिसमूह को पंकिल करती गोविन्द को आलिङ्गित कर अनवरत क्रन्दन कर रही है ॥५॥

बृन्दा—क्या आपने शैव्यासखी की जल्पना सुनी है ?

पौर्णमासी—वत्से ! कैसी ?

बृन्दा—"हे विमुग्धे ! मेरे मन में ऐसा अनुभव हो रहा है कि तुमने अब तक घोषपल्ली की करुणरस पूर्ण उच्च विलाप-ध्वनि नहीं सुनी है ? क्यों कि अब तक तुमने अपना चित्त दधिमन्थन में लगा रखा है । हे सखि ! कंस राजा के पापिष्ठ दूत मुकुन्द के कान में कुछ कहता हुआ उनको मथुरा जाने के लिये व्यग्र कर रहा है ॥६॥

पौर्णमासी—वत्से ! तुम तो शैव्या के विमोह के कारण विह्वला हो रही हो परन्तु श्यामला के विलाप की कथा कुछ नहीं सुनी है ।

बृन्दा—ठीक कहती हो, इसका वर्णन करो ।

पौर्णमासी—हे हृदय ! जब तक सूर्यविम्ब उदयपर्वत में उद्-गत नहीं होता है और जब तक अक्रूर रथ में आरोहण कर यात्रा-मङ्गल पाठ नहीं करता है और जब तक रथ के अश्वसमूह शीघ्र गमन से पृथ्वी को विदीर्ण कर तुमको फफोला रूप में परिणत नहीं करते हैं, तब तक तुम विदीर्ण हो जाओ ॥७॥

बृन्दा—भद्रा किस प्रकार विलाप कर रही है, आओ, सुनें ।

(नेपथ्य में)—हे प्राणपक्षी ! तुम्हारे प्राणनाथ सत्वर रथ-नीड़ में आरोहण कर रहे हैं, हाय ! तो भी तुम इस मृत-कल्प शरीर रूप नीड़ का परित्याग नहीं कर रहे हो ॥८॥

पौर्णमासी—(बाँयी ओर देखकर) हे वत्से ! माधव के

मध्याह्न कालीन पुष्पमाला रचना करने वाली चन्द्रावलि के प्रति हृदय में शल्यारोपण करने वाली पद्मा की उक्ति को श्रवण करो ॥६॥

(नेपथ्य में)—हे चटुले ! तुम्हारे प्रियसहचर चक्रपाणि श्रीकृष्ण सम्मुख में रथारोहण किये हुए हैं। हाय ! अब तक तुम पुष्पमाला गूंथने में व्यस्त हो रही हो। हे बधिरे। गोपों की और गौओं की विलापध्वनि अब तक तुम्हारे कर्ण-कुहर में प्रवेश नहीं कर रही है।

पौर्णमासी—(उद्वेग के साथ) अहो ! सखी के इस अप्रिय बचन का हठात् श्रवणकर चन्द्रावलि के हस्तकमल से अर्द्धग्रथित पुष्पमाला गिर गयी है। हाय, हाय, चन्द्रावलि तन्द्रा-युक्त होकर मूर्च्छित होगयी है ॥१०॥

वृन्दा-- देखो, देखो, विवशा चन्द्रावलि को रथ के आगे रखकर पद्मा विलाप कर रहा है।

नेपथ्य में—हे हताशे ! एकवार क्षणकाल के लिये नयनांचल का प्रकाश करो। हाय, हाय, निष्ठुर गांधिनि-पुत्र अक्रूर अश्वों को शीघ्र गमन् में उद्यत कर रहा है ॥११॥

पौर्णमासी—हाय वत्से ! राधिका को न देखकर मैं अत्यन्त व्याकुल हो रही हूँ।

वृन्दा—(दांयी ओर देखकर) हा धिक् ! देखो, देखो, विशाखादि सखियाँ श्रीराधिका को श्रीकृष्ण के मथुरा गमन की वार्ता किसी प्रकार बतलाने में समर्थ नहीं हो रही है और बिना बोले रह भी नही सकती हैं। परन्तु वे सब अत्यन्त जड़ता प्राप्त होकर अधीरभाव से परस्पर कानों मे कुछ कह रही हैं ॥१२॥

पौर्णमासी--(खेद के साथ) हे वराक्षी ! निमेष-रूप विघ्न के द्वारा एक वार मात्र जिनके दर्शनसुख में बाधा प्राप्त होकर तुम निमेषरहित मीन-पत्नी की प्रशसा करती रहती हो, हे राधे ! आज वही माधव मथुरा गमन कर रहे हैं। उनके प्रणय से आहत

हृदया तुम्हारी क्या दशा होगी, वह हम नहीं जान सकती हैं ॥१३॥

बृन्दा—देखो, देखो, चारों ओर से हठात् कोलाहल श्रवण कर श्रीराधिका कुरङ्ग की भाँति चञ्चल नेत्रा होकर राजमार्ग में उपस्थित हो रही है।

पौर्णमासी—हाय, बड़ा कष्ट है। आज राधिका दिव्योन्माद-मयी उद्घूर्णा दशा को प्राप्त हो रही क्यों कि परस्पर सम्बधरहित नाना भाषामयी कथा का उच्चारण कर रही है।

(नेपथ्य में)—हे सखि! बन्धुजन के साथ रथ पर ब्रजेन्द्रनन्दन को देखकर मेरा शरीर गिरता जा रहा है। पृथ्वी क्यों घूम रही है और सम्मुखवर्ती कदम्बवृक्ष क्यों नृत्य कर रहे हैं ॥१४॥

पौर्णमासी—सुनो, ललिता क्या कह रही है।

(नेपथ्य में)—हे सखी राधे! दुखित मत हो, यह पर्वत उल्लङ्घित हो रहा है।

पौर्णमासी—राधिका के वचनों को श्रवण करो।

(नेपथ्य में)—हे सहचरी! मैंने अब समस्त व्यापार जान लिया है, तुम अपनी चातुरी के द्वारा गोपन करने में क्या समर्थ हो सकती हो। हे निष्ठुरे! क्षान्त हो, भविष्य में हरि का विरह क्लेश नहीं होगा। क्या हमारे प्राण बार बार कण्ठदेश में उपस्थित होकर निर्लज्ज होकर रहेंगे अर्थात् वे बाहर नहीं निकलेंगे ॥१५॥

बृन्दा—भगवती! विशाखा कुछ बोलने की इच्छुक हो रहा है।

(नेपथ्य में)—हे सखि! प्रणयी श्रीहरि कंस को मार कर रात्रि-काल में तुम्हारे साथ मिलेंगे, अतः तुम विस्मययुक्त-घूर्णा को परित्याग करो क्यों कि तुम क्षमावती रमणियों की शिरोमणि स्वरूपा हो ॥१६॥

पौर्णमासी—सुनो! श्रीराधिका क्या कह रही है। हे हताशे! गुणकीर्तन में शुष्क वदना होकर आश्वासन मत दो, देखो, यह

रथाङ्ग चक्र अति कठिन पृथ्वी की कोख को विदीर्ण कर रहा है ॥१७॥

पौर्णमासी—अहो, कमलनयन श्रीकृष्ण की मथुरायात्रा में भीतमना होकर यह चकोराक्षी राधिका अधैर्य-पूर्ण अवस्था अङ्गीकार कर रही है अर्थात् मूर्च्छा प्राप्त हो रही है।

बृन्दा—वह राधिका कभी चीत्कार करती हुई रथ के आगे लुण्ठित हो रही है, कभी वाष्पाकुल-लोचन से श्रीकृष्ण के मुख को देख रही है और कभी दांतो से तृण धारण कर राम के आगे गिर रही है, इस प्रकार यह बाला-राधा किसको दुःख सागर में निमग्न नहीं कर रही है ॥१८॥

पौर्णमासी—(अश्रुपूर्ण लोचन से) हाय, हाय जिसने प्रियसहचरियों के समक्ष लज्जावश कंसारि श्रीकृष्ण के अधरबाही सौरभ में दृष्टि नहीं दी है वह राधा आज गुरुजनों के समक्ष लज्जा परित्याग कर इस दशा को प्राप्त हो रही है, इससे मेरा चित्त अत्यन्त दुःखित हो रहा है ॥१९॥

(पुनः देखकर)

श्रीराधा का दुःखपूर्ण मलिन वदन का दर्शन कर रथारूढ़ मुरारी के वदन कमल से क्रम से अश्रुरूप मकरन्द पात हो रहा है ॥२०॥

बृन्दा—भगवती ! निश्चय इन कुमारियों के प्राण प्राणेश्वर के साथ गमन करेंगे।

पौर्णमासी—पुत्री ! श्रीहरि के संदेशहारी को देखो जो आकर कान ही कान में कह रहा है। हे शान्त प्रकृति वाली रमणियों ! तुम सब किसी प्रकार इस दुःखपूर्ण कुछ रात्रि को यापन करो। पुनः हमारे साथ तुम सब का मङ्गलमय मिलन होगा। इस प्रकार अघविजयी श्रीकृष्ण ने दीर्घ आशापाश से कमलनयनियों

के प्राणरूप कुरङ्ग समूह का बन्धन किया ॥२१॥

बृन्दा—(व्यथित होकर) हाय, कमलनयन श्रीकृष्ण के मथुरा गमन करने पर भ्रमरगण अब मधुपान नहीं कर रहे हैं, मयूरगण ताण्डवनृत्य के द्वारा बन को अलंकृत नहीं कर रहे हैं, चक्रवाकगण अब अपनी पत्नियों के साथ नहीं मिल रहे हैं ॥२२॥

पौर्णमासी—(रथ के पहिया के चिन्हों का अनुसरण करके खेद के साथ)

हाय, श्रीराधिका काकु वाक्य के द्वारा इस प्रकार व्याकुल होकर रोदन कर रही है जिससे मानो वह समस्त जगत को आश्रय रहित शोकसागर में निक्षेप कर रही है। हाय ! मानो पृथ्वी शोकभार से रथचक्राग्र से निर्मित रेखा-छल से बहुदूर तक विदीर्ण हो रही है ॥२३॥

बृन्दा—हाय कष्ट, हाय कष्ट, मुकुन्द की विरह जात व्याधि के द्वारा बार बार अधीर होकर धीरा-श्रीराधा कभी समक्ष हो रही है और कभी चित्र की भाँति निस्तब्ध होकर खड़ी हो रही है तथा कभी उन्माद की भाँति हास्य करती है और कभी तीव्रता से रोदन करती है। कभी प्रलाप करती है और कभी मौनाबलम्बन करती है ॥२४॥

(नेपथ्य में)—(हे सखी ! वे नन्दकुल चन्द्रमा कहाँ हैं ? शिखि-चन्द्रिकालङ्कार वाले वे कहाँ हैं ? गम्भीरमुरली शब्द वाले कहाँ हैं ? इन्द्रनीलमणिद्युति वाले वे कहाँ हैं ? वे रासरस-ताण्डवी कहाँ हैं ? हे सखि ! मेरी जीवन-रक्षा के औषधिरूप वे कहाँ हैं ? सुहृत् रूप परमनिधि वे कहाँ हैं ? हाय बिधाता तुमको धिक्कार है ॥२५॥

पौर्णमासी—हाय ! कष्ट, सम्मुख में दुर्निवार मूर्तिमान करु-

णाधिक्य उपस्थित हो रहा है। अतः यहाँ से शीघ्र प्रस्थान करें।

बृन्दा—भगवती ! मुखरा को यहाँ उपस्थित करने की इच्छा है। (ऐसा कहकर दोनों चली जाती है)

(विष्कम्भक)

(तदनन्तर सखियों के द्वारा आश्वासमाना श्रीराधा का प्रवेश)

राधा—(क्रन्दन करती हुई) हे सुमुखि ! मैंने प्राणभर कर यथेच्छ रूप से कर्णपुट के द्वारा प्रियतम के परिहास वाक्य का पान नहीं किया और निशङ्क होकर उनके मुखकमल-कान्ति का दर्शन नहीं किया और श्रीहरि के सुविस्तृत वक्षपीठ का गाढ़रूप से आलिगन नहीं किया, ये समस्त चिन्ता करते करते मेरा मर्म विदीर्ण हो रहा है॥२६॥

विशाखा—हे सखि ! श्रीकृष्ण के प्रत्यागमन सम्बाद जानकर भी क्यों इस प्रकार वेदनानल ज्वाला में अपने को निक्षेप कर सखियों प्राणों को गोबर की अग्नि (उपले से) से जलाती हो।

राधा—श्रीकृष्ण का चित्त दीनों के प्रति करुणातरङ्ग से परिपूर्ण है। अतः गोप-रमणियों के पक्ष में उनकी दर्शन की सम्भावना हो सकती है। परन्तु मेरी शत्रु-रूपिणी मर्मग्रन्थि-छेदन-कारिणी क्रूरविरह-व्यथा उस प्रकार सौभाग्योत्सव को सहन नहीं कर रही है अर्थात् प्रबल-बिरह में तब तक मेरा जीवन नहीं रह सकता है॥२७॥

(ऐसा कह कर अत्यन्त आर्त्तभाव दिखा रही है)

हे सखि ! गोकुलपति के बियोगजात ज्वर बलवान होकर मेरे मर्मों का भेदन कर रहा है जो कि पुटपाक से अर्थात् मृण्मय-सम्पुट के भीतर स्वर्ण का जो पाक है उससे भी अधिक उत्ताप देने

वाला है जो गरल समूह उससे भी क्षोभजनक है। बज्र से भी दुःसहनीय है और हृदय में विद्ध सेल से भी अधिक दुःखदायक है। पुनः प्रौढ़विशूचिका रोग से भी विशेष तीव्र है ॥२८

(ऐसा कहकर मुक्तकंठ से रोदन करने लगी)

(नेपथ्य में—आज कोटि कोटि प्राणों से भी प्रियतम श्रीहरि के दूर जाने पर श्रीराधिका का मर्मस्थल दुःसहनीय शोक-शल्य के द्वारा विद्ध हो गया है। अतः हे आर्यचरिते मुखरे! तुम निषेध मत करो, निषेध मत करो। यह क्षीणांगी क्षणकाल पृथ्वी पर लुण्ठन कर आर्त्तस्वर से यथेच्छ रूप रोदन करें ॥२९॥

ललिता—(नेपथ्य की ओर देखकर मन ही मन में) बृन्दे! राधिका को निवारण करने में उद्यत मुखरा को निवारण कर तुमने उत्तमकार्य किया है।

राधा—(पुनः चक्रवाकी को देखकर अभ्यर्थना करती हुई) हे चक्रवाकी! तुम पूर्वदिशा से आयी हो। श्रीहरि निश्चय तुम्हारे नेत्रपथ के पथिक हुये हैं अतः उनका सम्बाद कहो। मार्ग में परिश्रांत हो जाने पर उनके रथ श्रांति का किसने निवारण किया है और किसने उनके वेशभूषा को यथास्थान में विन्यस्त किया है ॥३०॥

ललिता—प्रियसखी! कदम्बवृक्ष के शिखर में अवस्थित इस वायसराज का ओर देखो, जो कि विरहिणियों के कुटुम्बरूप में मथुरा यात्रा के लिये उत्कण्ठित हो रहा है।

राधा—(प्रशंसा के साथ) हे भ्राता! वायसकुल-चूड़ामणि! तुम गोकुल से जा रहे हो, वहाँ जाकर वन्दनापुरःसर बृन्दावननाथ को यह सम्बाद कहना कि हे नागरचन्द्र! तुम्हारी विरहाग्नि मेरे अङ्गरूप आलय में प्राणपशु को दग्ध करने के लिये आनन्द से प्रज्वलित हो रही है। अतः तुम उसका मिलन-आशा रूप अर्गल-बन्धन का छेनन कर दो ॥३१॥

(वाँयी ओर सारिका को देखकर) हे सखा सारिके ! तुम हरि की दूती हो। मैंने यह नहीं जाना था । अतः स्पष्ट कहो कि वह क्षुद्र-शत्रु का संहार कर सुहृत्जनों से परिवेष्टित होकर पच्छिमी मुखी होकर क्या रथ, रथ, ऐसा शब्द उच्चारण कर रहे हैं ॥३२॥

(ऐसा कह कर भय के साथ रोदन करती है) हाय ! अब गुरुजन क्या कहेंगे, अब वह वशीनादामृत कहाँ है । अब तो वह सुखहारिणी उक्ति नहीं सुन पा रही हूँ ! वह परिहासभंगी कहाँ है । मैं किस प्रकार क्षणकाल धैर्यधारण करूँगी। हाय ! मेरा प्राणनाथ कहाँ है। मुझे धिक्कार है, मैं अब तक हरि को नहीं देख पा रही हूँ। हे हतभाग्य प्राण ! शीघ्र कण्ठदेश परित्याग कर॥३३॥

विशाखा--(कान में) ललिते ! शीघ्र ऐसा उपाय करो जिससे प्रियसखी को प्राणहारी बेदना क्षणकाल को उपसम हो जाय।

ललिता—(राधा के निकट आकर संस्कृत में) हे पङ्कजाक्षी ! हम सब को यह आशंका हो रही है कि वह कौतुकी हरि अक्रूर आगमनादि-रूप माया निर्माण कर हम सब से परिहास कर रहे हैं क्यों कि वे तो कभी बृन्दावन-कन्दर का परित्याग करने में समर्थ नहीं होते हैं। अतः ह सखी ! चलो उनको कुञ्जान्तर में खोजें वे अवश्य मिल जावेंगे।

विशाखा—तुम सत्य ही विचक्षणा हो, यथार्थ कहती हो।

राधा—सखियों ! इस में कोई असम्भव नहीं है । चलो सब मिलकर उनको खोजें।

(कुछ काल भ्रमण करते करते सम्मुख में हरिणी को देखकर वाष्पाकुल नेत्रों से)

हरि, हरि अर्थात् हाय, हाय, हे हरिण-समूह, जब कि बार बार बशीनाद श्रवण से तुम्हारे मुख से अर्द्धचर्वित तृणग्रास गिरता

जा रहा है तब क्या तुम सबने अपांग पथ में श्रीहरि को पथिक बनाया है ॥३५॥

(आगे जाकर अट्टहास के साथ)

अरी मयूरी ! तुम कुटिलता त्यागकर शीघ्र कहो, शिखिपृच्छ-धारी हरि शरीर को छिपाकर किस कुञ्ज में विराजमान हैं क्यों कि उनकी मुरलीध्वनि तुम्हारे निकट नूतन मेघध्वनि से अर्व्वुद संख्या से प्रियतर है ॥३६॥

विशाखा—(ग्रीवाउठाकर अवलोकन करते हुये) यह तो प्रियसखी के कुञ्ज तट के कुण्ड को गुञ्जावलि दिखायी दे रही है।

राधा—(सम्भ्रम के साथ लेकर आघ्राण करके कम्पित होकर) हे सखी गुञ्जावलि ! तुम मणिराज कौस्तुभ के आलोक के द्वारा उज्ज्वल होकर दनुजारि श्रीकृष्ण के वक्ष में विराजमान होती हो,हाय,अब तुम व्याकुल होकर कुञ्जमार्ग में लोट रही हो ॥३७॥

ललिता—सखी ! अनुसन्धान के अभिनिवेश से हम सब ग्राम-पथ न जानकर किस प्रकार सखीस्थली ग्राम के प्रान्त में उपस्थित हो गयी हैं।

राधा—हा प्रियसखी चन्द्रावलि ! (ऐसा कहकर अति उत्सुका होकर) जिसने ब्रजराजनन्दन के साथ स्वामी की तरह आचरण किया है मैं उस अदृष्टपूर्वा चन्द्रावलि को देखना चाहती हूँ।

विशाखा—वह कराला के मन्दिर में आबद्ध होकर क्षीण हो रही हैं।

राधा—तब चलो इस गिरीन्द्र गिरिराज का स्तवन करें।

(परिक्रमण कर ईर्षा के साथ)

विशाखे ! क्यों अब मुझे प्रतारण करती हो, सम्मुख हो देवी चन्द्रावली विराजमान है। (आगे जाकर गद्गद् कण्ठ में)

हे सखि ! लताकुञ्ज कुसुमित हो रहा है जहाँ कि मधुपान में

मत्त होकर भ्रमर समूह गुञ्जन कर रहा है। उसमें जो हास्यमुख होकर शङ्कित व्यक्ति की भाँति नयनयुगल का क्षपण कर विराज-मान हैं जिनके हाथों में मुरली और मस्तक पर मयूरपुच्छ की चूड़ा है वह स्वच्छन्दचारी ब्रजराजनन्दन को क्या तुमने कहीं देखा है। (पर्वत-कन्दरा में प्रतिध्वनि को श्रवण कर दुःख के साथ) यह भी रोदन करके हमसे पूछ रही है। (ऐसा कह कर समीप में जाकर मोह के साथ) हे सुन्दरि ! श्रीहरि के बहु मनोहर आलि-गन के द्वारा तुम्हारा अङ्ग मङ्गलमय हो रहा है । आज इस हत-भागिनी राधा ने सौभाग्यवश उसका दर्शन प्राप्त किया है । अतः हे चन्द्रावलि ! तुम्हारे भुज-युगल कंसारि के कर्णशोभी कुसुम-सौरभ से परिलिप्त हैं, उस पुष्ट भुजयुगल के द्वारा शीघ्र हमारा कण्ठ-वेष्टन कर तृप्ति विधान करो ॥३८-३९।

(ऐसा कह कर आलिंगन करने जाती है)

ललिता—अरी राधे ! यह चन्द्रावली नहीं है, यह तो स्फटिक-शिला में तुम्हारा प्रतिबिंब है।

राधा—(निर्धारण पूर्वक) असत्य नहीं कहा है। (ऐसा कह कर उल्लास के साथ हँसकर) हे ललिते ! भाग्यवश मैं अत्यक्त देहा हुई, देखो, देखो, (ऐसा कह कर अंगुली दिखाती हुई) दूर में मयूर-पुच्छ मुकुटधारी श्रीहरि गौरांगी-गणों के द्वारा आलिंगित होकर क्रीड़ा कर रहे हैं।

(असूया के साथ ऐसा कह कर पुनः निरूपण कर खेद के साथ)

हे सखी ! यह तो कान्त नहीं है , परन्तु इन्द्रधनु के द्वारा शोभित एवं विद्युत्लेखा से मनोहर स्निग्ध नवजलधर गिरि का अवलम्बन कर रहा है। (ऐसा कहकर मूर्च्छित हो जाती है)॥४०॥

दोनों—(ललिता एवं विशाखा) सखि ! धैर्य अवलम्बन

करो, धैर्य अवलम्बन करो।

राधा—(आश्वस्त होकर आदर के साथ) हे गिरीन्द्र ! तुम प्रवर प्रेम के साथ श्रीकृष्ण की सेवा आचरण में वरीयान् हो। ऐसा अनुमान किया जा रहा है कि तुम्हारी गोद में श्रीकृष्ण निवास करते हैं। (कातरोक्ति विस्तार कर) तुम दया कर के दूर से शीघ्र गुहाद्वार उन्मुक्त कर दामोदर का दर्शन करा कर मेरे इस दुरन्त दैन्यतरंग का दमन करो ॥४१॥

(पुनः देख कर) हाय ! यह तो झनत्कार शब्द युक्त निर्झर जलरूप प्रवल अश्रुपूर्ण होकर मौन हो रहा है।

(कृताञ्जलि होकर) हे गोवर्द्धन ! तुम गोकुलभूमि में अवस्थान कर उच्च शृंगों के द्वारा गगनमण्डल स्पर्श कर विराजमान हो, अतः चारों ओर दृष्टि डाल कर कहो तो, आज श्रीहरि कहाँ क्रीड़ा कर रहे हैं ॥४२॥

(कुछ आगे जाकर) हे चटुलाक्षि ! यह वह मकरन्द परिपूर्ण कदम्बवृक्ष है। जिसके मूलदेश में बैठ कर श्रीहरि ने मयूरपुच्छ शलाका के द्वारा मेरे केशकलाप में चूड़ा रचना की है ॥४३॥

(दाहिने ओर देखकर रोदन करती) यह तो वह गोवर्द्धनगिरी की गुहा है, इस के द्वार पर श्रीकृष्ण के द्वारा विरचित विचित्र मल्लिकापुष्प का शय्या विस्तीर्ण हो रही है। सम्मुख में यह शय्या चारों ओर विलास स्मरण करा रही है, जिसका स्मरण कर अब तक यह हीनप्राण कण्ठ में विराज रहा है अतः उसको धिक्कार है ॥४४॥

(ऐसा कह कर व्याकुलता प्रकाश कर) हाय ! सखि ! मैंने समस्त कुञ्ज देखीं, वृन्दाटवी के समस्त स्थान में ढूढ़ा, निविड़ भाण्डीरबट को भूमण्डली देखी, और इस गोवर्द्धन पर्वत के अङ्ग

अङ्ग निरीक्षण किया, परन्तु ललिते ! कहीं भी तुम्हारे बन्धु का गन्धलेश भी प्राप्त नहीं हुआ ॥४५॥

ललिता—अरी ! कुञ्ज में छिपने वाले माधव को तुमने क्या कई बार खोज कर बाहर नहीं निकाला ? अत: निराश मत हो।

राधा—(आगे चलकर सम्भ्रम के साथ) ललिते ! उत्तम उत्तम, देखो दूर से सम्मुख अक्रूर के साथ नन्दनन्दन रथ पर विराजमान हैं। अत: उनका कण्ठ धारण कर रथ से उतारती हूँ। (ऐसा कह कर तदभिमुख में अग्रसर होकर व्यथा के साथ) हाय यह तो सम्मुख में स्वर्णस्तवक भूषित पवत शृङ्ग है परन्तु रथ नहीं है। यह तो नीलवर्ण तमालवृक्ष है किंतु गोपियों के रतिगुरु श्रीहरि नहीं है। यह तो बलवान शार्दूल (व्याघ्र) है परन्तु कंसदूत अक्रूर नहीं है। हे सखि ! विधाता के प्रतिकूल होने पर समस्त ही अन्यरूप हो जाता है ॥४६॥

(ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाती)

विशाखा—ललिते ! जब तक कमलदलों को लाती हूँ तब तक इसको पटांचल से वोजन करो। (शीघ्रता से चली जाती है।)

(नेपथ्य में) श्रीराधा के उत्कट विरहजात अत्यधिक दैन्य को देखकर स्पष्ट ही मानसीगङ्गा सूख गई है। अहो ! जिसके शृङ्गाग्र की दूर्वा को सूर्य्यरथ के अश्वसमूह भोजन करते हैं वह गोवर्द्धन-पर्वत आज संकुचित होकर शतहस्त परिमाण में रह गया है ॥४७।

राधा—(संज्ञा प्राप्त कर अपने को ललिता मान प्रणययुक्त ईर्ष्या के साथ) सखि राधे ! अलीक मान-दुर्लीला का त्याग करो।

ललिता—(निश्वास त्याग कर नम्रवदन में रहने लगी)

राधा—सखि राधे ! तुम्हारे पदशब्द में दत्तकर्ण होकर श्रीकृष्ण केलिनिकुञ्ज में प्रवेश कर रहे हैं। (ऐसा कह कर ललिता के चरण प्रान्त मे गिरने लगी) सखि ! यह मुकुन्द कुन्दपुष्पों से उज्वल कुञ्ज

के लिये जा रहे हैं। लतावली मानो हँसती हँसती मधुकर गुञ्जन के द्वारा त्वरान्वित कर रही है। अतः हे उन्मत्ते! चरणपतिता इस सहचरी को व्यथिता मत करो। यह दुर्लभ श्रेष्ठ अवसर तुम्हारी मुग्धता के कारण विफल हो गया है ॥४८॥

ललिता—हाय! मैं मन्दभागिनी दैव के द्वारा हत हुई हूँ।

(ऐसा कह कर फुत्कार कर रोदन करने लगी)

विशाखा—(निकट में आकर आदर के साथ) ललिते! क्या करती हो, धैर्य धारण करो।

राधा—(विस्मय के साथ) सखि! क्या तुम ललिता हो।

ललिता—(गद्गद् के साथ) हाँ मैं ही वह हूँ।

राधा—अहो! सत्य कहती हो, तो मैं क्या राधा हूँ?

(चारों ओर देख कर) तब निश्चय हम सब वनमाला के पुष्पों के चयनार्थ यहाँ आयी हैं। श्रीकृष्ण के कर्णभूषणार्थ मल्लिका स्तवक का चयन करें॥

(ऐसा कह कर पुष्पोद्यान में प्रवेश कर सातङ्क पूर्वक)

अहो! आश्चर्य, मल्लिकापुष्पों की कलिकाएँ क्यों स्खलित हो रही हैं? पद्मसमूह के कोरक क्यों चारों ओर टूट रहे हैं? जाती-पुष्पों के मुकुल क्यों श्यामकान्ति धारण कर रहे हैं? हाय! श्री-हरि के बृन्दावन में अतिशीघ्र इस प्रकार दुर्गति क्यों उपस्थित हुई है? ॥४८॥

दोनों—निश्चय यह बनस्थली महा दावानल की ज्वाला से दग्ध हो रही है।

राधा—ललिते! नहीं जानती कि—किस कारण से आज मेरा चित्त तीक्ष्ण दावानल क्रीड़ा के द्वारा परिव्याप्त हो रहा है।

अतः जिन्होंने दृष्टिमात्र में प्रचण्ड दावानल मण्डल का मथन किया है तुम्हारे उन वयस्य का अनुसरण करें।

ललिता— प्रियसखि ! चलो ऐसा ही करें।

(तीनों का परिभ्रमण)

राधा—(सहर्ष) गोपेन्दनन्दन अत्यन्त दूर में नहीं हैं । क्यों कि गोमण्डली दीख रही है ।

(ऐसा कह कर परिक्रमण कर उद्वेग के साथ)

हरि हरि ! श्रीहरि की यह धेनुश्रेणी अश्रुपूर्ण लोचन होकर तृणभोजन नहीं कर रही है, मुख के निकट वत्सगण उपस्थित होने पर भी उद्घूर्णा प्राप्त के कारण उन का लेहन नहीं कर रही है । केवल हम्बारवों से चारों ओर भेदन करती रहती है, वे सब मार्ग में क्षीण होकर गिरी हुई है ।५०॥

(नेपथ्य में—कंसराजा के वक्ष में रोषपूर्वक कृष्णसर्प दंशन करें, जिसने गोष्ठतड़ाग के जीवनरूप श्रीहरि का अपहरण किया है, हाय, धिक्कार । यह आभीर सफरी भूमितल में लुण्ठित हो रही है । आन्तरिक कष्ट के कारण श्वासतरंग शिथिल होकर शेषदशा को प्राप्त कर रहा है । हाय ! अब इनकी रक्षा कौन करेगा ।) ॥५१॥

राधा—(काँपती हुई घूर्णित होकर मूर्च्छित हो जाती है)

ललिता—सखी ! धैर्यधारण करो, धैर्यधारण करो।

राधा—(चक्षुखोलकर आकाश को देखती हुई) हे देव दिवाकर ! राधिका प्रलाप कर रही है उसके अभीष्ट का साधन करो ।

विशाखा—(सम्भ्रम के साथ) सहस्र रश्मि भानु के द्वारा मङ्गल विधान हो रहा है।

राधा—(अनसुनी की तरह) हाय ! हाय ! हे सखी ! सर्व प्रकार से मधुसूदन की मधुरिमा से परिपूर्ण पदचिह्नों के द्वारा यमुनोपकुल की यह तटभूमि जगत की दृष्टि को हरण करने वाली

ऐसी किसी विलक्षण दशा को प्राप्त हो रही है यह मेरे नयन-युगल की पथवर्त्ती होकर इन्द्रिय बृत्तियों को विवश कर रही है ॥५२॥

ललिता—सखी ! आओ इस पुलिन में सूर्य की आराधना कर अभीष्ट की प्रार्थना करें।

राधा—(पुलिन में लोटकर) हे कमलनयन ! जिस पुलिन में तुमने हम सब की गोप-बालाओं के साथ प्रणयपूर्ण सन्तोष लहरी की रचना की है, उस यमुना-पुलिन में हम सब व्यथित होकर पड़ी हुई हैं। अतः तुम आलिंगन के द्वारा प्रसन्न क्यों नहीं करते हो ॥५३॥

ललिता—(यमुना का अवलोकन कर) हे भगिनी ! तुम सूर्यवंश की भूषण-स्वरूपा हो, तुम्हारे पास मधुसूदन का बृत्तान्त जानने के लिये हम सब आयी हैं।

राधा—हे सखी यमुने ! तुम्हारे यह नवीन तट मणिमय अट्टालिकाओं के स्पर्धाकारी कुञ्जों से शोभित होकर श्रीकृष्ण की क्रीड़ा के गृहरूप में परिणत हुआ था। (ऐसा कहकर मूच्छित हो जाती है)

विशाखा—ललिते ! बनमाली की मल्लिकामाला को इसको नासाग्र में धारण कराओ। (दोनों ऐसा ही करने लगीं)

राधा—(बहुक्षण के पश्चात् संज्ञा लाभकर) ललिते ! सुनो, हे सखी ! मैंने एक भयङ्कर स्वप्न देखा है, वह स्वप्न बलवान होकर जाग्रत् दशा में भी प्रतीति उत्पन्न कर रहा है। मैंने देखा कि कोई एक दुरात्मा दूत कंसराजा के निकट से बृन्दावन आकर श्रीकृष्ण को रथ में ··· ··· ··· ···

(यह अर्द्धोक्ति) (शांति हो ब्रज में मङ्गल विराजमान करे) ॥५४॥

अतः मैं दुस्वप्न जात विपत्ति की शांति कामना से यमुना में स्नान कर मुकुन्द का दर्शन करूँगी ॥

विशाखा—सखी चलो, हम सब खेलातीर्थ (कालीयदह) में गमन करें जहाँ मुकुन्द सर्वदा क्रीड़ा करते हैं।

(ऐसा कह कर सब का प्रस्थान)

(तदनन्तर बृन्दा और मुखरा प्रवेश करती हैं)

मुखरा—वत्से ! राधिका अब क्या कर रही है ?

बृन्दा—आर्ये ! देखो, राधिका विशाखा के साथ खेलातीर्थ में अवगाहन कर रही है।

राधा—(अति उच्चतरङ्ग शोभा को देखकर) विशाखे ! उत्तम, उत्तम मैं ने आज खेलातीर्थ में पुनीत होकर अच्छा ही किया है। देखो, तुम्हारे सखा नीलकमल-वन में छिपकर भूजार्गल विस्तार कर खेल कर रहे हैं। (दोनों चली जाती हैं)

विशाखा—तब तो जल में अवतरण करो।

ललिता—(देखकर रोदन करती करती) हा धिक्कार, हा धिक्कार मैं मर गई। यह मेरी प्रियसखी अब विशाखा के साथ गम्भीर-प्रवाह में निमग्न हो गयी है जो पुनः नहीं उठ रही है अतः शीघ्र दोनों के बाद मैं भी तीसरी बन रही हूँ। (ऐसा कह कर उतरने लगी) ॥५५॥

मुखरा—(अश्रुपात करके) हा बिधाता ? क्या हुआ ?

बृन्दा—(रोदन करके) धिक्कार ! यह क्या गति उपस्थित हुई है।

(ऐसा कह कर दोनों आर्ती को प्रकाश करके) आर्ये ! शोकावेग से अवतरणकारिणी ललिता को शीघ्र पकड़ो।

(दोनों ऐसा करने लगीं)

ललिता—(अवलोकन करके स्वगत) हा धिक् ! हा धिक् ! गुरुतर बाधा उपस्थित हुई है । तब किसी छल से यहाँ से जाकर गोवर्द्धन में भृगुपात के द्वारा पाषाण की भाँति कठिन शरीर को शिलाओं से चूर्ण करूँगी जो कि प्रियजन के वियोगदर्शन से विदीर्ण

नहीं हुआ है । (इस प्रकार कहकर शोकावेग का संवरण कर प्रकाश में) आर्य ! मुझे त्याग करो । मैं अभी जाकर यह आश्चर्य वृत्तान्त भगवती पौर्णमासी को सुनाती हूँ। (ऐसा कहकर प्रस्थान करता है)

(आकाश में आकाशवाणी होती है—इस जगत में ऐसा कौन कृति है जो कि इस गोरसुन्दरी की उज्वल-महिमापूर निर्देश करने में समर्थ हो सकेगा । हाय, जो नवविद्युत् वर्णा आज यह राधा सखी के साथ सूर्यमण्डल भेद कर मुनीन्द्रकुल-दुर्लभ गति को प्राप्त हुई है । ॥५६॥

बृन्दा—आर्ये ! सुनो, सिद्धगण मेघअन्तरालवर्ती होकर राधिका की सिद्धि को प्रशंसा कर रहे हैं ।

मुखरा—(पृथ्वी पर गिर कर) हाय ! नातिनी राधे ! तुम कहाँ गई हो ? ।

बृन्दा—(सखेद) हाय, हाय, चारों ओर इस विपत्ति की चिन्ता कर, मैं कटुतर पुटपाक-ज्वाला में व्याकुलित हो गयी हूँ । हे पङ्कजाक्षी राधिके ! असमय में तुम्हारी लोकान्तर वार्ता का श्रवण कर पुण्डरीकाक्ष श्रीहरि की क्या दशा होगी ॥५७॥

(पुनः आकाशवाणी-शिव, शिव जो मुरारी की प्रणय-मणि की पिटारी है और जो राधिका की जीवन-स्वरूपा है वह दाड़िम-बीज की भाँति दाँतवाला ललिता राधिका के विरह से खेदयुक्त होकर पर्वतशृङ्ग से गिर रही है) ॥५८॥

मुखरा—हा ललिते ! मुझे क्यों परित्याग कर गयी हो ।

(ऐसा कहकर उद्घूर्णता हो गयी)

बृन्दे ! शोकानलज्वाला में जर्जरित आत्मा को यमुना जल के द्वारा शीतल करूँगी । (ऐसा कहकर यमुना में गिरने को उद्यत होने लगी)

(पुनः आकाशवाणी)—बृद्धे ! इस प्रकार अयोग्य कार्य मत करो)

बृन्दा—आर्ये ! रविमण्डल से यह वाणी उच्चारित हो रहो है अतः इसका उल्लङ्घन करना अनुचित है ।

मुखरा—तब चलो यह बृत्तान्त भगवतो को निवेदन करेंगे।

(पुनः आकाश में गम्भीर ध्वनि)

मुखरा—वत्से ! सम्पूर्णरूप से नहीं सुनने पायी, यह दैववाणी किस प्रकार है कहो।

बृन्दा--कमलिनी की कान्ति नाशक और चक्रवाक के प्रियसंगम के साक्षी स्वरूप सूर्यदेव की यह दिव्यवाणी निष्कपट से कर्ण-गोचर करो।

हे मुखरे ! यमुना-जल में निमग्न होकर महा साहस का कार्य-मत करो। पुनः प्रमोद-सुधा के द्वारा अर्थात् राधाकृष्ण के मिलन के द्वारा महान्-उत्सव पूर्ण होगा॥५६॥

(ऐसा कह कर दोनों-चली जाती हैं)

(अनन्तर सब का प्रस्थान)

इति ललितमाधव-नाटक के "उन्मत्तराधिका" नामक तृतोय अङ्क समाप्त हुआ ।

चतुर्थोऽङ्क

(अनन्तर उद्धवजी प्रवेश करते हैं)

उद्धव—यह मुकुन्द प्रणयीजनों की प्रेमवश्यता के कारण सर्वज्ञो के गुरु होकर भी अज्ञ की भाँति आचरण कर रहे हैं। पुनः प्रभुसमूह के चूड़ामणि होकर भी जड़िमा का अवलम्बन करते हैं

और सर्वदा आनन्दमय विग्रह होकर भी व्याकुलता का प्रकाश कर रहे हैं ॥१॥

(आगे देख कर) अहो! गार्गी क्यों यहाँ आ रही है? (ऐसा कह कर निकट में जाकर)

आर्ये! प्रणाम करता हूँ।

(गार्गी का प्रवेश)

गार्गी—अमात्य! भक्तिसुधा-प्रवाह के द्वारा चिरकाल पृथिवी को अभिषिक्त कराओ।

उद्धव—ज्ञात होता है कि—भगवती रोहिणीदेवी के साथ यदुपति के अभिषेक उत्सव में गोकुल से तुम आई हो।

गार्गी—नहीं नहीं, रामकृष्ण दोनों के उपनयन उत्सव में निमन्त्रिता होकर गोकुलेश्वरी के साथ यहाँ आई हूँ।

उद्धव—तब तो आर्य्या ने देव की रङ्गस्थल में अलौकिक क्रीड़ा नहीं देखी है।

गार्गी—कह तो वह क्रीड़ा किस प्रकार?

उद्धव—सुनिये, साधुगण रूप चक्रवाकों के आनन्द विधायक, खलगण रूप खद्योत समूह की दीप्ति को हरण करने वाला, कुवलयापीड़ नामक गजराज के चिर निद्रापद, यदुकुल-कमल के उल्लास दायी वह कृष्ण रूप सूर्य्य मल्लरूप उल्लुओं को खेदित करता हुआ कंसरूप अन्धकार विनाश के लिये रङ्गद्वार रूप अत्युच्च उदय पर्वत में प्रादुर्भूत हुआ है ॥२॥

गार्गी—उसके बाद, उसके बाद?

उद्धव—उसके बाद श्रीहरि हस्तिरुधिर, हस्तिमद एवं अपने श्रमजात घर्मबिन्दु रूप कुंकुम, अगुरु एवं चन्दन के द्वारा परिलिप्तांग होकर, वृद्धगज के दन्तरूप दण्ड के द्वारा स्कन्धदेश विभूषित कर रङ्गस्थल प्रान्तभूमि में क्रीड़ा करने लगे ॥३॥

तदनन्तर तथाविध वेशधारी श्रीहरि दस प्रकार लोगों के लिये दस प्रकार से अनुभूत होने लगे ॥

यथा—उस समय रङ्गस्थल में मुकुन्द का दर्शन कर दैत्याचार्य ब्राह्मणगण मुखविकृति, मल्लबृन्द भय से रक्तवर्ण, सखागण हास्य-वदन, खलगण भय से अचैतन्य, ऋषिगण ध्यान, मातृगण उष्ण अश्रु, क्षत्रियादि योद्धागण रोमाञ्च, देवताश्रेष्ठ गण अन्तर में अभिनव चमत्कारिता, दासगण नृत्य, एवं श्यामईक्षणा सुन्दरियाँ कटाक्ष को प्रकाश करने लगी यहाँ वीभत्स, रौद्र, हास्य, भयानक, शान्त, करुण, वीर, अद्भुत, दास्य एव शृङ्गार ये दस रस दिखलाये गये ॥४॥

तदनन्तर वह यदुसिंह श्रेष्ठ उत्तम केशरमाला से विभूषित होकर, बिचलित चाणूर सैन्यदल का मर्द्दन कर, कौतुक वश उत्तमबुद्धि का परिचय देते हुए खलभोजकुल के कुञ्जर कंस को विदार्ण करने लगे ॥५॥

गार्गी—भाग्यवश साधुओं का महावक्षःशूल समूल से उत्पाटित हुआ है। (ऐसा कह कर आनन्द प्रकाश कर) अमात्य ! वह पौर्णमासो धन्या है, जिन्होंने श्रीकृष्ण का संग परित्याग न कर रङ्गस्थल में रङ्गक्रीड़ादि कौतुहल का अवलोकन किया है ।

उद्धव—यह क्या कह रही हो, इन पौर्णमासी प्रसङ्ग से ही सान्दीपनि मुनि जगद्गुरु के गुरु बने ॥

गार्गी—(संस्कृत में) हाय ! आचार्यपत्नी ने सर्वाभीष्टमूल मुकुन्द को निर्वन्ध के साथ काष्ठसंग्रह करने में प्रेरणा दी, मानों उन्होंने तिलकल्क का चिन्तामणि के साथ उपयुक्त मूल्य करके निर्द्धार किया है ॥६॥

उद्धव—चाणूरमर्द्दन श्रीकृष्ण की शिष्याचार प्रचार में यह चातुरी-मात्र है। इसमें गुरुपत्नी का कोई अपराध नहीं है।

गार्गी—मैंने सुना कि—मधुमङ्गल को पुनः यमपुरी से लाकर श्रीहरि ने गुरु के प्रति दक्षिणा रूप में प्रदान किया है।

उद्धव—केवल गुरु को दक्षिणा नहीं दी, परन्तु केलिगुरु अपने में अनुकूल कराया। मैंने गोकुल में उस को सौभाग्यवार्त्ता सुनी है।

गार्गी—क्या आप गोकुल गये थे ?

उद्धव—हाँ गया था।

गार्गी—क्यों गये थे ?

उद्धव—देवी चन्द्रावली को लाने के लिये।

गार्गी—उसको क्यों नहीं लाया ?

उद्धव—(अश्रुपात करके) रुक्मी पुनः गोकुल से चन्द्रावली को कुण्डीलनगर में ले गया है।

गार्गी—गोकुल में जो चन्द्रावली थी, उस ने किस से यह सम्बाद सुना ?

उद्धव—सखा शिशुपाल के मुख से।

गार्गी— उसने कहाँ से सुना ?

उद्धव—माता श्रुतश्रवा के निकट ?

गार्गी—सत्य सत्य, वह अपने भ्राता आनकदुन्दुभि को विमुक्त देखने के लिये पिता के घर आई थी। तदनन्दर मैंने अनभिज्ञता के कारण गोकुल का समस्त रहस्य उस के निकट प्रकाश कर दिया॥

आर्ये ! इसमें आप का क्या दोष है ? हम सब के प्रति विधाता ही प्रतिकूल है।

गार्गी—भीष्मकतनय रुक्मी चन्द्रावली को लाने के लिये प्रवृत्त होने पर क्या किसी ने वाधा नहीं दी ?

उद्धव—बहुकाल ले कर जब श्रीकृष्ण मथुरा में निवास करने लगे तथा तोशल नामान्तर गोवर्द्धन मल्ल हत हो गया तव कौन प्रतिबन्धक हो सकता है ?

गार्गी—हे सौम्य ! पद्मादिक चारों कन्या को क्यों नहीं ले गया ?

उद्धव—नग्नजित् राजा की कन्या पद्मा है, मद्रराजा की कन्या माद्री श्यामला है, भद्रा वा लक्षणा केकय राजा की कन्या है, शैव्या वा मित्रवृन्दा शैव्यराजा की कन्या है । वीणाप्रवीण मुनि-राज नारदजी के मुख से यह अवगत होकर वे चारों जन विनय के द्वारा गोपपति को प्रसन्न कर वहाँ से कन्याओं को ले आये ॥७॥

गार्गी—कात्यायनी व्रतपरायण गोपकन्यागण कुशल में हैं तो?

उद्धव—(साश्रुनेत्र) वे सोलह हजार एक सौ कुमारिका विरह क्लेश वश सन्तप्त हृदया होकर यमुनातट पर कामाख्यादेवी का स्तवन कर रही थीं, उस समय उद्दण्ड स्वभाववाला नरकासुर उन का हरण कर ले गया है ॥८॥

गार्गी—(व्यथा के साथ) आपके प्रभु ने क्या इस वृत्तान्त को श्रवण किया है ?

उद्धव—सुना है परन्तु समस्त नहीं।

गार्गी—वह कैसा ?

उद्धव—षोडश सहस्र एक शत आठ जन कुमारिकाओं में एक जन भी गोकुल में नहीं है।

गार्गी—उन के अन्य अनुसन्धान का अवसर कहाँ है ? क्यों कि राधा की दारुणदशा का श्रवण कर उन के तिलमात्र शान्ति-प्राप्ति न थी ॥

उद्धव—आर्ये ! उचित कहती हो, इसी लिये भगवती पौर्ण-मासी ने अत्यन्त व्यग्र होकर श्रीकृष्ण के मनोविनोद के लिये किसी उपाय का निर्माण किया है।

गार्गी—वह किस प्रकार ?

उद्धव—सगीतविद्या के विधाता भरतमुनि के निकट प्रार्थना

कर किसी एक अपूर्व रूपक को प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने देवर्षि नारदजी के द्वारा तुम्बुरु के हाथ में भेजा, तुम्बुरु ने गन्धर्व-गण को अध्ययन कराया ॥

गार्गी—मैंने कुछ दिव्य पुरुषों को माननीया पौर्णमासीदेवी के साथ आलाप करते देखा, निश्चय वे सब नृत्यपरायण गन्धर्व होंगे।

उद्धव—ऐसा ही है, देखो, नृत्यविलोकन के लिये अरविन्द-लोचन श्रीकृष्ण मधुमङ्गल के साथ पद्मरागमणि निर्मित मन्दिर के अलिन्द में आरोहण कर रहे हैं।

गार्गी—मैं जाकर मुखरा को प्रेरित करती हूँ।

उद्धव—मैं भी भगवती के साथ नटगण को प्रेषित करता हूँ।

(ऐसा कह कर दोनों का प्रस्थान) ॥९॥

(विष्कम्भक)

(अनन्तर यथा निर्दिष्ट श्रीकृष्ण का प्रवेश)

श्रीकृष्ण—(खेद के साथ) हा लीलावति ! हा चकोरनयने ! हा चन्द्रविम्बानने ! हा विम्बोष्ठि ! हा गुणवतियों में सवश्रेष्ठे ! हा समस्त गोकुल खञ्जनाक्षीगण की प्रधान ! हा राधे ! हतदैव की दुर्विलास चेष्टा से तुम्हें क्या विषमदशा प्राप्त हो रही हो !

मधुमङ्गल—प्रियवयस्य ! अत्यन्त दुर्लभदर्शना राधिका मानो आकाश में विद्यमाना की भाँति प्रतिभात हो रही है।

कृष्ण—सखा ! सत्य सत्य, आशा के द्वारा ही मैं इस प्रकार कदर्थित हो रहा हूँ। क्यों कि—जब कि मुखरा आर्त्ता होकर जल-मग्न होने को जा रही थी तब दूरस्थ सूर्यमण्डल से करुणापूर्ण आकाशवाणी प्रादुर्भूत हुई। उससे राधा के साथ पुनः मिलन प्रत्याशा का अंकुर उत्पन्न हुआ है। हा धिक्कार वह उच्चारित वाक्यामृत अभी मेरा अन्तःकरण को विद्ध कर रहा है ॥१०॥

(क्षणकाल तूष्णी होकर पुनः उच्चस्वर से)

हाय ! गमनोद्यत अक्रूर ने जब कि अश्व की वल्गा को धारण किया था तब तो राधिका चञ्चलचित्ता होकर रोदन करती करती रथ में चढ़ने के लिये चली थी, परिजनों के द्वारा निरुद्धा होकर मेरे लिये उस ने अश्रुपूर्ण दृष्टि का निक्षेप किया । हा मुझे धिक्कार है, क्यों कि उस प्रकार देखकर भी क्रूरमना मैंने क्षत्रमात्र विलम्ब-कर उस सुन्दरी को अनुनय के द्वारा शान्त नहीं कराया ॥११॥

(तदनन्तर गन्धर्व्वगण के द्वारा अनुगम्यमान उद्धव, पौर्णमासी एवं मुखरा का प्रवेश)

उद्धव—देव ! यह अभिज्ञ नाट्यसम्प्रदाय लाया हूँ ।

कृष्ण—सूत्रधार ! शीघ्र ही नृत्य, गीत एवं वाद्य का आरम्भ करो।

सूत्रधार—जिस की निजमाधुर्य-मुद्रा से नीलकमल की शोभा ग्लानि प्राप्त हो रही है, वह परम जयशील अनिर्वचनीय कोई राधाकटाक्ष जय प्राप्त हो रहा है कि--त्रिभुवन श्रेष्ठ जयलक्ष्मी स्वयंवरा होकर जिस को माल्यार्पण कर रही है और मधुसूदन श्रीहरि भी जिस से अवहेला में पराजित हो जाते हैं ॥१२॥

कृष्ण—(सहर्ष) हृदयानन्ददायक यह नान्दीप्रयोग अत्यन्त सुन्दर हो रहा है ।

सूत्रधार—(पार्श्व में देखकर) आर्य ! किसी एक सुचारु नाटक के द्वारा जगद्बन्धु श्रीहरि की आराधना के लिये स्वर्ग से कुलाचार्य तुम्बुरु ने मुझे प्रेरणा किया है ।

नटी—आर्य ! वह प्रबन्ध क्या है ?

सूत्रधार—रसिकशिरोमणि श्रीहरि के प्रिय, गोकुलवासियों का सुलभ, राधाभिसार नामक गुणगर्भ सन्दर्भ जययुक्त हों ॥१२॥ अतः मङ्गल जनक ध्रुपद का अवलम्बन कर गान करो।

नटी— आर्य ! किस ऋतु का अवलम्बन कर गाऊँ।

सूत्रधार—आर्ये ! देखो देखो, शोभालक्ष्मी कुन्दावली का त्याग कर नवमालिका में मिल रही है, पिकगण दीर्घकाल से परित्यक्त अपनी पञ्चम स्वर चातुरी के स्मरण में चेष्टाशील हो रहा है। भाण्डीरवट से पीले पीले पत्र स्पष्ट रूप से गिरते जा रहे हैं। अतः परमानन्दमय कोई उज्वलकाल कौतुहल पूर्वक मन्द मन्द से प्रवर्त्तित हो रहा है ॥१४॥

नटी—यह माधवी स्पष्ट रूप से कठोर शमीलता के द्वारा आकृष्ट होकर भी क्या मधुप के द्वारा अनुनीतस्तवका नहीं होती है, अर्थात् भ्रमर उस के स्तवकों का अनुसरण नहीं करता है ? ॥१५॥

सूत्रधार—(सन्तोष के साथ) आर्ये ! उत्तम उत्तम, प्रस्तावोचित भाव का उपन्यस्त हो रहा है । क्यों कि--देखा जाता है—बृद्धा जटिला के द्वारा निरन्तर राधिका निरुद्धा होने पर भी माधव सुन्दरभाव से अवाधित रूप में उसके साथ विहार करते रहते हैं।

(ऐसा कह कर चले जाते है) ॥१६॥

(अनन्तर माधव का प्रवेश)

माधव--परम शोभायुक्त, मलयानिल की सहचरी साक्षात् वसन्तऋतु विराजमान है । मत्त भृङ्गों से तथा पक्षिकुल से मनोहर यह बृन्दावन मानों हास्य कर रहा है। हाय ! यदि राधा यहाँ अब अभिसार करती है तब तो मेरे परमानन्दविलास सागर का लहरियों का महान् कल्लोल कोलाहल उपस्थित होगा ॥१७॥

मधुमङ्गल--(हास्य कर) (ही ही आश्चर्य आश्चर्य) स्वर्ग के भण्ड दासो पुत्रों के साथ मेरा दूसरा प्रियवयस्य प्रत्यक्षभूत हुआ।

उद्धव--(चमत्कार के साथ) जिसके हस्तपद्म नवीन मुरली रूप मराली से परिशोभित है, जिस की गुञ्जामाला की अद्भुत-

शोभा पद्मरागमणि की कान्ति को ग्रास कर रही है, जिसके मयूर-पुच्छ चूड़ा के प्रान्तभाग मृदुल पवन सञ्चार से चञ्चलायमान है उस श्यामवर्ण समूह का विलास मेरे हृदय को आनन्द से अधीर कर रहा है ॥१८॥

कृष्ण--(औत्सुक्यता के साथ रोमाञ्चित होकर)

अहो ! जिस लीला में मेरा अपूर्व माधुर्य परिमल का प्रकाश हुआ है उस गोपलीलामय दूसरे स्वरूप को यह नट प्रत्यक्ष करा कर मुझे बार बार विस्मापित कर रहा है। हे सखे ! इसका स्वरूप देखकर मेरा चित्त केलि कौतूहल में अत्यन्त तरलित होकर ब्रजबधू श्रीराधा के सारूप्य धारण करने के लिये अत्यन्त अभिलाषी हो रहा है ॥१९॥

हे सखा ! कहो तो, यह नट मेरी मनोहारिणी अनिर्वचनीया रूपचन्द्रिका का आविष्कार करने में किस प्रकार समर्थ हुआ ?

उद्धव--देव ! आप के भक्ति प्रभाव से यह सम्यक्‌रूप में भावित हो रहा है। यह तो देवर्षि नारदजी की सेवा परिपाटी का विवत्त है।

कृष्ण--(आश्चर्य के साथ) क्या मैं नटत्व प्राप्त होकर इस रङ्गस्थल में अभिनय कर रहा हूँ ? अथवा सभास्थल में सभ्य पद लाभ कर दर्शन कर रहा हूँ। अहो ! सम्मुख में परमाद्‌भुत वेश-रचना विधि का अवलोकन कर मैं स्पष्टरूप में निर्णय करने के लिये निमिष काल भी असमर्थ हो रहा हूँ ॥२०॥

माधव--अहो प्रिया विरोहित मेरी मति मधुकरबृन्द के साथ घूर्णायमान हो रही है, मेरा धैर्य मधुधारा के साथ विच्युत हो रहा है और मेरी उत्कण्ठा कलिकाश्रेणी के साथ विकसित हो रही है ॥२१॥

अत: अब वेणुगीतरूप सकेत के द्वारा ललिता को आह्वान

करता हूँ। (ऐसा कह कर अधर में वेणु रख कर) अहे ! इन्द्र की दिशा रूप नागरि ! (अर्थान्तर में) पूर्वदिशा की नागरि ललिते !, अनुराग संहित सूर्यदेव की अभिनव गुरुतर कान्ति का आविष्कार करो,

ललितापक्ष में—श्रीराधा को सम्भाषण कर आनयन करो। देखो, यह पक्षिश्रेष्ठ चक्रवाक् किसी विरह से आकुल होकर तुम को काकुलक्ष के द्वारा अर्थिभाव विस्तार कर रहा है। पक्षान्तर में—यह चक्रधारी हरि विरहातुर होकर सखियों में श्रेष्ठ ललिते, तुम से लक्ष लक्ष काकु वचन के द्वारा भिक्षा माँग रहा है कि तुम राधा के साथ मेरा मिलन कराओ ॥२५॥

कृष्ण—(सकौतुक) देवर्षि प्रसाद से क्या नहीं होता है ? इसी लिये यह नट अन्य व्यक्ति का अज्ञेय यह निगूढ़ मनोभाव व्यक्त कर रहा है।

माधव—(सहर्ष) यह तो निकट में मनोहरिण बिजयिनी मृदु मधुर नूपुर की ध्वनि है। अतः मैं अब माधवीमण्डप में प्रवेश करता हूँ। (ऐसा कह कर प्रस्थान)

(अनन्तर ललिता के साथ अनुगम्यमाना राधा का प्रवेश)

राधा—(औत्सुक्य-सहित सम्मुख में दृष्टि कर) सखि ललिते ! देख, देख, यह तरङ्गलेखा धन्य है। क्यों कि यह शैवालवल्ली के द्वारा निवद्ध चरण वाली हंसिनी को मोचित कर देती है, यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि माना पद्म पत्रों के अन्तर्वर्त्ती हंस के साथ इस को सम्मिलित कर देगी।

ललिता—(मृदु हँस कर) हे हंसि ! हंसपति के प्रति पक्षपात के हेतु यह उद्धत स्वभाव वाली उर्मिमाला तुम को आकर्षित करती है। अतः विश्वास के साथ कान्त के निकट अभिसार करो॥

कृष्ण—(उत्कण्ठा के साथ) जिस के दीर्घकालव्यापी विरह-

ज्वर से जर्ज्जरित होकर मेरी यह गुरुतर अननुभूतपूर्व्वा दशा उपस्थित हुई है वह मेरी चित्तरूप हंस की सरोवर-रूपिणी कमल-नयनी श्रीराधिका उपस्थित हुई है। (ऐसा कह कर सिंहासन से उठ कर वाहु युगल से ग्रहण करने के लिये भ्रमण करने लगे) ॥२३॥

उद्धव—यह तो नाटक विवृत विषय है।

कृष्ण—(धैर्यधारण कर लज्जाभिनय के साथ) हाय प्रिये! यह तो वह शरच्चन्द्रमाविनिन्दित मुखशोभा है, यह तो वह मदमत्त मृगीकुल की अन्वेषणीया माधुर्य्य की क्रीड़ा-क्षेत्र रूपिणी दृष्टि है। रतिपति जिसको देख कर धनुर्विभ्रम का अभ्यास करता है यह तो वह गौरवमयी भ्रू है, अहो यह गन्धर्व्ववाला श्रीराधिका के समान मेरे धैर्य का हरण कर रही है॥२४॥

मुखरा—हा नातिनि राधिके! तुम जीविता हो?

(ऐसा कह कर पकड़ने के लिये भागने लगी)

पौर्णमासी—(वस्त्रांचल धारण कर) हे स्नेहान्धे! यह तो गन्धर्वों की नाट्यकला है।

मुखरा—(अश्रुविसर्ज्जन कर) भगवति! श्रीराधिका सूर्य-मण्डल को भेद कर लोकान्तरगता हुई है। स्वर्ग से गन्धर्वों के द्वारा लाई गई ऐसा सन्देह हो रहा है।

राधा—सखि ललिते! गृह से जब पुष्पाहरण कौतुक वश मुझ को तुम लायी हो, तब आर्या मुखरा ने हमें देखा है।

ललिता—केवल मुखरा नहीं, जटिला ने भी देखा है।

मुखरा—(सवाष्प गद् गद् होकर) हा वत्से! सत्य ही इस निष्ठुरा के द्वारा तुम नाना ज्वाला से जली हुई हो।

मधुमङ्गल—(क्रोध के साथ) राक्षसि वृद्धे! अब मिथ्या प्रीति दिखाने की आवश्यकता नहीं है। गृह की प्रान्तवाटिका में देख कर तुम तो कुक्कुरी की भाँति भेंओ भेंओ करती रहती थी।

मुखरा—आर्य मधुमङ्गल ! क्या करूँगी, उस समय भगवती के द्वारा रहस्य प्रकाश न करने से प्रतारित हो गई थी।

राधा—सखि ! यदि मुझे देखा है तो उपाय बतलाओ।

ललिता—हा ! मन्दगामिनि ! बनमार्ग का त्याग कर कदम्ब-बृक्षव्याप्त कालिन्दीतट मार्ग में गमन करें।

(दोनों परिभ्रमण करने लगीं)

राधा—सखि ! कह तो गमना सूचक नूपुरध्वनि के साथ किस प्रकार चलेंगी ?

ललिता—वितर्ककारिणी जटिल की बुद्धि विड़म्बित हों।

(जटिला का प्रवेश)

जटिला—(सम्मुख मे दृष्टिपात कर) अहो ! मार्ग में राधिका को नहीं देख रही हूँ। कहाँ उस का अन्वेषण करूँ ?

(भूतल का अवलोकन कर हर्ष के साथ)

यह तो वधू का चरण चिन्ह दिखाई पड़ रहा है क्यों कि यह कुण्डलाकार सौभाग्यचिन्ह के द्वारा अङ्कित हो रहा है। तब तो इस मार्ग से अनुसन्धान करूँ।

राधा—हे सखि ! मैं ने आज स्वप्न में किसी अपूर्व वस्तु का अनुभव किया है।

ललिता—वह कैसा है ?

राधा-तुम तो लवङ्गकुञ्ज में पुष्प आहरण में निरता थी। उस समय बृन्दावन-निवासी कोई एक मत्त हाथी ने आकर तुम्हारे हाथों को पकड़ लिया। जब कि तुम सम्भ्रमवश फिर कर जा रही थी तब तो उसने बलात्कार तुम्हारे ओष्ठ-पल्लव का दंशन और वाम स्तन पर तीक्ष्ण कामांकुश रूप कर पुष्कर का निक्षेप किया। (ऐसा आधा कह कर रोमाञ्चित कलेवर से नतमुखी होने लगी)

ललिता—(मृदु हँस कर) अयि सरले ! मैं जब तुम्हारे हृदय

में कस्तूरी के द्वारा पत्रभंग की रचना कर रही थीं उस समय मैंने प्रत्यक्ष किया कि—स्वप्न में उस नागर कुञ्जर ने तुम्हारे साथ विलास किया है अतः स्पष्ट रूप से कहो कि तीसरी जन संग के अयोग्य उस अवसर पर तुम्हारी दीर्घसूत्र वाली नीवीरूपा सहचरी सत्वर निर्गता हुई किम्बा नहीं ?

राधा—(स्वगत) इस धूर्त्ता ने किस प्रकार यह सन्देह किया है ? (भ्रू भङ्गि पूर्वक प्रकाश्य में) हे वामे ! क्यों मिथ्या आशङ्का करती हो ?

जटिला—निश्चय ही नूपुर-शब्द के द्वारा आकृष्ट होकर यह हंससमूह सूर्यपुत्री यमुना जल से बन के प्रति धावित हो रहा है । अतः मेरी छोटी सी वह अधिक दूर में नहीं है ऐसा ज्ञात हो रहा है ।

उद्धव—अहो ! बृद्धाओं का किस प्रकार बुद्धिकौशल ?

ललिता—(स्वगत) पुरोवर्त्ती माधवीमण्डप में माधव होंगे।

(अनन्तर बृन्दा के अनुगम्यमान माधव का प्रवेश)

माधव—(चारों ओर देख कर) मेरे हृदय उत्सव के विविध हेतु स्वेच्छारूप में क्रम से वर्द्धित हो रहे हैं, परन्तु राधाभिसार-तुलना में कोई आरोहण में समर्थ नहीं है । क्यों कि जिसकी मनो-रथ तट की अल्पमात्र सीमा प्राप्त होने पर सान्द्रानन्दमयी अनुपम जगद्विस्मृति तक की संघटना हो जाती हैं ॥२५॥

कृष्ण—(पौर्णमासी को देखकर) हाय ! स्नेहमयी ! सर्वदा मुझको आनन्द प्रदान में विचक्षण के कारण आप मेरे गुरु से भी गुरुतरा हैं। क्यों कि नाट्यकौशल छल से आपने मुझको सुदुर्लभ बृन्दावन लीला में प्रविष्ट कराया है ॥

राधा—(माधव का अवलोकन कर आनन्द के साथ आत्म-गत) हे भगवन् आनन्दपर्ज्जन्य ! जलधारा के द्वारा मेरी उत्कण्ठता

इस दृष्टि चकोरी को अवरुद्ध मत करो, वह क्षणकाल के लिये उन को मुखचन्द्र की दुर्ल्लभज्योत्स्ना का पान करें ॥

(भ्रू भङ्गी पूर्वक प्रकाश्य में) ललिते ! तुमने उचित कहा है क्यों कि तुम प्रतारणा पूर्वक सरला मुझको यहाँ लायी हो, (ऐसा कह कर नासाफुलाकर रोदन करने लगी)

ललिता—प्रियसखी ! क्यों मेरा तिरस्कार करती हो। ये दैव-संगठन है, मैं क्या करूँगी।

माधव—(राधा को देखकर सहर्ष) अहो ! दोनों नेत्र आक्रमण करने के लिये श्रवण सीमा के प्रति भाग रहे हैं। स्तन-युगल त्रिवलिरूपरज्जु के द्वारा मध्यदेश को बांधकर उसके स्थूलत्व का हरण कर रहा है और भ्रू-युगल उद्यत धनु-विलास का विस्तार कर चरण-युगल की चञ्चलता को हरण कर रहा है, अतः श्रीराधा के तनु-राज्य में वाल्यनरपति क्रमतः क्षीण हो गया है। अर्थात् वयःसन्धिकाल उपस्थित हो गया है ॥२६॥

ललिता—(संस्कृत में) हे वरांगी ! जिसके दक्षिण-चरण वाम जंघा के अधोभाग में संलग्न है, जो त्रिभंगी है, जिसके स्कन्ध-देश ईषत् वक्र होकर स्तम्भित है, जिसका नेत्रप्रान्त तिर्यक्रूप से सञ्चरण कर रहा है जिसके चंचल-अधर में चंचल अगुलियों के द्वारा क्रीड़ा परायण वंशी विलास कर रही है, जिसके दोनों भ्रू चञ्चलभ्रमर के भाँति नृत्य कर रहे हैं, उस पुरोवर्त्ती मूर्त्तिमान परमानन्द को स्वीकार करो ॥२७॥

जटिला—(सानन्द) यह तो दाहिनी ओर बृषभानुनन्दिनी विराजमान है। (ऐसा कहकर समीप जाकर) अरी ! अभिसार मार्ग का उपदेश दायनी ललिते ! अब मेरा पुत्र अभिमन्यु विदेश में गया है, इसलिए तुम गृहशून्य कर क्यों इस बहू को लायी हो।

ललिता—(सभय आत्मगत)

हाय ! दुर्भाग्य, दुर्भाग्य, इस प्रतिकूल प्रकृतिवाली डायन बृद्धा-ने जलाय मारी। (प्रकाश में) आर्ये ! गार्गी के निकट से सुना है आज सूर्यदेव की माधुरी-पुष्प के द्वारा पूजा करने पर वह कोटि गौ प्रदान करेगा। इसीलिये मैं राधा को माधुरी कुञ्ज में ले आयी हूँ। अतः तुम प्रसन्न हो।

जटिला—(मिथ्या स्नेह दिखाकर कान कान में) वत्से ! मेरी बहू पुत्र के निकट कहती रहती है कि ललिता मुझे प्रलोभन दिखा-कर अभिसार कराती है । वह इस प्रकार तुमको मिथ्या-दोष लगाती है । तुम यह अपमान क्यों सहन करती हो ।

ललिता—(स्वगत) आश्चर्य है। जटिला की कुटिलता को तो देखो।

माधव—(स्वगत) जिस विषय में मन को गुरुतर आसक्ति होती है उससे गुरुतर विघ्न उपस्थित होता है, यह बात मिथ्या नहीं है । (ऐसा कहकर नेत्र प्रान्त से राधा का अवलोकन कर धीरे धीरे गमन करने लगे) ॥२८॥

जटिला—(नासिकाग्र में तर्जनी रखकर मस्तक कम्पाती हुई विस्मय के साथ) अरे बालिका-भुजङ्ग ! किसको दंशन करने के लिये यहाँ घूमते हो।

माधव—हे लम्बोष्टि ! आपके समान गोष्ठ-पिशाचिनियों को।

कृष्ण—(मधुमङ्गल से) हे सखे ! गोकुलकुल बृद्धाओं की कठोरवाणी जिस प्रकार आमोद प्रदान करती है उस प्रकार महा-मुनियों की स्तुति भी मेरे लिये मधुर नहीं है ॥२९॥

बृन्दा—हे बृद्धे ! धमरूप चकार के जीवन के लिये श्रीकृष्ण के चरितामृत चन्द्रिका स्वरूप हैं । उन कृष्णचन्द्र में क्यों प्रतिकूल भुजङ्गभाव अर्पण करती हो।

जटिला—(व्यङ्ग के साथ उच्चहास्य कर संस्कृत में) इस पृथ्वीतल में कौन व्यक्ति ब्रजेश्वर-नन्दन के परबधूविनोद क्रिया से भूषित गुण को नहीं जानता, क्यों कि यह रतिलम्पट मार्ग में सतियों को निरोध कर बलात्कार उनके कुच-कुट्मल में नख···। विष्णु, विष्णु और अधिक क्या कहूँ ॥६०॥

राधिका—(स्वगत) हा हत दैब ! राधिका ने तुम्हारे निकट क्या अपराध किया है।

जटिला—हाय ! सरले बधू ! इस कृष्णसर्प की सुतीक्ष्ण कुटिल दृष्टि के द्वारा उत्पथवर्त्तिनी होकर बज्र-प्रतिमा भी जर्जरित हो जाती हैं, तुम्हारी कथा क्या कहूँ । तुम तो सुकोमल तपस्विनी हो, अतः आओ, घर चलें ।

बृन्दा—नागरेन्द्र ! वैमनस्य त्याग करो ! अब तुम्हारी अभीष्ट सिद्धि के लिये सारिकामुख से ललिता को सम्बाद देकर विशाखा के द्वारा आपको निवेदन कराऊँगी ।

(ऐसा कह कर प्रस्थान करती हैं)

माधव—(सखेद) हाय ! एकबार चन्द्र-आलोक से चन्द्रकान्त-मणि पिघल गयी थी, परन्तु पर्वकाल में राहुरूपा भीषण जरति ने उसको ढक दिया है ॥३१॥

(निश्वास त्यागकर) विशाखा को ढूढ़ने के लिये जटिला गृह के समीपवर्त्ती पाटलिकुञ्ज में गमन करता हूँ । (ऐसा कह कर चलने लगे) अहो ! अपने गृह के प्रांगण में अभिमन्यु विराजमान हैं, तब तो मैं यहाँ पर छिप जाता हूँ ।

(ऐसा कह कर चले जाते हैं)

(अभिमन्यु का प्रवेश)

अभिमन्यु—ऋतुमती गाभी लेने के लिये स्वर्णमुद्रा की आवश्यकता है । माता कहाँ है ।

जटिला—हाय, हाय, अब सारिका ने शुक को जो गोपन से कहा है वह मैंने सुन लिया है। अब माधव अभिमन्युवेश में मेरे घर पर आवेगा, अतः वहाँ जाकर देखूँ। (ऐसा कह कर चलते, चलते, द्वारदेश में अभिमन्यु को देखकर) क्या आश्चर्य ! सचमुच यह धूर्त आया है। अतः जाकर प्रामाणिक जनों को लाती हूँ।

(ऐसा कहकर चली जाती है)

अभिमन्यु—विशाखे ! तुम कहाँ हो।

(ललिता का प्रवेश)

ललिता—(स्वगत) यहाँ कृष्ण को भेजने के लिये सारिका के बचनानुसार विशाखा गयी है। (प्रकाश्यरूप में लज्जा दिखाकर नीचे स्वर में) सुभग ! यहाँ विशाखा नहीं है।

(तदनन्तर गार्गी, भारुण्डा, कुन्दलता आदि के द्वारा परिवेष्टित होकर जटिला का प्रवेश)

जटिला—कुन्दलते ! अपनी सखी की सुशीलता को देखती जाओ।

कुन्दलता—(देखकर मुख नीचे करके) हा दैव ! रक्षा करो, रक्षा करो ।

भारुण्डा—आर्ये गार्गी ! देखो, देखो, मेरी सखी जटिला झूठ मूठ जलपूर कर नहा मरती है । तुम देखती जाओ । आपके यह लम्पट कृष्ण प्रत्यक्ष में अभिमन्यु होकर आये हैं।

जटिला—आर्य गार्गी ! भाग्यवश आज तुम सब को विश्वास हुआ है। आगे तो आकर देखो। (ऐसा कह कर पीछे से घूम कर पुत्र के हाथ पकड़ती हुई आक्षेप के साथ) अरे गोकुल-किशोरी-लम्पट ! अरे परगृह लुण्ठनकारी कृष्ण ! क्या जटिला तुमको अपना पुत्र समझेगी, नहीं।

अभिमन्यु—(लज्जा के साथ मुँह छिपा कर फिरने लगा)

जटिला—अरे रतिलम्पट ! क्यों अपना मुख छिपा रहे हो । आज तुम्हारी विद्या नहीं चलेगी। (ऐसा कह कर खींचकर सम्मुख लाती है)

अभिमन्यु—(स्वगत) हा धिक्, धिक्। पगली माता के द्वारा आज मैं लज्जित हो गया, यहाँ से चलना चाहिये। (चलने लगा)

जटिला—(दौड़कर वस्त्रांचल पकड़ कर) रे चोर ! मैंने दृढ़ता से पकड़ रखे हो कहाँ भाग कर जाओगे।

अभिमन्यु—(लज्जा से मुख नीचे कर) आर्ये ! भारुण्डे, निश्चय मेरी माता भूताभिभूता हुई है।

(सब उसको पहिचान कर शब्द करते हुए हँसने लगे)

जटिला—(स्वगत) हाय धिक्कार ! क्या भूल हुई, क्या भूल हुई। यह तो विदेश से पुत्र आकर उपस्थित हुआ है।

(ऐसा कह कर छाती पीटती हुई चलने लगी)

भारुण्डा—वत्स ! सत्य ही तुम्हारी माता उन्मत्त हो रही है क्यों कि उसने तुमको माधव मान लिया है।

अभिमन्यु—(मन्दहास्य करने लगा)

कुन्दलता—वीर अभिमन्यु ! मेरी सखी राधा निश्चय पुण्यवती है जिसने अनुकूला सत्यवादिनी एवं स्नेहमयी माता को सास के रूप में प्राप्त किया है। अतः हम सब उसकी अपरूप नृत्य-कथा भगवती से निवेदन करेंगी। (ऐसा कह कर तीनों चली जाती हैं)

अभिमन्यु—ललिते ! माता को ले आओ। मैं शीघ्र जाना चाहता हूँ।

ललिता—(गमन करके पुनः आती है) हे वीर ! आर्या तुम्हारे सम्मुख आने में लज्जित हो रही है।

अभिमन्यु—तब तो मैं स्वयं पिटारी से स्वर्णमुद्रा ले जा रहा हूँ।

(ऐसा कह कर चला जाता है)

कृष्ण—सखे मन्त्रिराज ! क्या पूर्वानुभूत परमानन्द है जिसका अनुभव मैं नटगणों से कर रहा हूँ।

(बृन्दा का प्रवेश)

बृन्दा—ललिते ! शीघ्र भाग चलो क्यों कि देखो यह अभिमन्यु क्रुद्ध होकर पुन: आ रहा है।

ललिता—(भय के साथ देखकर) दारुण रूप में प्रतीयमान होने पर भी इसकी दृष्टि परिणाम में माधुर्यमय बोध हो रही है। अत: ज्ञात होता है कि अभिमन्यु वेश धारण कर माधव आ रहे हैं।

बृन्दा—राधा-सखियों की बुद्धि का कौशल देखो। सन्ध्या-कालीन मेघ के सहोदर निविड़-कान्ति की भाँति अभिमन्यु की अङ्गकान्ति है और पर्वतमय देश के दण्ड के समान नासिका से युक्त है तथा कोटरगत चक्षु से समन्वित मुखवाला है, इस प्रकार व्यस्तगति है। करवी पुष्प की छाया की भाँति वस्त्र पहिन रहा है। ठीक उसी प्रकार लक्षण है। इन्होंने इसके असाधारण रूप का स्पष्ट अनुकरण किया है।

(तदनन्तर अभिमन्युवेशधारी माधव प्रवेश करते हैं) ॥३२॥

माधव—(लज्जा के कारण जो इतस्तत:-सञ्चालित हो रहा है और भृकुटि के द्वारा चक्षु-युगल कुञ्चित एवं ईषत् मुद्रित हो रहे हैं) उस मधुरद्युति सम्पन्न राधिका मुख का कब मैं बलपूर्वक पान करूँगा ॥३३॥

(सम्मुख देखकर) ललिते ! मेरी जीवन-रक्षक औषधिरूप तुम्हारी वह भीरु-सखी कहाँ है।

ललिता—सखी राधे इधर आओ।

(राधा का प्रवेश)

राधा—(लज्जित रूप में मृदुहास्य करके स्वगत) यदि प्रियजन

अप्रिय पदार्थ को अङ्गीकार करता है तो भी वह अप्रिय पदार्थ सुख प्रदान करता है। गिरीश के गरल ग्रहण करने पर क्या गौरी उनमें अत्यन्त आसक्त नहीं हुई ? ॥३४॥

माधव-ललिते ! मेरे हाथ में महा-सम्पत्ति प्राप्त हुई एसा जानो।

ललिता—यदि वह यक्षिणी बाधा नहीं देती है।

(नटी का प्रवेश)

जटिला— (सहर्ष) ओ मा! आज तुम भाग्यवश सुबुद्धिमती हो गई हो। अब तो अपने पुत्र के दृष्टिपथ में आगई हो। (सब संभ्रम प्रकाश करने लगे) पुत्र अभिमन्यु ! संध्या होने पर मैं अच्छी तरह नहीं देख पाती हूं।

माधव— (आनन्द के साथ मृदुहास्य कर) माता ! जिससे तुम्हारी दृष्टि समग्रतम अर्थात् पूर्ण होगी उस प्रकार अञ्जन दूँगा। पक्षार्थ में समग्रतम अर्थात् अन्धरूप होगी ऐसा अञ्जन दूंगा।

कृष्ण—(मन्द मन्द हास्य करके) सखे मन्त्रिराज ! सौभाग्य-वश तुम आज ब्रजलीलारूप अमृतसागर के पुलिन में अवतीर्ण हुए हो।

जटिला—(सानन्द) वत्स ! मुझे किस लिये बुलाया है।

वृन्दा—सम्प्रति सन्ध्याकाल में गौमङ्गला देवी की आराधना की इच्छा कर आपकी अनुमति-भिक्षा मांग रहा है।

माधव— मा ! तुम्हारी बहू मेरे साथ चैततरु के मूल में जाना नहीं चाह रही है।

जटिला—वत्से राधिके ! मैं तुम्हारी गुरुजन हूँ। मेरा यह अनुरोध अवश्य पालन करो, शीघ्र अपने कान्त के साथ जाओ।

राधा—(स्वगत) ओ मा, ओ मा, आश्चर्य ! आश्चर्य ! (प्रकाश में) उनसे कहो मेरा शरीर अस्वस्थ है।

जटिला—कुलपुत्री ! माथे की शपथ खा रही हूँ ।

राधा—(माधव को अपांग से देखने लगी)

माधव-ललिते! आज हम सब कुञ्ज में मङ्गल जागरण करेंगे। अतः चन्दन गंधादि उपहार ले आओ। वहाँ सुसज्जिता-राधा को मैं सर्वप्रथम आराधना के लिये नियुक्त करूँगा।

[ऐसा कहकर चले जाते हैं]

कृष्ण—[पोर्णमासी को प्रणाम कर] भगवती ! बिरह-पीड़ा सम्यक्‌रूप से प्रज्वलित होगयी है। धैर्यावलम्बन में असमर्थ हूँ, कहो, क्या करूँ ?

पौर्णमासी—(स्वगत) प्रथम कल्प अर्थात् राधा-विषयक प्रस्ताव अतीत हुआ है। अब चन्द्रावली-प्रस्ताव का अनुकल्प किया जावेगा। अतः आज सान्दीपनि-मन्दिर-गमन के छल से कुण्डी। नगर में जाऊँगी ।

कृष्ण—भगवती ! प्रासाद के ऊपर स्थित गृह में आरोहण करने के लिये आदेश की प्रार्थना कर रहा हूँ ।

(ऐसा कह कर सब के साथ प्रस्थान करते हैं) ॥३५॥

ललितमाधव नाटक का यह "राधा-अभिसाराख्य गर्भाङ्कगर्भ" रूपचतुर्थ अङ्क समाप्त हुआ।

पञ्चमोऽङ्क

(तदनन्तर पौर्णमासी का प्रवेश)

पौर्णमासी—श्रीकृष्ण में शत शत मिथ्या परिवाद प्रदान के द्वारा गुरुतर पातक के कारण जिन का चित्त अत्यन्त मलिन हो रहा है उन समस्स्त दुष्ट भूपतियों के कैलाश पर्वत से भी अधिक

वस्त्रावास समूह के द्वारा विदर्भनगरी दूषित हो गई है ॥१॥

(नेपथ्य में) जब तक माधव को वश में करने वाला सिद्ध-औषधि स्वरूप प्रेम समूह का गन्ध अन्तः करण का पथिक नहीं बनता है तब तक सर्व सम्पत्ति से पूर्ण अष्टसिद्धि समूह के द्वारा विजयलाभ, सत्य, धर्मसाधन, समाधि एव उस का फल ब्रह्मानन्द आदि गौरवान्वित होकर चमत्कार सम्पादन करता है ॥२॥

पौर्णमासी—(अवलोकन कर सहर्ष से) जिन के स्कन्धदेश में जटा प्रान्त विलुण्ठित हो रहा है, जो वीणा के द्वारा माधव की कीर्त्तिगाथा गान करने में अतिशय दक्ष हैं वे शरच्चन्द्रमा की भाँति निर्मल कान्तिवाले हाथ में वीणाधारी देवर्षि नारद यहाँ उपस्थित हो रहे हैं ॥३॥

(नारदजी का प्रवेश)

नारद—"ऋद्धिसिद्धिव्रजविजयिता" इत्यादि पूर्वोक्तश्लोक पाठ करने लगे।

पौर्णमासी—भगवन् आप को नमस्कार।

नारद—मुकुन्द की प्रियचिन्ता में रत रहो।

पौर्णमासी—भगवन्! सुना है कि मुकुन्द ने मथुरा से प्रस्थान किया है।

नारद—ऐसा ही है। मुकुन्द ने मथुरावासियों के अवध्य म्लेच्छ-राज कालयवन को, कन्दरान्तरालवर्त्ती शयनकारी मुचकुन्द को नयनाग्नि से स्वच्छन्द रूप में वध कर, कुटिल जरासन्ध की दुरन्त अभिसन्धि को पुनः पुनः कदर्थन कर बन्धुवर्ग के साथ समुद्रतीर-वर्त्ति पर्वतमाला शालि द्वारका नगर में गमन किया है ॥४॥

पौर्णमासी—भगवन्! बलवान् स्नेहानल से मेरे इस शरीर की अन्तिमदशा उपस्थित हो गई है, आज भाग्यवश आप का दर्शन लाभ हुआ ॥

नारद—वत्से ! स्पष्ट देखा जाता है कि एक मात्र चन्द्र के द्वारा पौर्णमासी समृद्धिलाभ करती है, अतः पूर्णकला वाली चन्द्रावली के द्वारा समृद्धिलाभ की वात कहना ही क्या है ॥

पौर्णमासी—(अश्रुपूर्ण गद्गद भाव से) भगवन् ! चन्द्रावली के प्रतिपक्ष असाधारण दारुणाकार परार्द्ध (वहुत) जन निकट में विद्यमान हैं। अतः पौर्णमासी की समृद्धिवार्त्ता कहाँ है ? ॥

नारद—पुत्रि ! तुम्हारा पक्ष छोटा नहीं है, अतः विपक्षपक्ष की वहुलता में क्यों भय है।

पौर्णमासी—यह चन्द्रावली नितान्त हरित्यक्ता हो रही है, उस पर और अपनी भगिनी उज्वलकान्तिवाली राधिका से विर-हिता है; अतः क्यों नहीं भय होगा ?

नारद—क्या अभी भी राधिकाशोक उसे वाधा दे रहा है ?

पौर्णमासी—हाँ क्यों कि यह तो बन्धुवत्सला रुक्मिणी है।

नारद—यह चन्द्रावली रुक्मिणी है यह किस से तुमने सुना ?

पौर्णमासी— रुक्मी के पिता भीष्मक के निकट।

नारद—(क्षणकाल चिन्ताकर स्वगत) निश्चय यह समस्त पुररमणी तथा ब्रजरमणी तत्त्वांश में समान होने पर भी देहादि से भिन्न हैं । वीच में माया के द्वारा अभिन्ना की गई है। वर्त्तमान ब्रजधाम में वे सब ब्रजरमणी प्रेममूर्च्छिता होकर विराजमान हैं। परन्तु योगमाया के द्वारा विरह में भी जिस से प्रियसंगसुख लाभ हो सकता है इसी लिये ब्रजभूमि का आच्छादन कर पुररमणियों में निज अभेद अभिमान के द्वारा दीर्घ स्वप्न की भाँति आवेशित किया गया है । जो उद्धवागमन में एवं कुरुक्षेत्रयात्रा में निवृत्त की भाँति हुई थीं वे सब समानचरित्रा होने पर भी इन षोलह हजार एक सौ आठ रमणियों से पृथक् हैं । जो हौं अब उस रहस्य का उद्घाटन आवश्यक नहीं है ॥

(प्रकाश्य में) भीष्मक ने क्या संकल्प किया है।

पौर्णमासी—(यादवेन्द्र श्रीकृष्ण के हाथ में चन्द्रावलि का समर्पण)

नारद—तब तुम व्याकुल क्यों हो रहो हो।

पौर्णमासी—रुक्मी के प्रतिकूल रहने पर, यह बृद्ध शान्तस्वभाव भीष्मक क्या कर सकता है ।

नारद—विदर्भ-कुमार रुक्मी का क्या अभिप्राय है ।

पौर्णमासी—चेदीराज शिशुपाल की इच्छा को पूर्ण करना।

नारद—तुमने इस बात को कैसे जाना।

पौर्णमासी–रुक्मी के द्वारा रुक्मिणी के निकट प्रेरित पद्य से···

नारद—श्लोक का पाठ करो तो ॥५॥

पौर्णमासी–दमघोषनन्दन, यौवनान्वित, अपनी जननी श्रुतश्रवा के हृदय में आनन्दविधानकारी नरपतिराज शिशुपाल में तुम्हारा प्रणयबर्द्धित हो।

नारद— उस पद्य का पाठ करके रुक्मिणी ने क्या किया।

पौर्णमासी--उसने श्लोक में से पाँच अक्षर का परिवर्तन कर रुक्मी के पास भेज दिया। पाँच अक्षर परिवर्तन से यह अर्थ होता है कि घोषनन्दन, नवयौवनान्वित, पशुपाल शीघ्र, हृदयानन्द-वर्द्धन गुणवाला परदेव श्रेष्ठ नन्दनन्दन में मेरा प्रणयबर्द्धित हो।

(दमघोषनन्दने-यहाँ पर मम घोषनन्दने, शिशुपाल यहाँ पर पशुपाल है, नरदेव के स्थान पर परदेव, श्रुतश्रवा के स्थान में द्रुतश्रवा पाठ है) ॥६॥

नारद--(हँसकर) उसके पश्चात्, उसके पश्चात् ?

पौर्णमासी--उस श्लोक का पाठ कर श्रीकृष्ण की शङ्का कर युवराज रुक्मी ने दुष्ट राजन्य वर्गों को निमन्त्रण देकर विदर्भराजधानी कुंडीन नगर में लाने का निश्चय किया है, उस पर वत्सा

रुक्मिणि ने मेरे साथ मन्त्रणा कर सुनन्द नामक एक ब्राह्मण के द्वारा एक पत्र भेजा।

नारद--वह पत्र कैसा है।

पौर्णमासी--हे कृष्णमेघ ! अपनी गर्जन के द्वारा प्रतिपक्ष राजहंस समूह रूप को दूरीभूत कर अमृतवर्षण के द्वारा तुम्हारी अधीना इस चन्द्रकवर्ता अर्थात् मयूरी को पक्ष में--(चन्द्रावलि) को परितृप्त करो ॥७॥

नारद--निश्चय वह ब्राह्मण अब तक फिर कर नहीं आया है।

पौर्णमासी--हाँ, क्यों कि रुक्मी के प्रति दैव अनुकूल है।

नारद--(ईषतहास्य करके) जगत् में आश्चर्य चातुरी वाली तुमने रुक्मी को अनुकूल क्यों नहीं बनाया।

पौर्णमासी--मेरे चातुर्यमधु प्रयोग के द्वारा द्विगुण दुर्मद में आक्रान्त रुक्मी ने चेदिपति शिशुपाल मेरे भगिनीपति हों इसलिये कुलदेवी चन्द्रभागा देवी को आराधना की। देवी ने अभीष्टानुरूप प्रत्यादेश दिया।

नारद--वह कैसा।

पौर्णमासी--जिसने जननी को अत्यन्त विस्मित कर चतुर्भुज-रूप से जन्म ग्रहण किया है, वह सूरसुतापुत्र (वसुदेव का पुत्र सूर्य, उसकी कन्या शिशुपाल की माता श्रुतश्रवा) (पक्षान्तर में सूरसुत अर्थात् वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण) तुम्हारी भगिनी गुणवती रुक्मिणी से विवाह करेगा ॥८॥

नारद--(हँसकर) कार्तिक जननी के द्वारा यह दुर्जन प्रतारित हुआ है।

पौर्णमासी-भगवन् ! कैसे प्रतारण किया है? क्यों कि द्वारका-नाथ दूर में विराजमान हैं इधर खलसमूह कुण्डिननगर को मलीन कर रहा है। उधर गरुड़ समुद्र पार हैं। इधर दंशन शील सर्पसमूह

पास में विराजमान है।

(सुनन्द का प्रवेश)

सुनन्द— भगवती ! निश्चय द्वारकानाथ अनतिदूर विदर्भपुर में उपस्थित हैं।

पौर्णमासी—(सानन्द) सुनन्द ! तुम अच्छा सम्बाद लाये हो। हम तुम्हारा अभिनन्दन करती हैं।

सुनन्द—अब अभिनन्दन का प्रयोजन नहीं है क्यों कि अन्ध मेरी सन्देश हारिता बन्ध्या हो गयी है, अर्थात् दुर्भाग्यवश मेरा सन्देश बिफल हो गया है।

पौर्णमासी—(भय के साथ) कैसा।

सुनन्द— गरुड़वाहन श्रीकृष्ण की इस पत्रिका को पढ़िये।

नारद—(पढ़ने लगे) कृष्णरूप शोभनमेघ स्वभाव से असितापांगी समस्त मयूरी वृन्द का सुखबिधान कर विशेषरूप से बृन्दावन की मयूरियों को आनन्ददान करता है ॥१०॥

पौर्णमासी—हाय! वह चन्द्रावलि है माधव यह नहीं जानते हैं।

नारद—सुनन्द ! तुमने स्पष्टरूप से उनसे क्यों नहीं कहा।

सुनन्द—वह चन्द्रावलि कौन है।

पौर्णमासी—दुष्टराजाओं से लज्जा के कारण रुक्मी ने अपनी बहिन का गोकुल-निवास गोपन कर चन्द्रावलि नाम का भी गोपन किया है।

सुनन्द—ये रहस्य जब सुहृद्गणों से भो अगोचर है, तो मेरा तो कहना ही क्या है।

पौर्णमासी—तब वह गरुड़वाहन श्रीकृष्ण क्यों विदर्भदेश अलंकृत करने को आये हैं।

सुनन्द—प्रियभक्त कथ एवं कौशिक के मनोहर सम्बाद से।

पौर्णमासी—दोनों की इस व्यापार में क्यों प्रवृत्ति हुई।

सुनन्द—भगवान् हिरण्यगर्भ की आज्ञा से । वह आज्ञा इस प्रकार है-हे क्रथकौशिक ! तुम्हारा मङ्गल होय, अपने भवन से पद्मयोनि (ब्रह्मा) यह आदेश कर रहा है। समस्त राजा तुम्हारे आदेश का अतिक्रम नहीं करते हैं उन शुद्ध चरित्र वाले नृातियों के साथ तुम सानन्द यदुपति श्रीकृष्ण को राजाधिराज पदवी की पुष्पाभिषेक क्रिया का सम्पादन करो ॥११॥

पौर्णमासी—बड़ा भाग्य, मैं यह महामहोत्सव देखूँगी।

सुनन्द—भगवती ! वह कार्य तो पूर्ण हो गया है।

पौर्णमासी—किस प्रकार हुआ।

सुनन्द—अति-वृहत् उत्तम रत्नसिंहासन पर श्रीकृष्ण को बैठाकर आनन्द चित्त से पार्वतीनाथ आदि देवों से पुनः पुनः चहुँ ओर स्तव किये जाने पर समस्त नरपतिगण ने दिव्य कुम्भावलि के द्वारा दनुजविजयी कृष्ण का अभूतपूर्व राजाधिराज उचित अभिषेक सम्पन्न किया है ॥१२॥

नारद—विन्ध्य के लिये ब्रह्माजी ने जो वरदान दिया था वह सार्थक हुआ है।

पौर्णमासी—भगवन् ! आदेश कीजिये । सदर्थ ज्ञापन कराने के लिये मैं माधव के निकट जाती हूँ।

(अकस्मात् कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—भगवती ! विदर्भराज भीष्मक ने निवेदन किया है कि हमसे प्रार्थित होकर क्रथ एवं कौशिक दोनों राजा रुक्मिणी हरणार्थ राजेन्द्र श्रीकृष्ण को आवेदन करने के लिये गये हैं। अतः पुण्यमयी आपके साथ तीर्थपाद श्रीहरि के दर्शन करने की इच्छा करता हूँ।

पौर्णमासी—भगवन् ! मेरी अभीष्ट सिद्धि हो रही है । ऐसा

जानना। अतः आदेश कीजिये।

(ऐसा कह कर दोनों के साथ चली जाती है)

(नेपथ्य में) अहो ! विषयाकार परणति का परित्याग कर विश्रान्त प्राप्त मुनियों के अन्तःकरण में जिनके पदनख प्राप्त की अल्प मात्र प्रभा नहीं प्राप्त होती है। आश्चर्य ! आज हम जैसे व्यक्ति की हस्तकलिका के द्वारा वह परम कारुणिक देवता का पादपद्म सम्बाहित हो रहा है। वह करुणामय आज कल्याणमय पर्यङ्क (पलङ्क) का शोभावर्द्धन कर विराजमान है ॥१३॥

नारद—कथ कौशिक की यह मनोहर उक्ति है !

(पुनः नेपथ्य में शङ्खध्वनि)

नारद—(देखकर सानन्द) अहो ! ब्रजरानी यशोदा के स्तन-पानकारी हरि जय लाभ कर रहे हैं। जो हाथ में शङ्ख लेकर वदन-कमल में अर्पण करके बजाने लगे हैं।

तात्पर्य—शङ्खवादन के द्वारा मा यशोदा के स्तनपान का स्मरण करा रहे हैं ॥१४॥

(पुनः निरूपण करके) वे कथ-कौशिक के द्वारा अनुबन्धमान होकर सम्मुख में भ्रमण कर रहे हैं, जो चञ्चल-कौस्तुभ-कौमुदी के द्वारा परिपूर्णरूप में उदय प्राप्त हैं, जिनकी चारों भुजा पाँचजन्य शङ्ख, कौमदकी गदा, सुदर्शनचक्र एवं पद्म से शोभायमान है, जिनका अङ्ग दिव्यालङ्कार से सुशोभित है, विहंगराज गरुड़ जिनके सङ्गी हैं वे कंसविजया श्रीकृष्ण आज मुझको वैकुण्ठगोष्ठ का सम्पत्ति का स्मरण करा रहे हैं। अतः आकाश में जाकर कौतुक देखूँ। (ऐसा कहकर प्रस्थान)

(यथानिर्दिष्ट श्रीकृष्ण का प्रवेश)

कृष्ण—हे नरपति-युगल ! तुम दोनों ने हमारे अभिषेक के लिये हितजनसे अमृतमय जल लाकर अभिषेक किया है। उससे तुम

पृथ्वी पर विपुलसमृद्धि लाभ करोगे। तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिलता नन्दनकानन को अतिक्रमण कर अत्यन्त ऊर्ध्वदेश में स्थित वैकुण्ठ-धाम का आरोहण कर लक्ष्मीदेवी के कर्णाभूषण को स्तवकराशि उत्पादन करेगी ॥१५॥

दोनों राजा—(अनुग्रहीत होकर) हे विभो ! जिनके एकमात्र रोमकूप विवर में ब्रह्माण्डभाण्ड-समूह गवाक्षद्वार में घूर्णित परमाणु की भाँति दीखते हैं उन आपकी समृद्धि की अधिक सीमा क्या हो सकती है, तो भी तुम्हारे राजेन्द्र तरु ग्रामाधिपतित्व क्षुद्र-पद गौरव हम सबका किस प्रकार चमत्कार सम्पादन कर सकता है ॥१६॥

कृष्ण—नृपयुगल ! हम तुम्हारे प्रति प्रसन्न हैं तुम अपनी अभीष्ट प्रार्थना करो।

दोनों—देव ! तपस्विनी रुक्मणी ने ऐसी कोई तपस्या नहीं की जिससे वह आपकी दासी-सौभाग्य का लाभ कर सकती है । ऐसा गरुड़ मुख से हमने सुना है तो भी आप उसके लिये ऐसा अनुग्रह कीजिये जिससे वह भीरु निन्दनीय नहीं हो।

कृष्ण--कैसा अनुग्रह ?

दोनों--आज चन्द्रभागा देवी की आराधना के लिये वह अन्तः-पुर से बाहर आगमन करेगी, अतः आप दुष्ट जरासन्धादि राजाओं को पराभव कर उसका कुंडीननगर से हरण कीजिये।

कृष्ण--नृपयुगल ! ऐसा ही करूँगा ! तुम दोनों अपने अभीष्ट का अनुष्ठान करो।

दोनों--(कृष्ण को प्रणाम करके चले जाते हैं)

(नेपथ्य में) हे दामोदर ! महर्षि नारदजी द्वारा वीणायन्त्र के साथ तुम्हारा गुणयशगान प्रारम्भ करने पर समस्त-जगत शुभ्र-वर्ण हो गया है । पार्वतीजी अपने पति महादेवजी के कण्ठ में

श्यामवर्ण न देखकर क्या यह मेरे पति नहीं हैं इस प्रकार भीत होकर त्याग करने लगी। बलदेवजी अपने वस्त्र को शुभ्रवर्ण देखकर, यह मेरा वस्त्र नहीं है इस ज्ञान से फेंकने लगे। और आभीररमणी यमुनाजल को शुभ्रवर्ण देखकर दुग्धज्ञान से औटाने लगे ॥१७॥

गरुड़—यह तो आकाश में तुम्बरु स्तव कर रहा है।

कृष्ण—सखे खगराज! देखो देखो, खल भूपतिगण के तक्षक फण की भाँति शुभ्र छत्र समूह मेघ समूह को आच्छादित कर रहा है। तीनों लोक दूर से देख कर काँपता हुआ, आन्दोलित हो भय से जर्जरित हो गया ॥१८॥

गरुड़—देव! आप के अत्यन्त लघुकिङ्कर इस गरुड़ की एक बार विक्षेपक्रीड़ा के सामने वे आतपत्र की भाँति फण पटली पर्य्याप्त नहीं है। अतः प्रलयाग्नि के समान मेरे यह सखा सुदर्शन दूर में विश्राम करें। (नेपथ्य में) कुण्डिन राजा की कन्या पुण्डरीकनयन की अनुरूपा है। हे सखि! तो भी हतदैव उस के प्रति अनुकूल नहीं हो रहा है ॥१९॥

गरुड़—पुररमणियों की यह विषादोक्ति है।

(पुनः नेपथ्य में) सुन्दर रूप वाली कहाँ तो यह रुक्मिणी और कहाँ क्रूरमति दमघोषनन्दन शिशुपाल। क्या गर्द्दभ के कण्ठ में विमल नवमल्लिका की माला शोभा पा सकती है ॥२०॥

गरुड़—यह कौस्तुभ भूषित कण्ठ वनमालिका पक्ष में सुलभ है, दूसरे के पक्ष में नहीं।

(नेपथ्य में) जो अखिल रमणियों की आकर्षणविद्या वैदग्धी के निधि स्वरूप हैं, वे यादव समुद्र के पूर्णचन्द्र सर्वोत्कर्षता से जय युक्त हों। जिन को संग्राम को अन्तः पुर भूमि में दूर से दर्शन कर पुरुष भी अत्यन्त भय युक्त हो स्त्री रूप धारण कर लेता है ॥२१॥

कृष्ण—(बांए की ओर देख कर) यह मौत्तिकचूड़ नामक माथुरभट्ट विरुदावली पाठ कर रहा है ॥

(पुनः उसी ओर) शोभमान मणि सरोवर से अधिक शोभा वाले, नवीन तमाल की भाँति नोलवर्ण, गाढ़ कुंकुम से भूषित, श्रीहरि के मनोहर वक्षःस्थल सर्वदा जय युक्त हों। जो कि नक्षत्र-माला से विभूषित, विद्युद्दाम सौन्दर्य्य से अलकृत मेघ को अपने वक्षः आकाश में उद्भासित कर रहा है ॥२२॥

कृष्ण—(मोहग्रस्त की भाँति) हा प्रेयसि राधिके ! हा विशाखा सखि ! तुम सब अब कहाँ हो ? (ऐसा कह कर काँपते हुए गरुड़ का अवलम्बन करने लगे)

गरुड़—(स्वगत) इस गम्भीर लीला समुद्र की दुरुह क्रीड़ा-भूमि में हमारे समान व्यक्ति निमज्जित हो रहा है तो अन्य क्षुद्रव्यक्ति की कथा क्या कहना है। (प्रकाश्य में)

देव ! आश्वस्त हों आश्वस्त हों।

कृष्ण—(आश्वासित होकर निश्वास त्याग करने लगे)

(नेपथ्य में) धात्रेयी के कर पुट में हस्ताग्र रख कर, व्याकुलित बृद्धा ब्राह्मणियों के द्वारा परिब्याप्त, दूर से बहु अस्त्रधारियों (सैन्यों) से सुरक्षित विदर्भराजनन्दिनी रुक्मिणी दुर्गामन्दिर के लिये जा रही है ॥२३॥

कृष्ण—सखे गरुड़ ! रुक्मि ने हताश होकर दुर्गामन्दिर को दुगम बना रखा है। अतः आओ, नटवेश से भीतर प्रवेश करें।

(दोनों चले जाते हैं)

(अनन्तर यथा निर्दिष्ट चन्द्रावली प्रवेश करती)

चन्द्रावली—(संस्कृत में) अहो, जो भ्राता आश्रय था उसका इस प्रकार प्रतिकूल आचरण हो रहा है। हितकारिणी देवी उपेक्षा करने लगी है,। जो एक मात्र गति थी वह प्रिय विस्मृति पात्र हो

गये है, अहो दैव के प्रतिकूल होने पर समस्त विपरीत हो जाता है।

माधवी—इस मन्दिर में प्रवेश कर चन्द्रभागादेवी का निवेदन करें।

चन्द्रावली—आर्य्ये ! भार्गवि ! चन्द्रभागा चण्डी को बन्दना कराओ।

भार्गवी—देवि चन्द्रभागे ! परमाभीष्ट वरदान के द्वारा विदर्भ-नन्दिनी का आनन्द विधान करो।

(ऐसा कह बन्दना कराने लगी) ॥२४॥

चन्द्रावली—(आक्षेप पूर्वक संस्कृतभाषा में) हे भगवति ! हाय ! मैंने बाल्यकाल से ही एकान्त विश्वास के साथ श्रीकृष्ण के लिये ऐकान्तिक भाव से आपकी आराधना की। क्या आज उस का यह प्रसिद्ध फल उपस्थित हुआ है कि आप अनुकूल होकर मुझे कृष्णवर्त्म में अर्थात् अग्नि में पक्षान्तर में श्रीकृष्णमार्ग में निक्षेप कर रही हो ॥२५॥

माधवी—देखो देखो, रुद्राणी प्रसन्न हो रही है ऐसा ज्ञात हो रहा है।

चन्द्रावली—आर्य्ये ! भार्गवि ! आप अब भगवती सर्वाणी की आराधना कीजिये। मैं जाकर कुण्डस्थित भगवान् पावक (अग्नि) की परिक्रमा करती हूँ ॥

(तदनन्तर नर्त्तकवेशी कृष्ण-गरुड़ प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—मैंने केलि-कौतुक संगठन के लिये पशुपाल गोष्ठी में जिसका अनुशीलन किया है आज परदुर्ग प्रवेश में वह नटवेश सहायक बन रहा है ॥२६॥

गरुड़—देव ! इस नटवेश से नारियों एवं शत्रुओं के नेत्र रञ्जित हो रहे हैं।

कृष्ण—सखे विहङ्गराज ! देखो शुभसूचक लक्षण प्रादुर्भूत हो रहे हैं।

गरुड़-हे मुरारी ! आकाश में कौतुकवान मुनियों से परिपूजिता नीलकमललोचन गौरवमयी कीर्तिचन्द्रानन विजयलक्ष्मी शिशुपाल आदि राजाओं को त्याग कर उत्कण्ठित होकर आपके निकट आवेगी ॥२७॥

कृष्ण—सखे ! देखो, देखो, युद्ध में अपराङ्मुख वीरगण सिंहनाद कर रहे हैं। इधर सगतज्ञगण सुन्दर स्वर से गान कर रहे हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठ मङ्गलमय वेदमन्त्रसमूह उच्चस्वर से पाठ कर रहे हैं अहो आज कुण्डाननगरी समस्त राज्य को बधिर कर रही है। २८॥

गरुड़—(सम्मुख देखकर) यह तो कुण्डीनराजपुत्री दुर्गा मन्दिर से बाहर आ रहा है।

कृष्ण—इस परस्त्री विलोकनरूप दुर्वासना से निवृत्ति ही मङ्गलजनक है। (ऐसा कहकर मुख फेरकर) सखे ! तुम पक्षांचल के द्वारा आकषरण कर क्रथ एवं कौशिक दोनों राजाओं के प्रति इस राजकुमारी को समर्पण करो।

गरुड़—(विस्मय के साथ निरूपण कर) अहो ! देवगण ने क्षीरसमुद्र मन्थन छल से सौन्दर्य सागर का मन्थन कर सुन्दर चरित्रवाली समस्त सम्पत्ति की सारभूता लक्ष्मीदेवी का सग्रह किया है, वह लक्ष्मीदेवी इस प्रकार कान्ति के द्वारा नेत्र को चमत्कारचातुरी-बिधान नहीं कर रही है जिस प्रकार कि यह राजकुमारी अपना कान्ति से सबके चक्षु को चमत्कार चातुरी का बिधान कर रही है ॥२९॥

कृष्ण—सखे ! जो भी हो, उससे क्या है क्योंकि इस हरि का मन रूपमात्र से ही हरण नहीं होता है।

चन्द्रावलि—सखी माधुरी ! उस वृन्दावन के बीज से उत्पन्न

वकुलवृक्ष के पौधे का पालन करना।

माधुरी—(अश्रुपूर्ण नेत्र से) राजकुमारी! प्रसन्न हो! प्रसन्न हो! सुनन्द को प्रतीक्षा करो, यह भगवती विभावरी बीच में मौजूद है। भगवत्ता के कारण वह तुम्हारी अभीष्ट पूर्ण करेगी ऐसा व्यंञ्जित होरहा है। अतः अब अनलकुण्ड में मत गिरो(ऐसी प्रतिध्वनि है।)

चन्द्रावलि—मुग्धे! अन्तःपुर में मेरे लिये यह अमृतकुण्डरूपी मङ्गल सुलभ नहीं होगा। (ऐसा कह कर अश्रुपात के साथ-संस्कृत में) हे दामोदर! हे गुणनिधे! तुम्हारे राति ज्ञान में मैं अपटुबुद्धिवाली थी, तुमने दूर से अपने गोष्ठि को लाकर मुझे ग्रहण किया था अब अपने संग से देशान्तर मे क्यों फेंका है, क्या तुम मुझे भूल गये हो ॥२०॥

(नेपथ्य में कल कल शब्द)

कृष्ण—यह पुररमणियों का औत्सुक्य सूचक शब्द है।

गरुड़- देव! देखो, देखो, हरिण-नयनि सुन्दरिगण आपको देखने के लिये भवन के ऊपर आरोहण कर रही हैं जिनके मुख-समूह शोभायमान हो रहे हैं। हे कमलनयन! उन मुखों से गगनतल चन्द्रावलिरूप को व्यक्त कर रहा है ॥२१॥

कृष्ण--(उत्कण्ठा से) हे प्रिये चन्द्रावलि! हे पद्मासखी! इस कठोर के द्वारा तुम विस्मृत हो रही हो, अतः आज द्वारका-नगरी में गमनकर तुम्हारे उद्देश्य से दूतों को प्रेषण करूँगा।

चन्द्रावलि—आगे इस प्रज्वलित अग्निकुण्ड को देखकर निश्चिन्त हो रही हूँ।

कृष्ण—(आशंका से) सखे! अनुभूतपूर्वा कोई सिंजित ध्वनि-रूपा नदी प्रसारित होकर मुझे आर्द्र कर रही है!

गरुड़—देव! मैंने आपसे पहले निवेदन किया है कि इस अमूल्य

कुमारी रत्न के अर्घ्यहारी अर्थात् पाणिग्राहक आपके विना तीन जगत् में और किसी को नहीं देख रहा हूँ।

कृष्ण—तब एकबार नेत्र के द्वारा परीक्षा करनी होगी।

(ऐसा कह कर अपांग का संचालन कर) अये ! गोकुलबिलासिनी के साधारण माधुर्यमुद्रा से मण्डित यह कुमारी मेरे हृदय को उन्मादित कर रही है। (पुनः सानुराग देखकर) हाय ! यह मेरी वह प्राणबल्लभा है। (आदर प्रकाश पूर्वक) जो मेरे चित्तरूप चन्द्रकान्तमणि को द्रवित कर रही है, जो मेरे स्मर समुद्र में उच्च क्षोभ विस्तार कर रही है, जो मेरे नयनकुमुद को आनन्दविधान कर रही है और जो मेरे रोमावलि रूप औषधि समूह को सर्वप्रकार उल्लास प्रदान कर रही है वह चन्दनपङ्क से शीतल करने वाली चन्द्रावलि आज प्राप्त हो रही है ॥३२॥

अतः इसके समीप जाकर इसके माधुर्य की पर्यालोचना करूँ।

(ऐसा कह कर गमन करने लगे)

माधवी—(कृष्ण को देखकर स्वगत) यह त्रिलोक-सुन्दर नर्तकराज कहाँ से आया है।

चन्द्रावली—हे भगवान् हव्यवाहन ! कोटि कन्दर्प की भाँति श्रीकृष्ण के पादपद्म-युगल के पास में इस व्यक्ति को ले जाओ, क्यों कि यह व्यक्ति एकमात्र उनका शरणागत है। (ऐसा कहकर अग्नि को प्रणाम कर) हे भगवती पौर्णमासि! इस अवसर में आप कहाँ गयी हो।

कृष्ण—(खेद के साथ स्वगत) हाय ! यह सत्य ही महासाहस (प्राणत्याग) में कृतनिश्चय होकर अब अग्नि की प्रदक्षिणा कर रही है। अतः मैं इसके निकट जाकर भुजाओं से इसको आच्छादन करूँ।

चन्द्रावली—(व्याकुल होकर अश्रुपात करते करते) हा वहिन

राधे ! तुम अब तक नहीं आयी हो। हा प्रिय सखी पद्मे ! तुम कहाँ हो। हे मात गोकुलेश्वरी ! अब आपको नहीं देख पाऊँगी। हा प्राणनाथ शिखण्ड ! (असमाप्त कथा को कह कर वाक्स्तम्भ प्रकाश कर मोह प्राप्त होकर) जिनका मन्दहास्य मकरन्द स्वरूप है, श्रेष्ठमकरकुण्डल की शोभा जिनके कर्ण में बिराजित है मेरा नयन प्रति जन्म उनके मुखपद्म में भ्रमण करे ॥३३॥

कृष्ण—(सम्भ्रम के साथ कण्ठ में आलिंगन कर) हे कुरङ्गाक्षी ! त्रिजगत को तापित मत करो।

माधवी—(सरोष) रे महासाहसी ! धृष्ट नटयुवक ! इस महाराजपुत्री को परित्याग करो।

कृष्ण— (अश्रुपूर्ण नयन से) अरी शशिमुखी ! तुम जिसको न पाकर मदन के आश्रयभूत इस श्रेष्ठतन को तृण के समान तुच्छ ज्ञात कर रही हो वह प्रणयशाली व्यक्ति तुम्हारे कण्ठ में संलग्न हो रहा है। हे प्राणेश्वरी ! आज प्रसन्न हो ! अनुगत इस वल्लभ के प्रति महाभय का बिधान मत करो। इस भयानक कार्य से विरत हो इससे मेरा शरीर विदीर्ण हो रहा है ॥३४॥

चन्द्रावलि—(अनसुन का अभिनय कर) माधवी ! मुझे छोड़ दो, छोड़ दो और दुःख मत दो क्यों कि इस मुहूर्त में नानारोग भय की सम्भावना है। (अपनी अंगुलियों से अलंकार निकाल कर) सखी ! यह रत्नमुद्रिका है जिस प्रकार कभी पुरुषोत्तम के दृष्टिपथ में पड़े उस प्रकार व्यवस्था करना।

(कृष्ण के हस्तांगुल में मुद्रिका रखती हुई सन्देह के साथ आत्मगत) इस हस्त का स्पर्श इस प्रकार कठिन क्यों है। (ऐसा कह कर अश्रुधारा पोंछकर भलीभांति देखकर विलाप पूर्वक) क्यों ये क्या, ये क्या। यह तो मेरे जीवितेश्वर हैं मुझे आलिङ्गन कर

आलाप कर रहे हैं (ऐसा कह कर आनन्द से मूर्च्छित होकर भूतल में गिर जाती है।

माधवी—(आनन्द के साथ) कैसा आनन्द ! बिधि का कैसा आश्चर्यविधान।

(तदनन्तर भीष्मक राजा के द्वारा अनुगम्यमाना पौर्णमासी का प्रवेश)

पौर्णमासी—जो प्रस्फुटित नवीन कमल की भाँति माधुयशाली चरणयुगल को धारण किये हुए है, जो पर अजेय चक्रधारण कर सबका संताप दूर करते हैं उन हरि का अनुसरण कर जिस प्रकार सम्मुख में जलाशय देखकर भूमिलुण्ठिता सफरी आशा में जीवन प्राप्त करती है उस प्रकार मोहान्धा चन्द्रावलि जीवन धारण कर रही है ॥३५॥

(ऐसा कहकर निकट में जाकर) वत्से चन्द्रावलि ! तुम माधव से प्रसन्नता लाभ कर इस सान्दीपनि माता को आनन्द प्रदान कर रही हो। अतः अब उठो। (ऐसा कह कर दोनों हाथ पकड़ कर उठाने लगी)

चन्द्रावलि—(सामने देखकर स्वगत) यह तो मेरे पिता विदर्भराज हैं। वे किस प्रकार यहाँ आये। (ऐसा कह कर लज्जित होकर पौर्णमासी के पीछे पीछे जाने लगी)

कृष्ण—(विस्मय के साथ) आप यहाँ कैसे आयी हो।

पौर्णमासी—हाय ! गोकुलचन्द्र ! चन्द्रावलि के स्नेहवश यहाँ आई हूँ।

भीष्मक—(सादर) जाम्बवान न जानकर अन्यायरूप से मेरी कन्या को लेकर मेरा बड़ा उपकार किया है क्यों कि मुनिजन मन में जिनके पदाम्बुज का ध्यान करते हैं वे सर्वश्रेष्ठ आज मेरी कन्या के वर हुये ॥३६॥

पौर्णमासी—कुण्डीनराज ! सत्य ही तुम आज पुण्यवानों के

शिरोमणि हुये हो। अत: निज कुलकुमुद की ज्योत्स्नारूप चन्द्रावलि को राजाधिराज श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण करो।

कृष्ण—(स्वगत) मेरी प्राणवल्लभा श्रीराधा के बिना इस चन्द्रावलि को अङ्गीकार करने में उद्यत मेरा मन अपराधी नहीं होगा, क्यों कि यह उसकी सहोदरा है।

भीष्मक—(विनय के साथ) हे लक्ष्मीकान्त ! कन्या के बन्धुओं का यह पण यथा योग्य है अत: मैं निवेदन करता हूँ कि आप मेरी दुहिता को आज्ञा की अवहेला कर अन्य किसी रमणी के साथ पाणिग्रहण नहीं कर सकते हैं ॥३७॥

कृष्ण—(पौर्णमासी के मुख को देखने लगे)

पौर्णमासी—मुकुन्द ! हत विधि ने गोकुलकुमारियों में से अवशेष इस चन्द्रावलि को रखा है अत: इसमें क्षति क्या है।

गरुड़—महाराज ! सुनो, विदर्भराजनन्दिनी जब अपने सुहृत्-जन के अङ्गसङ्ग के लिये विनयभर से श्रीनाथ के निकट प्रार्थना करेगी, तब उस समय तुम्हारा यह भयङ्कर पण विरामलाभ करेगा ॥३८॥

भीष्मक—ऐसा ही होगा। (ऐसा कह कर आदर के साथ निकट जाकर) देव ! कृपा करके परिचर्या-योग्य इस किंकरी को ग्रहण कीजिये। (ऐसा कह कर चन्द्रावलि को समर्पण करने लगे)

कृष्ण—(सादर से ग्रहण करके) हे राजन् ! आदेश करो। द्वारका को जाऊँ। (ऐसा कह कर सपरिवार प्रस्थान)

(नेपथ्य में) यहाँ मेरा घोड़ा, यहाँ मेरा घोड़ा, यहाँ मेरा रथ है, यहाँ मेरा रथ है। यह मेरा हाथी, यह मेरा हाथी, यह मेरी तूणीर, यह मेरी तूणीर, यह धनु है, यह धनु है, अहो यह मेरी तलवार, यह मेरी तलवार, क्या भय है, क्या भय है, ये मैं हूँ ये मैं हूँ। पकड़ो-पकड़ो चलो-चलो एक-कामुक गोप ने राजपुत्री का हरण किया, हरण किया ॥३९॥

भीष्मक—(भयाकुल) राजाओं का कोलाहल प्रबल हो उठा है।

(नेपथ्य की ओर देखकर) हाँ, यदुसैन्य को लेकर बलदेवजी आ गये हैं।

(पुन: देखकर हास्य के साथ) अहो! मद विह्वलता के कारण स्खलित चूड़ वाले बलदेव कह रहे हैं,

बलदेव—मैं जगत को पीस डालूंगा। श्रीहरि क्रोध नहीं करेंगे, नहीं करेंगे। अरे! शची-गृह के कुरङ्ग (क्रीड़ामृग) हँसी मत करो। (बलदेव के उपस्थित होने पर) राजारूपी पिपड़े (चेंटा) न जाने किस बिल में छिप गये ॥४०॥

(पुन: नेपथ्य में) सारङ्ग-धन्वा श्रीकृष्ण के हास्यरङ्ग के साथ शत्रुकुलध्वंश-कारी धनुष को घूर्णायमान करने पर आज दन्तवक्र चीत्कार करता करता वक्र हो गया। भोजन-पटु, पलायनपर मगधराज जरासन्ध रूप शृगाल वाक्शक्ति रहित हो गया। निष्ठुर राजागण समर में आकर तलवार परित्याग करने लगे ॥४१॥

भीष्मक—(आनन्द के साथ) निश्चिन्त चित्त हो गया हूँ।

(नेपथ्य में) रणरङ्ग में पण्डित श्रीकृष्ण के द्वारा मस्तक के अर्द्धमुण्डित होकर और छिन्नवस्त्र के द्वारा आबद्ध होकर आज कुण्डिनेश्वर सुत रुक्मी बिडम्बित हुआ ॥४२॥

भीष्मक—(भय के साथ) इस कुलांगना पुत्र को सान्त्वना करना उचित है क्योंकि वह अहंकारी पीछे लज्जावश प्राणत्याग नहीं कर ले ॥४३॥ (ऐसा कहकर चले जाते हैं)

(सब का प्रस्थान)

ललितमाधव नाटक का "चन्द्रावलि-लाभ" नामक पञ्चम अङ्क समाप्त हुआ।

षष्ठोऽङ्क

(तदनन्तर उद्धवजी प्रवेश करते हैं)

उद्धव—वज्रधारी इन्द्रादिक देवतागण असुरों के भय से जिन के निकट अभय याचञ्चा करते हैं, हाय! वे आज क्षुद्रमगधराज जरासन्ध के भय से समुद्रमध्य में दुर्ग निर्माण कर अवस्थान कर रहे हैं। जिन की बुद्धि का अवलम्बन कर जगत् जीवन धारण करता है वे आज मन्त्रणा विषय में मुझे ग्रहण कर रहे हैं। अतः इस प्रकार दुर्गमगति वाले श्रीकृष्ण की लीला को कौन व्यक्ति जान सकता है ? ॥१॥

(परामर्श कर) आहा, मैं चिन्ताकुलित चित हो रहा हूँ, अब देवर्षि नारदजी को देखना चाहता हूँ।

(आकाश में) क्या कहते हो ? वे भगवान् नारद सुधर्मदेव की सभा में विराजमान हैं। अच्छा ठीक है, मैं वहाँ जाता हूँ। (ऐसा कह कर भ्रमण करना) अहो सत्य ही देवर्षि नारद सम्मुख में विराजमान हैं।

(नारदजी का प्रवेश)

नारद—अहो दामोदर के हृदय में नवीन आमोदलहरियों को आत्मसात करने के लिये जगत् में प्रेम की नाना प्रकार उत्कृष्ट गतियाँ हैं परन्तु ब्रजदेवियों के हृदय में गम्भीर जो भावगरिमा स्फुरित है उस का हम स्तवन करते हैं। समस्त इन्द्रियों के अधीश्वर श्रीहरि भी उस पर प्रभुत्व विस्तार नहीं कर पाते हैं ॥२॥

(सम्मुख में देख कर आनन्द के साथ)

यह तो उद्धव रूप में भक्ति-प्रसरण मानो मूर्तिमान होकर विहार कर रहा है। जिनके भुजाओं में चक्रादि चिन्ह, ललाट

पटल में तिलक, कण्ठ में अनुपम तुलसी-काष्ठमणियों की माला मौजूद हैं। जिन्होंने अङ्ग में तथा मस्तक में श्रीहरि के निर्म्माल्य को वहन किया है ॥३॥

उद्धव—भगवन् प्रणाम करता हूँ।

नारद—(शुभाशीर्वाद के द्वारा प्रत्यभिवादन कर) मन्त्रि-राज ! तुमको विषण्ण क्यों देख रहा हूँ।

उद्धव—भगवन् ! देवचरण श्रीहरि के निकट अपराध करने के कारण।

नारद—अपराधवीज के सम्बन्ध में तुम तो निरन्तर ऊसर-भूमि स्वरूप हो, दैववश वह अंकुरित होने पर भी गोविन्द में सत्ता-लाभ नहीं कर सकता अर्थात् अपने प्रभाव को विस्तार नहीं कर सकता।

उद्धव—भगवन् ! मेरी कौतुक-कारिता हो देवदेव के महा-रण्य सीमा में प्रवेश हेतु बना।

नारद—वह कैसे ?

उद्धव-देवदेव श्रीकृष्ण के लिये क्षुद्र सत्राजित के निकट प्रार्थना।

नारद—वह प्रार्थना क्या है ?

उद्धव—लोकोत्तर कन्यारत्न एवं चिन्तामणि।

नारद—(स्वगत) आश्चर्य, आश्चर्य अविमृश्यकारिता शिष्ट-व्यक्तियों के अभीष्ट आरम्भ में पर्य्यवसित होता है। (प्रकाश्य में) स्पष्टभाव में वह प्रार्थना सफल नहीं हुई है।

उद्धव—ऐसा ही है, परन्तु वह कष्टजनक हो रही है।

नारद—प्रार्थना स्वीकार न करने पर भी श्रीकृष्ण सत्राजित् के निकट निन्दनीय नहीं हो सकते क्यों कि जो निर्मल हृदय करके प्रसिद्ध है वह व्यक्ति पृथ्वी में सज्जनों के उपदेश का अनुसरण कर गुणराशि का विस्तार करता रहता है परन्तु मलिनचित्त वाला

नहीं कर सकता। मृगनयनियों की मुखार्पित मधुराशि के द्वारा बकुलतरु मुकुलित होता है परन्तु वासकतरु नहीं ॥४॥

उद्धव—उस सत्राजित ने अच्युत को कन्यारत्न एवं चिन्तामणि रत्न प्रदान न कर अपने भ्राता एवं मनुष्यों में अपनी ख्याति को विनष्ट किया है ॥५॥

नारद—सुना है, मृगया में उसके भ्राता की मृत्यु हुई है।

उद्धव—ऐसा ही है।

नारद—स्पष्ट ही प्रसेन को ढूढ़ने के लिये श्रीकृष्ण गये हुए हैं।

उद्धव—ऐसा ही है, परन्तु जगतमः नाशन चरित्र वाले सूर्यरूप चाणूरमर्द्दी श्रीकृष्ण के चरित्र में कलङ्क आरोपण किया है, इसी लिये खेद प्राप्त होकर आपसे मङ्गलकामना कर रहा हूँ।

नारद—अहो! तुम तो पुण्डरीकाक्ष श्रीहरि की भक्तिमञ्जरी के भ्रमर स्वरूप हो, भक्तिमान व्यक्ति यदि कौतुकवश किसी विषय का आरम्भ करता है तो वह कंसारि के आनन्द हेतु होता है। तब तो तुम्हारी भाँति प्रियतम की कथा कहना ही क्या है। जो भी हो आज महोत्सव का अनुष्ठान करो क्यों कि अलौकिक चमत्कारिता की आकर उन समस्त वृन्दावनलीलाओं के दर्शन के लिये मनोहर समय उपस्थित हो रहा है।

उद्धव—भगवन्! जान कर भी आप क्यों मुझको वृथा प्रलुब्ध कर रहे हैं। क्यों कि किसी शोकलेश के द्वारा देवश्रेष्ठ के हृदय विद्ध होने पर नवबृन्दावनलीला में प्रवृत्त की सम्भावना कहाँ है?

नारद—शोकलेश का कारण क्या है?

उद्धव—कनिष्ठा अर्थात् राधिका उद्देश्य में (ऐसा अर्द्ध वचन कह कर वाक्स्तम्भ का अनुसरण करने लगे)

नारद—(हँस कर) यदि चक्षुष्मान व्यक्ति अपनी अङ्गुलि में

शोभित अंगुरी को न देख कर उस के लिये शोक करता है तो उस विषय में हम क्या कर सकते हैं ? ॥६॥

उद्धव—(विस्मय तथा आनन्द के साथ) भगवन् ! आपकी वाक्यलता किञ्चित् पुष्पिता हो कर मेरे मन मधुप को व्याकुल कर रही है। अतः स्पष्ट कहिये क्या सत्य ही कनिष्ठा देवी राधा जीवित है ?

नारद—जीवित है ऐसा क्यों कहते हो, वह द्वारावती को अलंकृत कर विद्यमान है ॥

उद्धव—(रोमाञ्च के साथ) किस प्रकार वह वहाँ आयी ?

नारद—निःसन्तान, परममित्र सत्राजित ने सर्व प्रकार से निष्ठा के साथ सर्वोत्कृष्ट अपत्य कामना कर दिनमणि की पूजा की है। दिनमणि ने प्रीतिपूर्वक दुरन्त शङ्खचूड़ मणि के साथ सत्यभामा नाम से विख्यात श्रीराधा को सत्राजित् के लिये प्रदान किया। ७॥

उस समय सूर्यदेव ने सस्नेह के साथ कहा है—

इस सुन्दरी कन्या के नारद के आदेशानुसार श्रेष्ठकीर्त्तिवाले वर में समर्पित होने पर जगत् में तुम्हारा अनुपम यश विस्तार होगा ? और वह महान् सुन्दर स्यमन्तकमणि तुम से उपासित होकर प्रतिदिन निश्चय अष्टभार सुवर्ण प्रदान करेगी ॥८॥

उद्धव--दिनमणि किस प्रकार इस मणिश्रेष्ठ के अधिकारी हुए ? ।

नारद—श्रीराधिका जब सूर्यलोक में गई तब उसने इस मणि को पुष्पाञ्जलि रूप से अर्पित किया है।

उद्धव—श्रीराधा का किस प्रकार सूर्यलोक में आरोहण हुआ ?

नारद—'श्रीकृष्ण को न देख कर आज सायंकाल में तुम्हारी सखी श्रीराधिका देहत्याग करेगी अतः हे पुत्रि ! तुम उस विरह-खिन्ना को शीघ्र मेरे पास ले आना" इस प्रकार पिता सूर्यदेव की

आज्ञा प्राप्त हो कर चतुरा कलिन्दनन्दिनी यमुना अति विलाप-कारिणी श्रीराधा को सूर्यमण्डल में ले आई ॥६॥

उद्धव—विशाखा की क्या वार्त्ता है ?

नारद—गोविन्द के साथ सम्बन्ध स्थापन कर अपनी मनो-कामना पूर्ण करने के लिये सूर्यदेव की इच्छा से धर्मराज की कनिष्ठा भग्नी ने गोकुल में विशाखा संज्ञा प्राप्त की।

उद्धव—सुना है कि यमराज की माता विशाखा-सखी के कारण श्रीराधा को अत्यन्त प्रेम करती थी।

नारद—ऐसा ही है, सूर्यपुत्री संज्ञा के आवेदन से उस के पिता शिल्पाचार्य विश्वकर्म्मा ने द्वारकापुरी में नवबृन्दावन की रचना की है। जैसा कि—हे जगत् निर्माण में पटु पिताजी ! आप राधा-माधव की माधुर्यनदी प्रवाहित के लिये द्वारका में इस प्रकार एक बृन्दावन का निर्माण कीजिये कि जो कलनादशालिनी कालिन्दि की तीरभूमि के द्वारा सुशोभित हों, जो उस प्रकार गोवर्द्धनादि शैल-सौन्दर्य से अलंकृत हों, जो समुज्वल भाण्डीरवट से परिवेष्टित हों एवं जो अविकल वृन्दावन की लता-वृक्षावली से परिपूर्ण रहे ॥१०॥

उद्धव—विश्वकर्म्मानन्दिनी इस विषय में क्यों प्रवृत्ता हुई ?

नारद—राधिका-प्रार्थना से।

उद्धव—वह किस प्रकार ?

नारद—वह ऐसा है—हाय ! पापाचारी हतविधाता के उद्दाम दुर्विपाकों से मैं बृन्दावन से अत्यन्त दूर में आ पड़ी हूँ। जिससे गोपाल-शिरोमणि श्रीकृष्ण की लीलास्थली का इधर उधर दर्शन कर शीघ्र अन्तःकरण में तृप्तिविधान कर सकूंगी तुम ऐसी व्यवस्था करो ॥११।

उद्धव—(राधिका-उद्देश्य में) देवि ! त्रिलोकनयन सूर्यदेव के द्वारा हम सब सौभाग्यवश रक्षित हुए हैं। क्यों कि—नित्यबृद्धि

शील हरिलीलाओं से पूर्ण गाम्भीर्यमयी बृन्दावनभूमि में किसी प्रकार दुःख से वास करने पर भी सुदीघ निविड़ आशारूप सेतुबन्ध के बन्धन द्वारा आपका भविष्य जोवन दुर्निवन्ध हो उठा अर्थात् जीवन धारण दु:साध्य हो गया था ॥१२॥

नारद—उस के बाद, उस के बाद ?

नारद--तदनन्तर शनिश्चर की माता छाया धीरे धीरे कहने लगी। हे नवीन कमलमुखि राधिके ! तुम त्रिलोक सुख की सार-रूपिणी हो, जिन को साधुगण सवित्रमण्डल मध्यवर्ती देवता कर के ध्यान करते हैं वे तुम्हारे दयित यहाँ अवस्थित कर रहे हैं अतः तुम व्याकुल मत हो ॥१३॥

उद्धव--क्या विशाखा ने उत्तर नहीं दिया ?

नारद--क्यों नहीं, क्यों कि इस ने हास्य पूर्वक उत्तर दिया कि माते सवर्णे मैं इस सम्बन्ध में कहती हूँ सुनिये । गोपियों का नन्द-नन्दन निष्ठ भाव की दुरूह पदवी सञ्चरणशील प्रक्रिया को कौन व्यक्ति अवगत करने मे समर्थ हो सकता है ? क्यों कि आश्चय का विषय यह है-अपने रूप गोपन उद्देश्य में कौतुकवश जय परायण नन्दनन्दन के चतुर्भुज समन्वित श्रीनारायण-मूर्ति प्रकाश करने पर भी गोपियों का श्रीकृष्ण में रागोल्लास संकुचित हो जाता है ॥१४॥

उद्धव--क्या आपने सत्राजित् को उपदेश नहीं दिया ?

नारद--दिया है, कि--सिंह प्रसेन को निहत कर इस मणीन्द्र का हरण करेगा । बाद में उस प्रवल सिंह का वध कर भल्लूक-नृपति जाम्बवान् ग्रहण करेगा । तदनन्तर उस को पराजित कर श्रीकृष्ण तुम्हारे इस सम्पत्ति का हरण करेंगे तब तो तुम दुःख-सागर में निमज्जित हो जाओगे ॥१५॥

उद्धव--उस के बाद, उस के बाद ?

नारद--उसके बाद उसने कहा है कि--अग्नि से दग्धजन पुनः

तप्त अग्नि के द्वारा जिस प्रकार शान्तिलाभ करता है उस प्रकार उन भगवान् में अपराधी हमारे वे भगवान् ही आश्रयस्थल हैं ॥१६॥

उद्धव—उस के बाद भगवान् ने क्या कहा है ?

नारद—हे कुटिलचित्त ! जब तक प्रतियोद्धारूप हस्तिशावक के सिंह स्वरूप, शिव प्रमुख देवतागण के मस्तक में आज्ञा प्रदायक वे विभु उपस्थित नहीं होते हैं तब तक तुम शीघ्र ही आह्लाद के साथ चिर मनः पीडिता उस कुलनन्दिनी को उन के अन्तः पुर में रक्खो ॥१७॥

[तदनन्तर सत्राजित् ने अन्तः पुर में राधिका प्रवेश कराने के लिये जननी को नियुक्त किया]

उद्धव—(आनन्द के साथ) प्रभो ! आप करुणासागर हैं, इस महारसायन रूप सम्बाद के द्वारा वायुरोगाक्रान्त मेरा तृप्तिविधान किया है ।

नारद—हाय ! गुरुतर शोकशूल से आक्रान्ता पौर्णमासी गोकुल में जाने के कारण आस्वादन न कर सकी ।

उद्धव—उन के विना उस कनिष्ठा देवी राधा का कौन लालन करेगी ?

नारद—विश्वकर्मा की शिष्या को इस विषय में उपयुक्त समझ रहा हूँ ॥

उद्धव—वह पुण्यवती कौन है ?

नारद—जो गृहोद्यान में असमय पुष्परचना में सुदक्षा है, जो वृक्षों के आयुर्वेदतन्त्र में निपुणमति वाली है, और जो स्थावरों के भावविज्ञान में समर्था है वह सुप्रसिद्धा नवबृन्दा वर्तमान द्वारका में निवास कर रही है ॥१८॥

उद्धव—क्या यह वनदेवी राधा-तत्त्व को जानती है ?

नारद—हाँ जानती है, क्यों कि इसका यथार्थ नाम नववृन्दा

है ! और वह सूर्य्यपत्नी संज्ञा के आदेश से अनुगृहीता हुई है।

उद्धव— वह आदेश कसा है ?

नारद—लक्ष्मी-दुर्लभ विचित्र केलि कलिका के काण्डरूप वृन्दावन विहरणशील कंसारि श्रीकृष्ण की जो समस्त प्रेयसी गोप-बालाएँ वहाँ विहार करती थीं उन में श्रीराधा सर्वश्रेष्ठा है, जो कि वर्तमान पृथिवी में द्वारका नगरी आश्रय कर मौजूद है। अतः हे देवि ! तुम अब उस को सर्व प्रकार से सेवांगीकार करो ॥१६॥

उद्धव—(अश्रुनेत्र से) भगवन् ! उन गोपकिशोरिकाओं की कथा स्मरणप्राप्त कर अन्तः करण को सन्तप्त कर रही है।

नारद—दुःख मत करो, क्यों कि—

श्रीकृष्ण विरह से इन को किसी अनिवचनीय दशा प्राप्त देख कर कामाख्यादेवी ने नरकासुर के द्वारा इन का हरण किया। अब वे धूपादि आराधना से तुष्ट कामख्यादेवी के द्वारा मधुरवाक्य से आश्वासित होकर मणिपर्वत की द्रोणियों में अवस्थित हैं॥

उद्धव—(आनन्द से) भगवन् ! देखो, देखो, सत्राजित् की माता वस्त्रावृता दोला का अनुसरण कर अन्तःपुर की कक्षा मे प्रवेश कर रही है। (ऐसा कह कर दोनों का प्रस्थान)

(विष्कम्भक)

तदनन्तर सत्राजित् की माता का अनुसरण कर राधिका प्रवेश करती है।

राधा—(व्यथित हृदय से आकाश की ओर दृष्टि कर संस्कृत-भाषा में) इस विचित्र धरातल में कितनी कन्याओं ने जन्म ग्रहण नहीं किया है। परन्तु हमारी भाँति कठोरांगी पृथिवी में कोई नहीं है। क्यों कि—मुकुन्द का परित्याग कर मैं कालयापन करने में समर्थ हो रही हूँ, हाय ! हाय ! मेरी प्रत्याशा को धिक्कार है, प्राण एव बुद्धि को धिक्कार है ॥२०॥

(जाते जाते फिरकर) आर्ये ! मुझ को अन्तः पुर क्यों नहीं ले जाती हो ?

वृद्धा—नातिनि ! महा तपोनिधि देवर्षि नारदजी के आदेश से ले जा रही हूँ।

राधा—(स्वगत) वह तो भगवती पौर्णमासी के आचार्य हैं। मेरे प्रति अत्यन्त स्नेहशील हैं ऐसा सुना है । इसी लिये भगवान् सूर्य ने पिता सत्राजित् को उन देवर्षि की आज्ञा का प्रतिपालन के लिये कहा है।

वृद्धा—नातिनि ! आओ, देवी रुक्मिणी के हाथ में तुम को समर्पित करती हूँ।

(तदनन्तर सखियों के साथ चन्द्रावली प्रवेश करती है।)

चन्द्रावली—सखि माधवि ! आर्यपुत्र स्यमन्तकमणि के अनुसन्धान में गये हैं परन्तु इतना विलम्ब क्यों हो रहा है ?

माधवी—राजनन्दिनि ! वहाँ और कोई कार्य आ गया होगा।

राधा—(स्वगत) सूर्यदेव ने कहा था, वत्से ! जब तक माधव तुम्हारे मणिबन्ध में स्यमन्तकमणि नहीं बाँधते हैं तब तक तुम अपने नाम अर्थात् राधिका इस नाम का गोपन रखना ॥

चन्द्रावली—(लक्ष्य कर) सखि ! अपूर्व रूपवती लक्ष्मी के साथ यह बृद्धा कौन आ रही है।

राधा—(चन्द्रावली को देख कर स्वगत) उत्तम, यह राजेन्द्र-महिषी मनोहर माधुर्यराशि से पूर्ण होकर मानो ब्रजकिशोरी का सौरभ धारण कर रही है।

बृद्धा—(समीप में जा कर) देवि रुक्मिणि ! स्यमन्तक व्यापार में मेरा पुत्र सत्राजित् राजेन्द्र के निकट अपराधी हो गया है। अब वह अपनी कन्या इस सत्यभामा को राजेन्द्र के प्रति उप-

हार दे रहा है। अतः इस को निज प्रियसखी जानकर तदुपयुक्त स्नेहमाधुरी एवं सौभाग्य की अधिकारिणी कीजिये।

राधा--(स्वगत) बृद्धा को अपने यथेच्छ प्रलाप करने दो मैं तो केवल सूर्यदेव की आज्ञा से यहाँ प्रविष्ट हो रही हूँ।

चन्द्रावली--आर्ये मैं धन्य हो गई कि इस प्रकार सखी आकर उपस्थित हुई। आप अपने घर जाइये। मैं निश्चय सत्यभामा का प्रतिपालन करूँगी।

बृद्धा--आप की जैसी आज्ञा। (ऐसा कह कर प्रस्थान करना)
चन्द्रावली--(जनान्तिक के लिये) सखि माधवि ! देख ! सत्यभामा की यह सौन्दर्यराशि आर्यपुत्र की सत्यसंकल्पता रूप सेतु को भंग करने वाली है, मैं धीरा होने पर भी आशंका से विचलिता हो रही हूँ।

माधवी--राजनन्दिनि ! सत्य ही कहती हो, यह तुम्हारा विभ्रम उत्पादन कर रही है।

चन्द्रावली--सखि ! मेरी प्रशंसा छोड़, मैं कह रही हूँ इस रूप की तुलना नहीं है। (पुनः देख कर संस्कृत में) इस की दृष्टि शान्ति को वहन कर रही है, निश्वास-परम्परा अधर पल्लव को कम्पित कर ताम्रकान्ति का ह्रास कर रही है। गण्डयुगल कम्बु-कान्ति की शोभा का अनुकरण कर रहा है इस सुन्दरी की यह अवस्था मेरा विस्मय वर्द्धन कर रही है।

माधवी--निश्चय काशिराजकन्या अम्बा की भाँति यह किसी पुरुष में बद्धरागा हो रही है।

चन्द्रावली--(संस्कृतभाषा में) श्रीकृष्णविरहिणियों में जो माधुर्य परिदृष्ट होता है वह तो इस तन्वंगी के अङ्गों में विस्तार रूप में देखा जा रहा है। हे प्रियसखि ! यदि यह पीड़ा प्राकृत होती तो दैन्यावस्था में भी इस प्रकार माधुरी प्रकट कर सकती। अत

आओ, इस की चित्तवृत्ति की परीक्षा करें।

(निकट में गमन कर) सखि ! सत्यभामे! तुम्हारे प्रति मेरा स्नेह संचार हो रहा है यह मैं शपथ खाकर कह रही हूँ।

राधा—(स्वगत) मिथ्या नहीं है क्यों कि मेरा चित्त भी ऐसा हो रहा है। (प्रकाश्य में) देवि ! मैं धन्य हुई।

चन्द्रावली—तुम को दुःखिता क्यों देख रही हूँ ?

राधा—देवि ! पिताजी ने यहाँ हठात् भेजी है, इस लिये मन अच्छा नहीं है —

चन्द्रावली—सखि अस्थिर मत होना, आर्य्यपुत्र के हाथ में तुम को समर्पित करूँगी।

राधा—(दैन्य के साथ) देवि ! यदि सत्य ही आप मुझे स्नेह करती हो तो पुनः इस प्रकार कभी मत कहना।

(ऐसा कह कर नम्रता [मिनति] के साथ नमस्कार करती)

चन्द्रावली—सखि ! कहो, यहाँ वास करने की क्यों इच्छा करती हो ?

राधा—देवि ! जहाँ पुरुष का नाम नहीं सुन पाऊँगी वहाँ रखिये कि जिस से मैं इस प्रकार अपने व्रत का समाधान कर सकूँगी।

चन्द्रावली—(आनन्द के साथ कान कान में) माधवि ! हमारा जो कर्तव्य था भाग्यवश यह ऐसी ही प्रार्थना कर रही है। अतः प्रसाद प्रदान के अनन्तर नवबृन्दा को यहाँ लाओ।

माधवी—(स्वगत) अच्छा परामर्श कर रही हो क्यों कि नवबृन्दावन में राजेन्द्र को प्रवेश सम्भावना नहीं है। अतः जिस से रहस्य प्रकाश न हो उस प्रकार भर्त्तृ दारिका को आज्ञा छल से शपथ करा कर नवबृन्दा को लाती हूँ। (ऐसा कह कर प्रस्थान)

राधा—(स्वगत) मेरे निकट यह देवी भगिनी–चन्द्रावली की भाँति प्रतीत हो रही है।

(नववृन्दा के साथ माधवी का प्रवेश)

माधवी—देवि! यह तो नववृन्दा आ रही है।

चन्द्रावली—नववृन्दे ! देखो यह मेरी सखी सत्यभामा है।

नववृन्दा—(देख कर सखेद आत्मगत) श्रीकृष्ण के निर्माल्य वस्त्र देकर देवी चन्द्रावली ने शपथ की थी अब पुनः राधिका को मेरे हाथ क्यों समर्पण कर रही है।

राधा—(स्वगत) यह क्या वह नववृन्दा ?

(ऐसा कह कर निकट में जाना)

नववृन्दा—(स्वगत) हा धिक्, क्या कष्ट है, मैं आज विना विचार से शपथ कर विनष्ट हो रही हूँ।

राधा—(अश्रुपूर्ण नयन से स्वगत) अहो क्या यह वह पीताम्बर है ? (ऐसा कह कर व्याकुलता पूर्वक देखने लगी)

नववृन्दा—(स्वगत) वहुत समय के बाद उज्वल सुवर्ण की भाँति इस पीतवस्त्र में दृष्टि निक्षेप कर श्रीराधा का गुरुतर विकार उपस्थित हो रहा है। अहो ! उस का विशेष यत्न के साथ सम्बरण करने में जाकर वह अनुपम बाधा को प्राप्त हो रही।

चन्द्रावली—(सशंक) नवबृन्दे ! सत्या इस पीतवस्त्र को देख कर क्यों विह्वल हो गयी है ? पूछ तो।

नवबृन्दा—हे कृशोदरि ! सुवर्णवर्ण इस बसन के प्रति दृष्टि-निक्षेप कर तुम्हारा शरीर क्यों प्रस्फुटित कदम्बपुष्प की भाँति पुलकावली धारण कर रहा है ? और क्यों तुम्हारे नयनों से छिन्न स्फटिकमाला के समान अश्रुविन्दु निर्गत हो रहे हैं ?

राधा—(भाव गोपन कर) नवबृन्दे ! तुम को अपनी भगिनी की भाँति देख रही हूँ, इसी लिये विह्वला हो गई हूँ।

नवबृन्दा—(स्वगत) देवी राधा के गोपन की गुरुतर चेष्टा एक बार निष्फल होगी। मणिराज कौस्तुभ की किरणमाला श्रीकृष्ण के बक्ष:स्थल के विना अन्य कहीं अवस्थान नहीं कर सकता है।

चन्द्रावली—(श्रीराधा का हस्त ग्रहण कर) नवबृन्दे ! यह मेरी भगिनी है। इस को तुम्हारे हाथ समर्पित कर रही हूँ।

नवबृन्दा—देवि ! अत्यन्त अनुगृहीता हुई।

चन्द्रावली—भगिनी सत्ये ! तुम अपने प्रार्थित वासन्ती चतुः-शाला में नवबृन्दा के साथ गमन करो, वहाँ मेरी पुष्पोपहारिणी बकुला तुम्हारी परिचर्या करेगी।

राधा--देवि ! मन्दभागिनी इस राधिका को कभी कभी स्मरण करना।

चन्द्रावली--सखि ! तुम क्या कह रही हो ?

राधा--(साशंक आत्मगत)

हा धिक्कार, वड़ा प्रमाद। (प्रकाश्य से) देवि ! "मैं आप की आराधिका" ऐसा कह रही हूँ।

नवबृन्दा--(राधा के साथ भ्रमण करती स्वगत) यह माधुर्य-पर्णा सुन्दरी शुद्ध अन्त:पुर में अवस्थान करने पर भी अनतिविलम्ब में श्रीकृष्ण की हस्तगत होगी। यदि अभिनव मधुगन्ध से पूर्ण नव कमलिनी विकसित होती है तो क्या भ्रमर को कोई सम्बाद देता है ? अर्थात भ्रमर स्वयं वहाँ आ जाता है। (ऐसा कह कर राधा के साथ प्रस्थान)

माधवी--भर्त्तृदारिके ! हम सब की उस में शंका ही क्या है। क्यों कि उस प्रतिज्ञा का स्मरण करा देना होगा।

चन्द्रावली--सखि! कौन कुलवती रमणी स्वामी की आसक्ति-शून्यता को जानकर काठिन्य रख सकती ?

(नेपथ्य में) तुम सब राजमार्ग की दोनों सीमा में कदलीवृक्षों को सज्जित कर रोपण करो, शीघ्र चबूतराओं को सुगन्धिजल से सींचित कर दो, देवियों के द्वारा पुष्पावलीवृष्टि से सुशोभित होकर मनुष्यों के धैर्य का हरण करते हुए वृष्णिचन्द्र श्रीकृष्ण विश्वजन की नेत्रपदवी में उदय हो रहे हैं।

माधवी--राजनन्दिनि ! भाग्यवश द्वारिकानाथ आगमन कर रहे हैं अतः वेशगृह में प्रवेश करो ॥२१॥

(ऐसा कह कर दोनों चली जाती हैं)

(तदनन्तर मधुमङ्गल के साथ अनुगम्यमान श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

कृष्ण--(खेद के साथ) अहो ! विद्युत्बर्णा जो सुन्दरी मेरे अंग में कुंकुमलेप की भाँति है, मेरे कण्ठतट में सुगन्धिविस्तारिणी चम्पकमाला समान है, और मेरे दोनों नेत्र मैं अंजन चूर्ण से विलिप्त सुशीतल स्वर्णशलाका रूप है, उस राधिका के बिना ये समस्त रात्रियाँ मेरा प्राणनाश कर रही हैं।

मधुमङ्गल--(श्रीकृष्ण के हाथ में मणि देख कर) प्रिय-सखा! राधिका का कण्ठहार यह श्रेष्ठ मणि किस प्रकार दिवाकर-ने प्राप्त की है ?

कृष्ण--(खेद के साथ) श्रीराधिका पहले गर्गमुनि के वाक्या-नुसार नित्यप्रति अत्यन्त नम्रभाव से सूर्यदेव को अर्घ्य प्रदान करती थी। ऐसा निश्चय वोध होता है कि उसने वह किरणावली से परि-वृत इस मणिवर का उपहार दिया है ।.२२॥

मधुमङ्गल--देखो, किरणावली के द्वारा वह किस प्रकार विलक्षणता को धारण कर रही है।

कृष्ण--सखा ! घनानन्द स्वरूप यह मणि है, कभी प्राकृत रत्न के साथ तुलना प्राप्त नहीं कर सकती है,(ऐसा कह कर स्यमन्तक

मणि को वक्षः में धारण कर अश्रुपूर्ण नयन से) यह मणि धन्य है, मैं निविड़ अन्धकार पूर्ण निकुञ्ज में हँसता हँसता मत्तता से जब राधा की कंचूलिका को आकर्षित करता था तब मेरे ऐकान्तिक अभिप्राय को जान कर स्तनवस्त्र में आच्छादित यह मणि अपनी किरण लहरी का प्रकाश कर उसे लज्जित करने लगती थी ॥२३॥

मधुमङ्गल—प्रियवयस्य ! मैं ने सुना, तुमने जाम्बवान से यह मणीन्द्र प्राप्त किया है ?

कृष्ण—ऐसा ही है।

मधुमङ्गल—कैसे प्राप्त किया ?

कृष्ण—सखा ! वह भल्लूकराज अपने गर्त्त में प्रतिकूलचेष्टा परायण मुझे देख कर रत्न अपहरण शंका से युद्ध में प्रवृत्त हुआ।

मधुमङ्गल—उस के बाद उस के बाद।

कृष्ण—तदनन्तर कुछ काल के बाद वह मेरे स्वरूप को अवगत होकर युद्ध से विराम प्राप्त कर आनन्द के साथ कहने लगा। हे प्रभो ! उस भयंकर समुद्र में सेतुबन्ध की कथा को क्या स्मरण कर रहे हैं ? क्या दशानन रावण के मस्तकों को ऊपर फेंक कर कन्दुक क्रीड़ा जो की गई उस का स्मरण कर रहे हैं ? उन लीलाओं का विस्मरण नहीं किये हुए हैं इस लिये रत्नहरण छल से इस प्राचीन किंकर का सुख विधान कर रहे हैं ॥२४॥

मधुमङ्गल—तदनन्तर तदनन्तर ?

कृष्ण—इस के बाद हमें स्वर्णमन्दिर में रत्नपलङ्क में बैठाकर वह भल्लूकचक्रवर्त्ती मणिश्रेष्ठ को लेने के लिये प्रकोष्ठान्तर में प्रवेश करने लगा। मुहूर्त्तकाल में वहाँ एक बृद्धा अन्तःपुर से आकर कहने लगी—पुत्र ! यदि जाम्बवान् बलपूर्वक उस मणि का आकर्षण करता है तो उस की कुमारी जाम्बवती का प्राण नहीं रहेगा। और यदि मणिग्रहण नहीं करता है तो इष्टदेव आपके साथ विच्छेद

होता है । अतः इस महान् संकट कर्दम में पतित जाम्बवान का आपसे भिन्न और कोई उद्धारक नहीं है ।

तदनन्तर मैं ने उस वृद्धा से कहा हे वृद्धे ! उस सुवर्णभार प्रसवकारी मणि के प्रति आसक्ति का कारण धनतृष्णा है । क्या वह जाम्बवती के लिये अधिक गौरव विषय था ?

धात्री—पुत्र ! नहीं नहीं । भल्लूकराज जब दिनकर के समान उज्वल इस मणि का स्वयं ग्रहण करने लगा तब वह कमलनयना जाम्बवती उस रत्न को क्षण काल न देख कर धैर्यहीन तथा विह्वला हो गई ॥२५॥

अभी भी वह वत्सा खेद करती लगातार एक घड़ी तक इस मणि को स्थूल स्तनों के ऊपर स्थापन करती, कभी वा मुहूर्त्तकाल लेकर नासिका के ऊपर रख कर बार बार सूंघती, कभी वह अश्रु-भरे दोनों नेत्र में रख कर निश्वास त्याग करती । इस प्रकार कम्पितांगी यह जाम्बवती बन्धु की भाँति इस स्यमन्तक मणि का आलिङ्गन करती ॥२६॥

मधुमङ्गल—उस के बाद, उस के बाद ।

कृष्ण—तदनन्तर कौतुक-मना होकर मैं ने उस से कहा, धात्रिके ! इस रत्न में उस की इस प्रकार अनुरक्ति क्यों ?

धात्री—पुत्र ! कौन जानने की चेष्टा कर सकता है ? क्यों कि—"इस रत्न मे तुम्हारी इतनी आसक्ति क्यों है ?" यह जिज्ञासा करने पर वह भ्रू भाग के साथ वक्षःस्थल में मुखचन्द्र को ढक कर दीर्घनिश्वास का त्याग कर अश्रुपरित्याग करती ॥२७॥

कृष्ण—तदनन्तर मैं ने पूछा, धात्रि ! वह किस प्रकार कहती हुई कालयापन कर रही है ?

धात्री—वह निर्मलाङ्गी अत्यन्तकान्तियुक्त 'राधा-माधव' नामक युगलमूर्ति का निर्माण कर उस के परस्पर के प्रति प्रणयगर्भ

आलाप, मिलन एवं कौतुक के द्वारा क्रीड़ा करती करती अश्रुपूर्ण नयनों से दिन यापन कर रही है ॥२८॥

अनन्तर धात्री का वचन सुन कर मेरा चित्त अत्यन्त गम्भीर विस्मय से आक्रान्त हो गया। मैंने मधुरभाव से उसे कहा—धात्रिके! वह प्रतिमा युगल किस प्रकार? उसे देखने के लिये मैं कौतूहलाक्रान्त हो रहा हूँ।

धात्री--पुत्र! जगन्मण्डल के सर्वश्रेष्ठ स्त्री पुरुष युगल वह प्रतिमा युगल है। उन में से तुम को दर्शन कर तुम्हारे समान आकार वाला हास्यबदन पुरुष प्रतिमा मेरे स्मरण पथ में उपस्थित हो रही है। और उस स्त्रि प्रतिमा को देखने पर जिस का मन में आरूढ होता है न जाने वह धन्या सुन्दरी किस पुण्यमय जनपद में अवस्थान करती है? ॥२९॥

मधुमङ्गल—उस के बाद उस के बाद ?

कृष्ण—उस के बाद वह धात्री कक्षान्तर में जाकर जाम्बवती के चित्त को उत्साहित कर कहने लगी—हे वत्से! तुम्हारे इस विग्रहयुगल में से जो श्यामवर्ण पुरुष है वह कौतूहलवश अन्य शरीर में जङ्गमभाव धारण कर पलङ्क में विराजमान है। अतः तुम उस अपूर्व मूर्त्ति का साक्षात् दशन करो।

(ऐसा सुन कर) धात्री के हाथ में राधिका की मणिविनिर्मित प्रतिमा को रख कर वह कुमारी उस समय वृक्षान्तराल में अपने शरीर गोपन कर मुझ को देख कर औत्सुक्य भाव से काँदने लगी एवं लज्जारहित होकर विवर्ण शरीर से विगलितांग हो कर आतंकभर से मेरे चरणप्रान्त में गिर गई ॥३०॥

(ऐसा कह कर विह्वल होने लगे)

मधुमङ्गल—(ससम्भ्रम से हाथ बढ़ा कर) प्रियवयस्य! मेरा हाथ धारण करो।

कृष्ण—(ऐसा कर गद्‌गद स्वर से) हठात् उस वृक्ष के अन्तराल में अवस्थित जाम्बवती को ललिता जान कर, स्वभाव से मधुर राधा की आकृति का दर्शन कर, और मणि को शङ्खचूड़ के शिरोभूषण रूप में परिचित कर अति सम्भ्रम के साथ मैं बार बार घूर्णायमान हो गया हूँ ॥३१॥

मधुमङ्गल—आश्चर्य आश्चर्य ! प्रियवयस्य ! यह तो काञ्चि प्रार्थी के प्रति शिखरिणी लाभ हुआ है।

(ऐसा कह कर उच्च स्वर से)

भो ! इस महान् सुख के उदय से मेरा हृदय-पद्म अत्यन्त आनन्द से खिल उठा है , अतः मुझ ग्रहण करो।

कृष्ण—सखा ! कुछ समय धैर्य धारण कर सुनो।

मधुमङ्गल—(धैर्यधारण कर) उस के बाद, उस के बाद ?

कृष्ण—शान्ति हेतुभूत कोमलालाप माधुरी के द्वारा सान्त्वना प्राप्त कर भी वह सुकण्ठी मुक्तकण्ठ से क्रन्दन करती हुई कहने लगी–

कब मैं पुनः कालिन्दी जात कमल गन्ध से सुरभित कुञ्जांगण में वसन्तकालीन नव परिमल विस्तार कारि केश-कलाप वाले तुम्हारी गोद में निद्रासुख निमीलित-नयना श्रीराधिका को नवीन पत्रावली के द्वारा व्यजन कर सेवा करूँगी ? ॥३२॥

तदनन्तर प्रबल उत्कण्ठाकुल हो कर मैं बहुकाल तक हृदय-व्यथा का प्रकाश करता कहने लगा—हाय ललिते ! मेरे निकट में मिथ्यानिद्रा में निमिलित नेत्र होने पर वह अभी मुहूर्त्तकाल मेरे वदन बिम्ब का चुम्बन करती है, हे सखि ! ऐसा कह कर तुम्हारे समक्ष लज्जित करने पर उस के मधुर भ्रूकुटी युक्त वदन प्रकाशमान होता था मैं उसका स्मरण कर रहा हूँ ॥३३॥

मधुमङ्गल—उस के बाद, उस के बाद ?

कृष्ण—तदनन्तर समस्त बृत्तान्त अवगत कर जाम्बवान् आनन्दित होकर वहाँ आकर कहने लगा। सुग्रीव के साथ मेरा प्रणय है अतः कमलबन्धु सूर्यदेव हमारे प्रति बार बार कृपा करते हैं। इस लिये उन के आदेश से पर्वत शिखर से गिरने के समय इस कन्या को मैं ने धारण किया है ॥३४॥

अनन्तर स्वर्णालङ्कार भूषित जाम्बवती को उस भल्लूक शिरोमणि ने इस रत्नश्रेष्ठ स्यमन्तक के सहित मेरे हाथ में समर्पित किया है। मैंने भी विदर्भराज के निकट जो प्रतिश्रुति है उस का पालन मर्यादा भंग भय से इस सुन्दरी को रैवत पर्वत की कन्दरा में रखा है। अतः इस गोपनीय कथारत्न को अपने चित्तकोष में यत्न से रक्षा करना। जिस प्रकार कि कोई बादनुबाद का कारण उपस्थित न हों।

मधुमङ्गल—ऐसा ही होगा कि कोई नहीं जान सकेगा।

कृष्ण—(व्याकुलता के साथ) समस्त सुहृद्‌गण के अभिलषणीय कार्य में विलम्बितचित्त के कारण राधा विरहाग्नि की शिखा शीतल हो कर मृदु हो गई थी, वह अग्नि अब ललिता के गाढ़ स्नेह-प्रसङ्ग से घनीभूत होकर बलात् पुनः प्रज्वलित हो उठी है ॥३ ॥

(ऐसा कर विरहव्यथा प्रकाश कर कहने लगे)

हे सखा! ललाट में कुंकुम के द्वारा कपाल पर अग्निमय नेत्र की रचना कर दो, सर्पकान्ति वाली मुक्तामाला के द्वारा हमारे वक्षः को विभूषित करो, और कण्ठ को छोड़ कर सर्वांग कर्पूर के द्वारा धवल बना दो। तब तो कामदेव महादेवजी के भय से मुझे यन्त्रणा नहीं देगा ॥३६॥

मधुमङ्गल—सत्य है यह सन्ताप गुरुतर है, इस का प्रतीकार नहीं स्थिर कर पा रहा हूँ॥

कृष्ण—सखा! प्रियतमा की विरह-कथा के साक्षि रूप बृन्दा-

वन की कुञ्जाबलियों का दर्शन के विना अन्य कोई श्रेष्ठ प्रतीकार नहीं है। अतः तुम इस मणीन्द्र को सत्राजित् के लिये प्रदान करो, मैं भी अन्तःपुर के लिये जा रहा हूँ॥ (दोनों का प्रस्थान)

(सब का प्रस्थान) ॥३७॥

यहाँ ललितमाधवनाटक के ललितोपलब्धि
नामक षष्ठ अङ्क समाप्त हुआ॥

सप्तमोऽङ्क

(तदनन्तर वकुला के द्वारा आराध्यमाना राधा प्रवेश करती है)

राधा—(संस्कृत से) श्रीकृष्ण के गात्र-गन्ध के द्वारा जो दिशा सुवासित है वह दिशा मेरे लिये अति दूरवर्त्ती है। उन के खेद से अति अल्प परिमित काल मेरे निकट महाकल्प की भाँति प्रतीयमान हो रहा है। प्राण रूप अग्नि आशा रूप घृतपात्र में रह कर मुझ को बलपूर्वक दहन कर रही है। हाय मैं क्या करूँ? और किस की शरण लूँ! ॥१॥

वकुला—सखि सत्ये! नवबृन्दा ने स्नेहवश तुम्हारा रहस्य वर्णन किया है तो भी कुछ निवेदन करूँगी।

राधा—इच्छा पूर्वक निवेदन करो।

वकुला—हम सब के राजेन्द्र सुन्दर शिरोमणि हैं, वे त्रिलोक का शासन करते हैं। यदि आज्ञा करती है तो देवी रुक्मिणी की प्रतिकूला हो कर उन के निकट तुम्हारे वृत्तान्त का निवेदन करूँ।

राधा—द्वारकानाथ सौन्दर्य में विभूषित होकर त्रिलोक का शासन करें उस से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। क्यों शापाग्नि को

प्रज्वलित कर रहो हो, शान्त हो, तुम सब प्रकाश्य रूप से कोटि कोटि युक्ति पूर्ण बचन के द्वारा बलात् ब्रजराजनन्दन के पाद पद्म से मुझे आकर्षण नहीं कर सकोगो ॥२॥

वकुला—सखि ! क्या हित है नवबृन्दा से पूछो।

राधा—नवबृन्दा कहाँ गई ?

वकुला—देवी रुक्मिणी के आह्वान से वह अन्तःपुर के लिये गई।

राधा—हाय ! हतदेव के द्वारा मैं पराधीन हो गई।

(नववृन्दा का प्रवेश)

नववृन्दा—सखि सत्ये ! विषाद मत करो देखो देखो यह माधवी ने पद में गिर कर बदरी (वेर) का अवलम्बन कर के भी कान्त (मनोहर) रसाल तरु का पश्चात् लाभ किया है। साध्वी प्राणेश्वर के सङ्गम विषय में एकाग्रचित्तो होकर भी पराधीनता रूपी दुःख का अनुभव नही कर पाती है ॥३॥

राधा—तुम्हारे हाथ में यह नेपथ्य सामग्री क्या है ?

नववृन्दा—शचिदेवी ने रुक्मिणी के लिये जो माल्य-वस्त्रादि उपहार दिया है उन्होंने उन का विभाजन कर सखियों को प्रदान किया, यथाभाग आप के लिये भी भेजा।

राधा—दुःखाग्नि में ईन्धन स्वरूप इस प्रसाधन का क्या प्रयोजन है।

नववृन्दा—सखि ! यह सूर्यपूजा के लिये उपयुक्त होगा।

राधा—सखि ! सूर्यदेव ने कहा है कि— वत्से ! समुद्रप्रान्त में अवस्थित द्वारकापुरो के भोतर निर्मित नव-वृन्दावन में प्रवेश कर तुम अपने प्राणनाथ के साथ विहार करो।

नववृन्दा—देवताश्रेष्ठों के वचन कभी खाली नहीं होते हैं।

राधा—(संस्कृत में) सखि ! श्रीकृष्ण मथुरापुरी में विराज-

मान हैं और मैं द्वारकापुरी में अवरुद्ध हो कर निवास कर रही हूँ। इसी लिये प्रियतम का सङ्ग मेरे लिये असम्भव बोध हो रहा है ॥५॥

नवबृन्दा—सखि ! विलाप मत करो, समय क्रम की गतियाँ दुरूह होती हैं। शरत् ऋतु के प्रारम्भ में ही अकस्मात् खञ्जन पक्षि-गण सरोवर तट में क्रीड़ा करते हैं ॥५॥

राधा—अप्रणिधान में खञ्जन क्रीड़ा नहीं करता है, उस प्रकार अस्वाधीन प्रदेश में महापुरुष रमण नहीं करते हैं।

नवबृन्दा—(हँसकर) अरि भ्रान्ते ! यहाँ ब्रजेन्द्र की अस्वा-धीनता को किस प्रकार तुम ने स्थिर किया ?

राधा—अरि राजेन्द्र के क्रीड़ावन की वन्दरि ! चुप रहो।

नवबृन्दा—सरले ! ब्रजेन्द्र को ही राजेन्द्र जानना।

राधा—क्या यह सत्य है ?

नवबृन्दा—(स्वगत) हाय ! यथेच्छा क्रम से हठात् प्रतिज्ञा भूल गई (प्रकाश्य में) केवल राजेन्द्र ऐसा नहीं उन ब्रजेन्द्र को रामचन्द्र और उपेन्द्र भी कहते हैं।

वकुला—सखि ! इसी लिये कहती हूँ कि—अन्य निबन्ध का त्याग कर राजेन्द्र को आनन्दित करो।

राधा—(संस्कृत में) सखि ! जिन के केश कलाप में मयूर-पुच्छ निर्मित मुकुट शोभा पा रहा है, जिन के कण्ठ में स्थूल गुञ्जा-वली से विरचित हार दोलायमान है और जिन के वदन में वेणु विराजमान है श्रीहरि के उस प्रकार के रूप विना मेरा चित्त विश्वोत्तर किसी अन्य रूप का अङ्गीकार नहीं करेगा ।६॥

वकुला—तुम अति सरलबुद्धिवाली हो क्यों कि उन कठोर में तुम फिर अनुरक्ता हो रही हो।

राधा—(सम्भ्रम के साथ संस्कृत में) मुग्धे ! ऐसा मत कहो। स्वच्छन्द वे श्यामसुन्दर सीमाप्राप्त औदासिन्य के द्वारा परिपूर्ण हृदय

होकर इच्छा के साथ सहस्र वत्सर ले कर यदि काठिन्य अवलम्बन करते हैं तो भी हे सखि ! हमारा चित्त प्रिय (वस्तु) से भी प्रियतम श्रीकृष्ण को जन्म जन्म क्षणकाल के लिये भी भूल कर प्रणयदास्य का परित्याग नहीं करेगा ॥७॥

नवबृन्दा—वकुले ! यह बड़ी पतिव्रता है, अतः क्षान्त हो।

राधा—(संस्कृत में) हे सहचरि ! दीर्घकाल तक पहले जिनकी सेवा की थी यह वह लताश्रेणी है। सम्मुख में यह पूर्वपरिचित कुञ्जसमूह वर्त्तमान है । यह वह यमुना की तट भूमि है जहाँ पुनः पुनः भ्रमण किया है। परन्तु हाय ! गोकुलपति के विना यह समस्त अतिशय बाधा दे रहा है ॥८॥

नवबृन्दा—वकुले ! इस के तीव्र विरहतापों को देखो । अतः आज कालिन्दी कूल स्थित कदम्बबृक्ष मूल में नव नलिनीदलों से शय्या रचना करो।

वकुला—प्रियसखी जो कहती है ऐसा ही करूँगी।

(ऐसा कह कर प्रस्थान)

राधा—(संस्कृत से)

ब्रजवासियों की एव निज प्राण से प्रियतमा उन समस्त सखियों की प्राण उच्छेदकारी वियोग जात व्यथा को मैं ने सहन किया । हाय ! सूर्यवचन के प्रति विश्वास रखने में आग्रहकारिणी मुझको अब दुराशावली कितना ही क्लेश सहन करा रही है ।

(ऐसा कह कर प्रस्थान) ॥९॥

नवबृन्दा—तुम्हारी प्रियसखी विशाखा कहाँ है ?

राधा—सम्प्रति वह मङ्गलमयी विशाखा पिता को कह कर पृथ्वि में आई है। अब केवल ललिता ही मुझे दुःख दे रही है ।

(ऐसा कह कर रोने लगी)

नवबृन्दा—ललिता की दशा का सम्बाद तुम ने कहाँ से सुना ।

राधा—स्वर्गारोहण के समय खेचरगण से।

नवबृन्दा—क्या तुम ने आज निशीथ में स्वप्नयोग में ललिता को सम्बोधन कर कुछ कहा था?

राधा—कैसा?

नवबृन्दा—"हे ललिते! शफल्क-तनय अक्रूर की हृदयस्थ आशा लता फलवती हुई है। हा धिक्कार! देख मुरारी रथारोहण को अङ्गीकार कर रहे हैं" इस प्रकार हे सुन्दरि! स्वप्नावस्था में उच्चारित तुम्हारे इस करुण विलाप का श्रवण कर मानो यामिनी तुषार पतन छल से क्रन्दन करने लगी ॥१०॥

राधा—(व्यथा के साथ संस्कृत में) सखि! बहुकाल के बाद विविध यत्न से आज स्वप्न में गोविन्द नयन-दोनों की आँगण भूमि में उपस्थित हुए। परन्तु हाय! उस समय क्यों वह निष्ठुर राज-पुरुष रथ ले कर शीघ्र उपस्थित हुआ? ॥११॥

(वकुला का प्रवेश)

वकुला—सखि! शय्या की रचना की है अतः उठो।

(ऐसा कह कर तीनों का भ्रमण)

नवबृन्दा—(सम्भ्रम के साथ)

हे प्रियसखि! किसी प्रकार से तुम इधर मत जाओ, निवृत्त हो, तुम्हारे सम्मुख अशोक बृक्ष वर्त्तमान है। यदि तुम्हारे चरण-स्पर्श से वह हठात् कुसुमित हो जाता है तब तो हताश भ्रमरों की कलकलध्वनि तुम्हारे लिये ब्रज के समान हो उठेगी ॥१२॥

राधा—(निवृत्त हो कर लज्जा के साथ संस्कृत में)

सखि! यदि कष्टदायिनी आशामयी यह शृङ्खला विरोधिनी न होती तो कंसारि के दर्शन मङ्गल से वञ्चित इस अधन्य हतभाग्य-मय जीवन में प्रेम धारणकारिणी मैं जीवित नहीं रहती अर्थात् निश्चय सुख पूर्वक प्राणत्याग कर लेती ॥१३॥

वकुला—यह तो सम्मुख में शय्या है।

राधा—(शय्या में शयन कर स्वगत) इस बृन्दावन में जीवन धारण दुःसाध्य है। अतः क्या उपाय करूँ। (प्रकाश्य में) नव-बृन्दे ! नित्यकर्म के बिना दुःख पा रही हूँ।

नवबृन्दा—वह नित्यकर्म कैसा है ?

राधा—(संस्कृत में) मुग्धे ! जिस का वदन वेणुक्रीड़ा में सुशोभित है, जिस का चञ्चल नयन अपाङ्ग-भङ्गिमा से वक्र है, जिस के मस्तक में मयूरपुच्छ की चूड़ा है, जिस का शरीर त्रिभङ्ग है और जो कैशोरवयस में अवस्थित है उस जलधर की भाँति श्यामकान्ति देवता की हम सबने देवर्षि नारदजी के उपदेशानुसार पित्रालय में आराधना की है ॥१४॥

नवबृन्दा—(स्वगत) मैं ने जान लिया कि इस को कृष्णा-कृतिदर्शन में व्यग्रता है। अतः आज बृन्दावन भूषित के लिये महेन्द्रशिल्पी विश्वकर्म्मा ने जो इन्द्रनीलमणिमयी श्रीकृष्णमूर्त्ति का निर्माण किया है उस को इस का प्रत्यक्ष कराती हूँ। (प्रकाश्य से) सखि ! तुम्हारे इष्टदेव का आविर्भाव कराने के लिये मैं जा रही हूँ। (ऐसा कह कर चली जाती है)

राधा—(सम्मुख मैं देख कर संस्कृत में)

पिञ्छचूड़ श्रीकृष्णने रात्रिकाल रास से अन्तर्धान हो कर जिस के पुष्पों से मेरे केश में चूड़ा रचना की थी वह नवकर्णिकार पुष्प यमुना कूल में अंकुरित होकर बार बार मुझ को दग्ध कर रहा है ॥१५॥

(नवबृन्दा का प्रवेश)

नवबृन्दा—सखि ! शीघ्र आ कर देवता को देखो।

राधा—नवबृन्दे ! कुछ सेवोपयोगी उपहार का संग्रह करो।

नववृन्दा--वकुले ! देवी-प्रदत्त दिव्यमाल्य और वस्त्र को वासन्तीगृह से लाओ।

वकुला--(चली जाती है)

नववृन्दा--(सस्मित) सखि राधे ! जो सब पुष्पावलि, गन्ध, धूप, उपहार प्रभृतियों से दामोदर की सेवा करते हैं और स्तवन कर उत्कृष्ट भाव में प्रणाम करते हैं वे सब अन्य प्रकार सेवक जन हैं। परन्तु हे कोकिलकण्ठि ! तुम्हारी भाँति गोकुलसुन्दरियों के पक्ष में श्रीकृष्ण में वक्रदृष्टि कला-कौशलमयी आलिंगनरूपिणी सेवा प्रशस्ता है। (ऐसा कह कर भ्रमण पूर्वक)

देखो ! तुम्हारे अभीष्ट देव समुत्कण्ठित होकर तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हो रहे हैं ॥१६।

राधा--(विदूर से देख कर उत्कण्ठा के साथ संस्कृत में)

हे सहचरि ! मैंने इस शरीर धारण में वार वार प्रचुर गुरुतर क्लेश का अनुभव किया है, अब वह क्लेश समूह सफल हो रहा है। अहो ! गोपाकुल-कुमुदिनी गण के बन्धु श्रीकृष्णचन्द्र की श्याम से भी श्याम कान्तियाँ हमारे सम्मुख स्फुरित होने लगी है ॥१७॥

(ऐसा कह कर भ्रमण करती वेदी के निकट जाकर गद्‌गद स्वर से) हे चन्द्रमुखि ! हाय ! जिस की दर्शनआशा से यह दग्ध शरीर धारण कर मर्म विदारण पटु पीडा रूप अति वृष्टि को मैं ने सहन किया है, यमुनातट वर्त्ती कुञ्जकुटी गर्भ में क्रीडाभिसारशील उस प्राण बन्धु को पुनः प्राप्त किया ॥१८॥

(ऐसा कह कर प्रेमावेश से साक्षात् कृष्ण की भाँति श्रीमूर्त्ति के प्रति सम्भाषण करती हुई)

पहले तुमने प्रेमवश इस प्रकार कोमलता का प्रकाश किया है जिस से तुम्हारी चेष्टाओं को देख कर तुम मेरे ही हो ऐसा मैं ने जान लिया था। परन्तु हाय ! अब तुम्हारा काठिन्य चेष्टाओं को

देख कर मेरा यह अभिमान असम्भव हो गया ॥१६॥

नवबृन्दा—(स्वगत) हाय ! अनुराग सागर की कैसी उच्च तरङ्गावली है।

राधा—(जनान्तिक के प्रति संस्कृत में) सखि ! यह धूर्त्त-शिरोमणि परिहास कलागर्भ स्निग्ध मधुर वचन नहीं बोल रहा है और आलिंगन के लिये व्यग्र होकर बाहुद्वय का विस्तार नहीं कर रहा है परन्तु केवल लीलाभङ्गिमा युक्त मनोहर उल्लास-कारी मृदुहास्यलेश के साथ कुटिलदृष्टि से मुझे सादर देख रहा है ॥२०॥

नवबृन्दा—सखि ! धूर्त्त नागरशिरोमणि को यह निगूढ़ परि-हास चातुरी होती है। अतः तुम उस को कुटिल कटाक्ष के द्वारा सम्यक्तया तर्जन कर वक्रोक्ति के द्वारा तिरस्कार करो।

राधा—(वक्रभाव से निरीक्षण कर) ऐसा मन में हो रहा है कि—बज्रसुहृद कौस्तुभमणि के बहुकाल संसर्ग से कोमलता प्रति-पन्थी कठोरता तुम्हारे हृदय में संक्रान्त हो रही है। नहीं तो तुम इस प्रकार कष्टसमूह में निपतित इस व्यक्ति पर समर्थ होकर भी क्यों इस प्रकार वञ्चना कर रहे हो। (ऐसा कह कर कान कान में) सखि ! अन्याय है, अन्याय है, क्यों कि वनमाली नीलोत्पल की भाँति कोमल होकर भी इस कठिन वंशि का चुम्बन कर रहे हैं, अतः इस वंशिका का श्रीकृष्ण के निकट से आकर्षण कर लूँ ॥२१॥

नवबृन्दा—(स्वगत) वंशिका-कर्षण निश्चय कल्याणमय नहीं होगा। अतः इस को छल से अन्य उपदेश प्रदान करूँगी।

(प्रकाश्य में परिहास पूर्वक मृदु हँस कर)

हे मुग्धे ! जिस को नील प्रस्तरमय बोलना उचित था तुम तो उस में नीलोत्पल की कोमलता अर्पण कर रही हो। हे पद्मानने ! यदि मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो इस के सुविस्तृत वक्षः देश में अपने स्तन घर्षण करो ॥२२॥

राधा—(वक्ष: में हस्तार्पण कर व्यथा के साथ) अहो यह तो सत्य ही नीलमणि की प्रतिमा है। (विचार कर) मुझे धिक्कार, गाढ़ उत्कण्ठा वश समस्त भूल कर प्रतिमा को साक्षात् माधव मान रही हूँ ॥

(वकुला का प्रवेश)

वकुला—लो, इस माल्य, वस्त्र एवं चन्दनादि विलेपन को ग्रहण करो।

राधा—(ग्रहण कर प्रतिमा को भूषित करने की इच्छा से)

नवबृन्दा—सखि ! तुम समय पर प्रणयिजन के निकट गमन कर मधुर शोभा को अत्यन्त धारण कर रही हो। कोकिल के संग बिना वसन्त शोभा सम्पूर्ण रूप से नहीं प्रकाश पाती है ॥२३॥

(माधवी का प्रवेश)

माधवी—राजकन्या ने मुझे सत्यभामा का सम्बाद जानने के लिये भेजा है। अत: सम्मुख में प्रस्फुरित इस नवबृन्दाबन में प्रवेश करूँ। (ऐसा कह कर भ्रमण करने लगीं) हाय ! निश्चय भर्त्ता ने बृन्दावन में प्रवेश किया है। क्यों कि यह शङ्ख-चक्रादि से अङ्कित पद चिन्ह दीख रहा है। अत: प्रस्तुत विषय का समापन कर भर्तृ-दारिका को लाती हूँ ॥

राधा—(अश्रु एवं कम्प के साथ श्रीकृष्ण मूर्त्ति को अलंकृत करती है)

माधवी—यह तो पड़ी हुई नीलोत्पलमाला देख रही हूँ।
(हाथ में माला लेकर उच्चस्वर से) सखि वकुले ! तुम कहाँ हो ?

नवबृन्दा—(सम्भ्रम के साथ) सत्ये ! यह तो माधवी निकट में आ रही है। अत: यहाँ से शीघ्र चले जाना उचित है।

राधा—मेरी दर्शनतृष्णा पूर्त्ति नहीं हुई है। अतः शीघ्र ही यहाँ फिर कर आऊँगी।

(तीनों जन परिक्रमण करने लगी)

माधवी—(देख कर) यह क्या, यहाँ ही सत्या है।

(निकट में जाकर) सखि ! माधवी पुष्प आहरण के लिये आई हूँ।

राधा—(सौरभ आघ्राण कर स्वगत) अकस्मात् कहाँ से यह सौरभ आकर मेरे चित्त को विमोहित कर रहा है ?

(ऐसा कर माधवी के हाथ मैं माल्य देख कर संस्कृत से नव-बृन्दा के कान कान में)

इस नीलोत्पल-विरचित माल्य से गोपाङ्गना-कुल के बन्धु श्रीकृष्ण की सर्वविजयी गन्ध विस्तृत हो रही है। नहीं तो मेरे वाहर वा भीतर उग्र क्षोभ अन्य गन्ध से किस प्रकार हो सकता है ॥२४॥

माधवी—(विस्मृत होकर संस्कृतभाषा में) सखि ! नीलोत्पलमाला की सुगन्धी का आघ्राण कर तुम्हारा अङ्ग क्यों कम्प सम्पत्ति को प्राप्त कर रहा है ? और तुम्हारा अङ्ग क्षीणता का परित्याग कर प्रफुल्ल होकर रोमाञ्चों से परिपूर्ण हो रहा है ? ॥२५॥

राधा—(स्वगत) इस विषय का सम्बरण करना उचित है। (प्रकाश में) माधवि ! इन्दीवरमाला को देख कर कालीदह में सर्पावलि का स्मरण कर भीत हो रही हूँ।

नवबृन्दा—(स्वगत) उपयुक्त मीमांसा की गई है।

राधा—(स्वगत) निश्चय यह उस प्रतिमा की निर्माल्यमाला है।

माधवी—सखि सत्ये ! माधवी-मण्डप में जाकर पुष्पचयन करूँगी।

सव—प्रियसखि ! इधर इधर।

(ऐसा कह कर सव का प्रस्थान)

(तदनन्तर मधुमङ्गल के साथ श्रीकृष्ण का प्रवेश)

कृष्ण—(उद्वेग के साथ) क्षणकाल में बनमाला चूर्णित होकर गिर जाती है, चन्दनलेप शुष्क होकर धूलिराशि की भाँति गिरता जा रहा है, और सूर्यकान्त के समान यह रुचिर कौस्तुभ-मणि अपनी प्रसरणशील किरणावली के द्वारा अङ्गसन्ताप बढ़ा रही है ॥ २६॥

(ऐसा कह कर वांए ओर देख कर)

प्रियवयस्य ! कितनी दूर वह बृन्दाटवी है ?

मधुमङ्गल—(संस्कृत में)

राधापक्ष में व्याख्या—जिस की कान्ति प्रस्फुटित चमत्कावली की भाँति आनन्ददायिनी है, जो मदमत्त कोकिलश्रेणी की भाँति मधुर स्वर से आलाप करने बाली है, जो राजहंस की भाँति गात-शालिनी है वह राधिका। (इस प्रकार अर्द्धोक्ति कह कर)

कृष्ण—(सम्भ्रमित हो कर औत्सुक्य के साथ) सखे ! वह कहाँ है वह कहाँ है ?

मधुमङ्गल—(अंगुलि के द्वारा दिखा कर) सम्मुख में तुम्हारी वह प्रिया--.........

कृष्ण--(व्यग्रभाव से) वयस्य ! मैं नहीं देख रहा हूँ, अतः शीघ्र दिखाओ, वह राधिका कहाँ है ?

मधुमङ्गल--हे मुकुन्द ! बृन्दाटवी है।

बृन्दावन पक्ष में व्याख्या--

प्रस्फुटित चम्पक-पुष्पों की कान्ति से सुशोभिता, मदमत्त-कोकिलावली के कलस्वर-आलाप से परिपूर्णा, मरालगण की गति के द्वारा शोभमाना, कृष्णसार-मृगों से परिपूर्णा तुम्हारी

वल्लभा (प्रिया) वृन्दाटवी सम्मुख में परिस्फुरित है ॥

यहाँ चतुर्थलाइन में—राधा पक्ष में "कृष्ण ! सा राधिका" है। बृन्दावन पक्ष में "कृष्णसाराधिका" है ॥

कृष्ण—(विचार कर दीर्घ निश्वास त्याग कर) क्यों नामधेय वर्णों का श्रवण कर मैं सर्वानुसन्धान में भ्रान्त हो रहा हूँ ।

(ऐसा कह कर परिक्रमण कर)

गौराङ्गी राधिका जिस मल्लिका की सौरभविस्तारिणी पुष्पावली के द्वारा बार बार मेरी सर्वाङ्गीन वेशरचना करती थी आज वह मल्लिका समक्ष कामदेव के भल्ला नामक अस्त्र में परिणत होकर तथा गुञ्जन निरत भ्रमर मल्लों से परिणत होकर मुझे प्रहार कर रही है ॥२७॥

(परिक्रमण कर) यमुना-तट के समीप लताओं से परिवेष्टित निरन्तर विराजमान इन वृक्षों के नवनव कोमल किशलय समूह के द्वारा श्रीराधिका ने कर्णमूल में ताटंक शोभा अनुकरण चातुर्य लाभ किया था ॥२८॥

मधुमङ्गल—(विस्मय के साथ) वयस्य ! अब वसन्त का यौवन समय है, परन्तु उस प्रकार शोभा-लक्षण नहीं प्रतीयमान हो रहा है ।

कृष्ण—सखा ! सत्य कह रहे हो। देखा जाता है कि—कोकिल कुल और भ्रमर कुल मौनव्रत का अवलम्बन कर रहा है । आम्र समूह में अकुरावली ईषत् उद्भूत हो कर जड़भाव प्राप्त हो रही है। अशोक वृक्ष समूह में मञ्जरी अर्द्धोद्‌गता हो कर स्थिर भाव में ठहरी हुई है। हाय ! ऐसा ज्ञात होता है कि मानो यमुना तट सीमा में वसन्त लक्ष्मी निद्रिता होकर अवस्थान कर रही है ॥२८॥

मधुमङ्गल—वयस्य ! देखो, मनोहर नलिनीदल से विरचित यह किसी विरहिणी की शय्या है ।

कृष्ण—बोध होता है इस विरहिणी की प्राणरक्षा के लिये वसन्त लक्ष्मी स्तब्ध हो कर ठहर गई है ।

(देख कर आतङ्क से) इस शय्या को वेदी निविड़ कमलों से भूषित होने पर भी मध्यभाग में शून्य, एवं निकटस्थ सूर्यनन्दिनी यमुना की तनु लहरियों से आर्द्रीभूता है । यह शय्या अङ्गज्वाला परिचय मिलन प्रयास व्यक्त करती मर्म्मव्यथा प्रकाश की सूचिका रूप में परिणत होकर मेरी बुद्धि में मालिन्यता प्रदान कर उस को कम्पित करती है ॥२६॥

मधुमङ्गल—सम्मुख स्थित इस निकुञ्जशालिका की प्रशंसा करो।

कृष्ण—(आगे चल कर ग्रीवा उठा कर देखते हुए आश्चर्य के साथ) अहो यह तो वन्यवेश धारिणी मनोहारिणी मेरी अङ्ग-प्रतिमा है। (ऐसा कह कर निकट में जाकर) निश्चय यह प्रतिमा शिल्पाचार्य के कलाकौशल-उत्कर्ष के द्वारा निर्मित हुई है ॥

मधुमङ्गल—(कौतुक के साथ) आश्चर्य ! यह मेरे प्रियवयस्य को बहुकाल के बाद प्राप्त हो रहा हूँ । तुम तो राजचक्रवर्त्ती हो, मुझ जैसा ब्राह्मण-बालक के योग्य नहीं हो। (ऐसा कह कर विशेष रूप से देख कर) प्रियवयस्य ! देखो किसी एक अनुरागिणी के द्वारा यह प्रतिमा सेवित हुई है ।

कृष्ण— सखा ! ठीक देखा है, यह माला व्यस्तभाव से अर्पण की गई है जो कि उस की विवशता को विशेष रूप से प्रकट करती है। यह चन्दनलेप स्थान स्थान पर पुंछ गया है जो कि अश्रुपात को व्यक्त करता है। यह तिलक कुञ्चित हो रहा है जो कि हस्त-कम्प को प्रकाशित कर रहा है । इस प्रकार सेवा के द्वारा उस कृशाङ्गी का प्रेमोदय विस्तार हो रहा है ॥३०॥

(नेपथ्य में) प्रिय-सखि ! इधर इधर ।

कृष्ण—सखे! निश्चय इस मूर्त्ति की उपासिका तरुणियाँ आ रही हैं, अतः मेरी इस प्रतिमा को अन्य कुञ्ज में रख लो, मैं इस प्रतिमा के वेश माधुर्य्य को धारण कर इस वेदी में अधिष्ठान कर विम्बोष्ठियों की भावनिष्ठा को निश्चिन्त रूप से देखूँगा।

(दोनों ऐसा ही करने लगे)

(तदनन्तर दोनों सखियों के साथ राधिका का प्रवेश)

राधा—(सम्मुख में देख कर रोमाञ्च के साथ) प्रतिमा के माधुर्य्य का आश्चर्य्य उत्कर्ष है। जो सचमुच माधवदर्शन की चमत्कारिता को उत्पादन कर रहा है।

वकुला—(जनान्तिक में) नवबृन्दे! प्रतिमा के सौन्दर्य्य को देखो।

नवबृन्दा—(मृदुहास्य के साथ) मुग्धे! निश्चय सत्यभामा का प्रेमोन्माद तुम में संक्रमित हो रहा है। क्यों कि तुम हरि को प्रतिमा रूप में विश्वास कर रही हो।

कृष्ण—(विस्मय एवं आनन्द के साथ) यह चित्ताकर्षिणी कल्पलतिका कौन है? (ऐसा कह कर औत्सुक्य के साथ) जिस की मुख-कमल की कान्ति हृदय-स्थित गुरुतर वेदना का प्रकाश करती है, जिस के नील-कुन्तल दोनों नयन के प्रान्त भाग में नृत्य कर रहे हैं, वह सुन्दर दन्तवाली आज मेरे दृष्टिपथ में उपस्थित हुई॥३१॥

(पुनः लक्ष्य कर के चमत्कार के साथ) हाय हाय! यह तो मेरी प्राणवल्लभा राधिका है!

(ऐसा कह कर अश्रुधारा निवारण कर विचार के साथ)

निश्चय मनोहर बृन्दावन में सुरशिल्पि ने विचार कर मेरे सुख के लिये यह मायामयी राधिका-मूर्त्ति की कल्पना की है। नहीं तो

कुशस्थली नगर नीतियों से दुर्गम मेरे इस अन्तःपुर में किस प्रकार राधिका की स्थिति हो सकती है ? ॥३२॥

राधा—(श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र का दर्शन कर) हाय ! हाय ! अत्यन्त उत्कण्ठा वश यह मेरी मूर्खता हुई कि प्रतिमा को गोविन्द ज्ञान कर रही हूँ ॥

(ऐसा कह कर अश्रुनेत्र से अञ्जलि जोड़ कर)

अये प्रतिविम्ब ! तुम्हारे निज विम्ब पद्मलोचन का मङ्गल तो ?

कृष्ण—(उल्लास के साथ) अयि माया-यन्त्रमयि राधिके ! सत्य ही अब श्रीकृष्ण मङ्गल में है । क्यों कि तुम सब प्रकार उस परलोकवासिनी राधिका का अनुकरण कर श्रीकृष्ण का मङ्गल पूछती हो ।

राधा—(सचमत्कृता हो) साधु नववृन्दे ! साधु है, क्यों कि शिल्पकलाविचक्षण शिल्पी के द्वारा निर्मित यह प्रतिमा तुम्हारी भाँति मधुर वचन बोल रही है ।

कृष्ण—अहो ! गन्धर्व्वपुरानुकारी विश्वकर्म्मा की माया के द्वारा विरचिता नाट्य की कैसी चिरस्थायी चमत्कारिता है ? क्यों कि जिस से अवाधित राधा की भाँति यह राधा प्रकाश पा रही है ।

राधा—(आनन्द एवं विस्मय के साथ संस्कृत भाषा में) नासिका में प्रवेश कर उन्मत्त करने वाला यह सर्वोत्कृष्ट परिमल है, वह यह नयन-युगल आकर्षणकारी घनश्याम कान्ति है, मेरे कर्ण-युगल को वलात् विगलितकारी यह वह स्वर है, आश्चय ! यह प्रतिकृति गोविन्दस्वभाव का लाभ कर रही है ॥२३॥

(ऐसा कह कर खेद के साथ) अयि ! कृष्णप्रतिमे ! यह राधिका कोटि कोटि चाटु वाक्यों से तुम्हारे निकट भिक्षा प्रार्थना कर रही है कि तुम चिरकाल के लिये इस प्रकार जङ्गमभाव अवलम्बन कर इस दुःखिनी के सन्तप्त लोचनों को सुखी करो ।

कृष्ण—हाय ! देवशिल्पिन् ! सत्य ही तुम ने मुझ को सम्बर्द्धित किया है (ऐसा कह कर वाष्पधाराविमोचन करने लगे)

नवबृन्दा—सखि ! वस्त्राञ्चल के द्वारा प्रियमुखपद्म से अश्रुधारा को पोंछ दो।

राधा—(लज्जा के साथ वैसा करने लगी)

नव०-(स्वगत) माधव राधिका के अङ्गस्पर्श-सुख प्राप्त कर स्तिमित-लोचन होकर पृष्ठस्थित कदम्बवृक्ष का क्यों आश्रय कर रहे हैं ?

राधा—हा धिक् हा धिक् प्रतिमा तो स्वाभाविक धर्म्म का अवलम्बन करने लगी है। (ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाती है)

(नेपथ्य में मयूरादि की ध्वनि)

वकुला—(आवेग के साथ) नवबृन्दे ! मयूरों का दल भीत होकर चिल्लाते हुए क्यों भाग रहा है ?

नवबृन्दा—निश्चय विदर्भराजकन्या बृन्दावन में प्रवेश कर रही है। अतः उन की सहचरियों की नूपुरध्वनि से हंसकुल की जयशंका कर मयूरगण पलायन कर रहे हैं। अतः तुम शीघ्र यहाँ से सत्यभामा को स्थानान्तरित करो।

वकुला—अच्छा परामर्श दिया है।

(ऐसा कह कर मूर्च्छिता राधा को गोद में ले कर प्रस्थान करती है)

मधुमङ्गल—(निकुञ्ज से बाहर आकर) आश्चर्य ! आश्चर्य ! सत्य हो तुम प्रतिमा हो गये हो।

कृष्ण—(सम्मुख में दृष्टि कर) हाय हाय ! विश्वकर्म्मा की शिल्पमाया क्यों अन्तर्हित हुई ?

(ऐसा कह कर आश्चर्ययुक्त हो कर) नवबृन्दे ! जगत् विस्मय

अतः निकट में जा कर यथार्थ तत्त्व का अवगत करूँ।

(ऐसा कह कर गमन करने लगी)

आर्य्यपुत्र ! जययुक्त हों, जय युक्त हों।

कृष्ण—(भाव-गोपन कर) प्रिये ! भाग्यवश यथा समय बृन्दावन में उपस्थित हुई हो।

चन्द्रावली—(कृष्ण को देख कर आश्चर्य्य हो कर संस्कृत में) सखि ! इस जगत् में अपूर्व-माधुर्य्यपूर्ण मनोहारी यह आरण्यवेश माधव का माधुर्य्य तरङ्ग विस्तार कर रहा है। परन्तु इस का दर्शन कर मेरा मन ईर्ष्याभुजङ्गी से ग्रसित हो रहा है जो किसी प्रकार से तृप्तिलाभ नहीं प्राप्त कर रहा है ॥८४॥

(ऐसा कह कर मृदु-हास्य के साथ) देव ! सौभाग्यवश नवीन प्रणयिनीसङ्गम-महोत्सव में उत्फुल्ल हो रहे हैं।

कृष्ण—(विहस्य) प्रिये ! प्राचीन-प्रणयिनी ऐसा कहो।

चन्द्रावली—(हँस कर) प्राचीनप्रणयिनी कौन है ?

कृष्ण—प्रिये ! भय मत करो, बृन्दावन को लताश्रेणी है और कोई नहीं है ॥

माधवी—स्वामी सत्य कह रहे हैं क्यों कि यह माला बृन्दावन-वल्लता के द्वारा उपनीता हुई है।

कृष्ण—माधवि ! निरथक मिथ्या-आशङ्का से विशुद्धा इस चन्द्रावली को कलङ्कित मत करो, यह माला तो मधुमङ्गल के कलाकौशल की साक्षात् कृति है।

चन्द्रावली—(कौतुकभर से मृदुहास्य कर) आर्य्य मधुमङ्गल ! यह कौसुम्भवस्त्र क्या तुम्हारे कलाकौशल से लब्ध हुआ है ?

कृष्ण—(स्वगत) निश्चय देवी ने यह परिच्छद पहले देखा है। (प्रकाश्य में) देवि ! वनदेवी ने उपहार दिया है।

माधवी—अनुमति कीजिये, यह गृहदेवी अब गमन करे।

कृष्ण—देवि ! माधवी के मिथ्यावचन में श्रद्धा मत करो।

चन्द्रावली—सखी सरस्वती ने मेरा पक्ष ग्रहण किया है। [मूल में "माधवीयां" यह शब्द है, इसके दो अर्थ हैं, माधवी-सखी की एवं माधव-कर्त्तृक उक्ती है । शेषोक्त अर्थ का ग्रहण कर चन्द्रावली ने कहा है।

कृष्ण—(स्वगत) मैं अपनी कथा से ही देवी के द्वारा पराजित हो गया हूँ।

चन्द्रावली—कृष्ण ! (यह अर्द्धोक्ति कह कर लज्जिता होकर) आर्य्यपुत्र ! आर्य्यपुत्र !

कृष्ण—(आनन्द पूर्वक मृदु हँस कर) प्रिये ! भाग्यवश मुझे "कृष्ण" ऐसा कह कर सुधाधारा पान करा रही थी, अब "आर्य्य-पुत्र" इस प्रकार वाक्य-कूपोदक का क्या प्रयोजन है ?

चन्द्रावली—आर्य्यपुत्र ! मैं अनभिज्ञा नहीं हूँ कि आप की सुख-जनक-केलिप्रसङ्ग में दुःखित हो जाऊँ।

कृष्ण—देवि ! तुम्हारे अङ्गसङ्गत सूर्यकिरण से सन्तप्त हो रहा हूँ। अतः चन्दनतरुच्छाया में गमन कर मुझे शीतल करो।

माधवा—देव ! हमारी यह कठोरात्मा राजकन्या यथेष्ट ताप सहन कर सकती है। चन्द्रभागामन्दिर में ज्वलन्त अग्निकुण्ड को जब जलकेलिकुण्ड बोध किया है तब आप ने प्रत्यक्ष किया होगा।

कृष्ण—(स्वगत) माधवि ! उत्तम उत्तम, क्यों कि इस प्रकार स्नेहातिशय्य की सूचना देकर तुमने यथा समय देवी के प्रति सखी की भाँति सेवा की है।

चन्द्रावली—आर्य्यपुत्र ! अपने हृदयाभिमत प्रणयिजन के साथ स्वच्छन्दरूप से विहार करो, मैं अन्तःपुर में प्रवेश करती हूँ।

(ऐसा कह कर परिजन के साथ प्रस्थान करती है)

कृष्ण—सखा ! विशेष कष्ट उपस्थित हुआ, क्यों कि देवी क्रुद्धा

हो गई है।

मधुमङ्गल—ऐसा मत कहो, क्यों कि देवी के रोष का कोई उपलक्षण नहीं दीख रहा है।

कृष्ण—सखा! मेधावियों का रोष बाहर नहीं प्रकाशित होता है। क्यों कि—देवी के वदनचन्द्रबिम्ब से मृदुहास्य रूप कौमुदी दूरीभूत नहीं हुई है।
स्वाभाविक मृदुवाक्य में माधुर्य्यलक्ष्मी का त्याग नहीं हुआ है। परन्तु मनकी दुरावरणीय गोपनीय व्यथा के प्रकाशक श्वासों के द्वारा स्तनवसन ईषत् कम्पित हो रहा है जो कि क्रोध को व्यक्त करता है। तब तो देवी-प्रसादन (देवी को प्रसन्न कराना) अपने अभीष्ट साधन हो गया है ॥३४॥ (ऐसा कह कर दोनों प्रस्थान करते हैं)

(अनन्तर सब का प्रस्थान)

यहाँ ललितमाधवनाटक के नवबृन्दावनसङ्गम नामक
सप्तम अङ्क समाप्त हुआ है।

अष्टमोऽङ्क

(तदनन्तर नवबृन्दा के द्वारा अनुगम्यमान विश्वकर्म्मा प्रवेश करता है)

विश्वकर्म्मा—अन्त:पुर में प्रवेश-इच्छा-कर सुरेन्द्र-प्रमुख देवता-गण हाथ जोड़ कर द्वारपाल के निकट प्रार्थना कर जिनके बहि: प्रकोष्ठ में प्राप्त होते हैं तथा जिनके द्वारपाल अवसर जान कर उन को भीतर प्रवेश कराता है उन श्रीहरि की द्वारकापुरी आज मेरा मनोहरण कर रही है ॥१॥

(पार्श्व में निरीक्षण कर) वत्से! श्रीकृष्ण में "यह प्रतिमा

है" इस प्रकार सत्यभामा का जो विचित्र भ्रम एवं सत्यभामा-सम्बन्ध में श्रीकृष्ण का जो भ्रम हुआ है वह मेरी माया है। (मृदु-हँस कर) अथवा वह भ्रम नहीं था वह तो विरहरूप अनुरागामृत का विलास वैभव था ।

नवबृन्दा—आर्य ! मन्त्रिराज-उद्धव के कौशल से दोनों के परस्पर में रहस्य का श्रवण करने पर वह विलास विभ्रम अत्यन्त सम्भ्रम को प्राप्त हुआ है । इस लिये राधिका-मिलन में उत्सुक पद्मलोचन श्रीकृष्ण ने निभृत राजान्तःपुर में रुक्मिणी को सन्तुष्ट एवं आनन्दित कर कहा है—हे देवि ! त्रिलोक-मध्य में क्या तुम्हारा अभीष्ट है ? वह प्रकाश करो एवं एकान्त आज्ञानुवर्त्ती, यथेष्ट रूप में मङ्गलाचरण-कारी इस जन के प्रति अनुग्रह-माधुरी का वितरण करो ॥

विश्वकर्म्मा—उस के बाद उस के बाद ।

नवबृन्दा—तदनन्तर देवी के हृदयभाव को जानने वाली माधवी-ने कहा है—देव ! पृथिवी में जो अपूर्व वस्तु करके ख्यात है क्या वह इस महान्तःपुर में नहीं है । परन्तु आकाश में गमनशील एक श्वेत हंस के चञ्चुपुट से अपूर्व एक पद्म गिरा है, राजकन्या उस की माला-रचना करने को चाँहती है ।

विश्वकर्मा—वत्से ! हाँ जानता हूँ । सुरसौगन्धिक नामक उस पद्म का संग्रह करने के लिये हम से अनुसन्धान प्राप्त कर श्रीकृष्ण ने खाण्डवप्रस्थ में गमन किया था ।

नवबृन्दा—माधव ने पङ्कजसमूह लाकर मधुमङ्गल-हाथ से माधवी के निकट रखकर छल पूर्वक देवी को जनाने के लिये सम्प्रति अवरोध में गमन किया है ।

विश्वकर्मा- तुम कहाँ जा रही ?

नवबृन्दा—आप के निकट ।

विश्वकर्म्मा—किस लिये ?

नवबृन्दा—आप की अपरूप विद्या-रसिकता ख्याति का अवधारण कर देवी ने सौभाग्य, सुख एवं सद्गुणों के आधारभूत, इन्द्र-नगरी में भी अनिर्मित अपूर्व वेशयोग्य भूषण की जो प्रार्थना की है क्या आप ने उस का निर्माण किया है ?

विश्वकर्म्मा—केवल देवो के लिये नहीं अपितु सत्यभामा के लिये भी।

नवबृन्दा—इस पर देवी दुःखिता हो सकती हैं।

विश्वकर्मा—वत्से ! शङ्का मत करना। मैंने देवी के लिये निवेदन किया है कि—हे देवि ! सूर्यदेव के सम्बन्ध से सत्यभामा मेरी नातिनी है। अतः उस के लिये मैं अलङ्कार बनाऊँगा। आओ लेओ, ये दो पिटारी हैं तुम को सौंपता हूँ ॥२॥

(दोनों का प्रस्थान)

(विष्कम्भक अर्थात् अतीत एवं भविष्यत् कार्य्य की सूचना)

(तदनन्तर श्रीकृष्ण का प्रवेश)

कृष्ण—(हर्ष के साथ) अहो ! जिस के विरह से वक्षःस्थल में लेपायमान चन्दन को चक्षुःयुगल अश्रुपरिपूर्ण से मानो सिञ्चित करने लगता, साथ ही साथ स्पर्द्धाशील वक्षःस्थल उत्तप्त होकर मानो सुखाने लगता, अनगणित स्वप्न के बीच में भी जिस का दर्शनानन्द मेरे लिये दुर्ल्लभ है क्या वह राधिका सहसा मेरे गोद में अवस्थान करेगी ? (सम्मुख में देख कर) यह तो कुण्डिनराजनन्दिनी मणि-मन्दिर के अलिन्द को अलंकृत-कर विराजमान है ॥३॥

(अनन्तर माधवी के द्वारा उपास्यमाना चन्द्रावली प्रवेश करती है।)

चन्द्रावली—सखि माधवि ! यह तो आर्य्यपुत्र आ रहे हैं, अतः उस सुरसौगन्धिकपुष्पमाला को लाओ।

कृष्ण—(निकट में जाकर) हे देवि ! तुम एकाकिनी होने पर भी पक्षपातवैचित्र्य के हेतु सर्वप्रकार आक्रमण कर मेरे चित्त-

सरोवर में राजहंसिनी की भाँति विराज रही हो ॥४॥

चन्द्रावली--(अभिलाष के साथ) माधवि ! युक्तिपूर्ण-कथा सुन कर हास्य क्यों कर रही हो ?

माधवी--राजनन्दिनि ! सरोवर में अपने व्रतविस्तार कारिणी वकी की कथा का स्मरण कर हँस रही हूँ।

कृष्ण--अहो ! कलह कण्डूति (खूजली) से युक्त मुखसर्वस्व वालि तमोमयि अर्थात् क्रोधिते माधविके ! तुम चन्द्रावली को विकृत नहीं बना सकती, क्षान्त हो (ऐसा कह कर देवी को देखने लगे)

हे सुन्दरि ! मेरा मन तुम में अत्युच्च गौरवमयी आसक्ति को वहन कर रहा है। अतः तुम्हें छोड़ कर अन्यत्र क्षणकाल के लिये स्वस्तिलाभ नहीं कर सकता ॥५॥

माधवी--राजनन्दिनि ! तुमने अपने हाथ से इस सुरसौगन्धिक-माला की रचना की है।

चन्द्रावली--(माला लेकर) आर्य्यपुत्र ! यह माला कौस्तुभ की सहवासिनी हों (ऐसा कह कर वक्षःस्थल में पहना देती है)

कृष्ण--हे सुन्दराङ्गि ! तुम्हारे निवास-स्थल रूप इस स्निग्ध बक्षःस्थल पर तुम्हारी ग्रथित इस माला के बिना कोई भी कौस्तुभ की सहवासिनी नहीं हो सकती ॥६॥

चन्द्रावली--(लज्जिता एव नम्रा हो जाती)

कृष्ण--(हस्तधारण कर सादर) हे कुंकुमगौरांगि ! हम अपनी आत्मीया किसी ध्यानपरा तपस्विनी को देखने के लिये प्रतिज्ञा वद्ध हुए हैं अतः अनुमति प्रदान कर उस प्रतिज्ञा की रक्षा कराइये ॥

चन्द्रावली--जैसी आप को अभिलाषा हो वैसा करें।

कृष्ण--(स्वगत) अब मैं निर्भर हो गया, अतः बृन्दावन के लिये चलूँ (ऐसा कह कर प्रस्थान)

नवबृन्दा—(प्रवेश कर) देवि ! यह दो अलङ्कार को पिटारी हैं। पहिला तो देवी के नामचिन्ह से अङ्कित है दूसरी सत्यभामा के नाम से।

माधवी—(स्वगत) अपनी नातिनी के लिये निश्चय सर्वोत्कृष्ट अलङ्कार निर्माण किये होंगे अतः परिवर्त्तन कर दूसरी से राज-नन्दिनी को अलकृत करूँगी (प्रकाश्य में) नवबृन्दे ! दोनों को देओ, मैं निश्चय सत्या के लिये भेज दूँगी।

नवबृन्दा—(वैसा ही करने लगी)

चन्द्रावली– स्नान के लिये गृहदीर्घिका में जाती हूँ।

(परिजन के साथ चली जाती है)

नवबृन्दा—बृन्दावन के अभिषेक के लिये सम्प्रति ऋतुराज बसन्त को शुभ अवसर दिया गया है। अतः वहाँ जाती हूँ।

(ऐसा कह कर भ्रमण करने लगी)

(नेपथ्य में) क्रीडोत्सव के लिये इस निविड़ नवपुष्पावली-शोभित स्थल पर प्रिया के साथ चरण-विहार अर्पणकारी देव को एक ही साथ निज समृद्धि के द्वारा सम्बर्द्धित कराने के लिये समस्त ऋतु कौतुक वश अवतरित हो रही हैं॥

नवबृन्दा—यह तो नवीन बृन्दाटवी को कृतार्थ करने के लिये सुन्दर वन्यवेश-धारण कर जगन्मोहन श्रीहरि राधिका का अनु-सरण कर रहे हैं। (पुनः देख कर विस्मय के साथ) बहुकाल के बाद श्रीराधामाधव के भावोल्लास रूप कल्पवृक्ष विराजित हो रहा है जो कि गद्गदकण्ठध्वनि रूप कोकिलध्वनि से परिशोभित है, अनुपम भावस्तम्भरूप शोभा से सुशोभित है, रोमाञ्चरूप अंकुरसमूह से परिपूर्ण, है, स्वेदाम्बु मुक्ताफल के द्वारा फलबान है, विभ्रमरूप पक्षियों से कम्पायमान एवं उद्गत-वाष्प रूप मकरन्द से युक्त है ॥७॥

(अनन्तर यथा-निर्दिष्ट राधा-माधव प्रवेश करते हैं)

माधव—हे प्रिये ! तुम्हारे किसी चिन्ह का अन्वेषण करते हुए मैंने निखिल जगत् की लक्ष्मी-रूपिणी साक्षात तुम को प्राप्त किया जैसा कि जगत में कौन जन मुट्ठीभर चना (सम्पत्ति) के लिये भ्रमण करता करता सम्मुख में सुवर्णवृष्टि प्राप्त कर लेता है ।८॥

नवबृन्दा—(राधा को देख कर) हाय हाय ! श्रीराधा कृष्ण-दर्शन के लिये प्रवृत्ता हो रही है। सजल नेत्र युगल किसी प्रकार से दर्शन करने में समर्थ नहीं हो रहे हैं, शक्ति रहते हुए भी भुजलता भावभर से स्तम्भित हो जाने के कारण आलिंगन में समर्थ नहीं हो रही है, गद्गदता के कारण वाणी उत्तर देने में असमर्थ हो रही है। चिरकाल से वाञ्छित यह मिलन-काल उपस्थित हो रहा है जिस से कि इस प्रकार बृत्तियाँ उपस्थित हुई हैं ॥९॥

कृष्ण—(राधा के निकट जाकर) हे कुम्भस्तनि ! यह मेरा हृदय अन्तर को विरहज्वालारूप जटाओं से तथा उत्कण्ठावली से युक्त होकर अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न करा रहा है । अतः तुम अन्तः नवविलास में स्तवकित तथा निरन्तर सुधा-क्षरण-कारिणी चञ्चल-भ्रूभङ्गि से युक्त दृष्टि को एक वार मेरे लिये निक्षेपित करो ॥१०॥

राधा—(लज्जित होकर) नवबृन्दे ! निश्चय यह स्वप्न है, क्यों कि—इस प्रकार सुखसागर में क्षणकाल मग्न होकर भी पुनः चेतना प्राप्त कर मैंने कुछकाल तक मुक्तकण्ठ होकर क्रन्दन नहीं किया है।

नवबृन्दा—सखि ! खेदनिद्रा से तुम जागरिता हुई हो, अतः मन लगा कर देखो, यह नवीनबृन्दाटवी चन्द्र-किरणस्पर्श से द्रवायमान चन्द्रकान्तमणिमय-पर्वत के शत शत कृत्रिम जलप्रवाहों से भूषित हो रही है, वह विस्तीर्ण-बृक्षों से मानो उत्सवान्वित एवं विकसित कमलिनीराजि के परिमल से अन्ध होकर मानो भ्रमरों का लीलायुक्त-गुञ्जन से तुम सब को आह्वान कर रही है ।११॥

कृष्ण—नवबृन्दे ! उत्तम उत्तम, तुमने स्पष्टतया अपूर्व रूप से ऋतुओं की मिश्रण कल्पना की है, जिन्होंने अपने अपने परिचार-वर्ग को तुष्ट किया है।

नवबृन्दा—सखि राधे ! देखो देखो, यह बृक्ष नीलकण्ठ मयूर का (पक्षान्तर में) नीलकण्ठ महादेब का सन्तोष-विधान कर रहा है, पुष्पावली के द्वारा तारकाराजि के (पक्षान्तर में) तारका नामक असुर गर्व को खर्व कर रहा है, पर्वतभूमि के क्रोड में (पक्षान्तर में) पार्वती की गोद में विशाख की भाँति (पक्षान्तर में) कार्त्तिक की भाँत शोभित हो रहा है ॥१२॥

राधा—(औत्सुक्य के साथ आत्मगत) हाय ! मेरी प्रियसखी विशाखा कहाँ है ?

कृष्ण—(स्वगत) निश्चय नबबृन्दा की कथा में विशाखा का स्मरण होने पर यह दु:खित हो रही है। अत: उस का वर्णन करता हूँ। (प्रकाश्य से) प्रिये ! क्षणकाल के लिये एक अद्भुत कथा का श्रवण करो। सम्प्रति मैंने सुरसौगन्धिकपुष्प-संग्रह के लिये अर्जुन के साथ खाण्डवारण्य में प्रवेश किया था। वहाँ गाण्डीवधारी अर्जुन मृगसन्धान में भ्रमण करने लगे। उस समय श्येनपक्षि के द्वारा आक्रान्त होकर एक पक्षि कहने लगा कि—हे सखे कीर ! श्रीराधिका के फलयज्ञ में मैंने नवनवचन्द्र की भाँति मृणालखण्ड का आस्वादन नहीं कर पाया। शुकने कहा—हाय सखे राजहंस ! श्रीराधिका के फलयज्ञ में मङ्गलग्रह की अपेक्षा स्थूल एवं रक्तवर्ण नागरङ्ग (नारङ्ग) मेरे मङ्गल के लिये न होंगे।

राधा—(विस्मृत होकर) उस के बाद, उस के बाद।

कृष्ण—उस के बाद मैंने दोनों पक्षियों को मुक्त कर दिया। उस समय मैंने एक आकृति-सम्पन्न बृद्धा देखी एवं उस से पूछा तुम कौन हो ? बृद्धा ने कहा—पक्षियों की यज्ञस्थल रूप यह दीर्घिका

तपस्या-प्रभाव से आविर्भूता हुई, जो सुगन्धि-सुरसौगन्धिकपुष्पों से परिपूर्ण है। और अमृतनिन्दि-फलों से परिपूर्ण यह उद्यान-वाटिका है। मैं दोनों की रक्षयित्री पुलिन्दी हूँ।

अनन्तर मैंने जिज्ञासा की—किसने यज्ञस्थल रूप में परिणत कराया। उसने कहा—कोई तपोधना है, जिसने जलवास-रूप व्रत का समापन कर वत्तमान राधाभीष्टसाधन रूप अन्य व्रत का आरम्भ किया है॥

राधा—उस के बाद, उस के बाद।

कृष्ण—अनन्तर उस के निर्देशानुसार गिरिगुहा में उपस्थित मेरे नयनमार्ग में मलीन वल्कल से युक्त, धूलिधूसरित तनु वाली, जटा युक्त केशों को धारण करने वाली, एक तपस्विनी पद्मराग-मणि का एक माला हाथ में धारण करती उपस्थित हुई॥१३॥

उसने मुझे देख कर रोदन करते करते गद्गदस्वर से कहा—हा गोकुलेन्द्रनगरी के युवराजलीलाकारी!, हा गोपीकुलहृदय-कमल के भ्रमर!, हा राधिका के कुचकुरङ्ग में कस्तुरिकामय अङ्गराग स्वरूप! क्या तुम सचमुच पुनः मेरे नयनपथ के पथिक हुए हो?॥१४॥

अनन्तर विस्मृत होकर मैंने कहा तुम कौन हो, उस ने गद्गद-स्वर में कहा—हे नाथ! मैं तुम्हारी वह हतभागिनी दासी विशाखा हूँ।

राधा—हा धिक् हा धिक्, हाय प्रियसखि विशाखे! मन्द-भागिनी मैं तुम्हारे लिये हत हो गई।

कृष्ण—युगपद् विषाद एवं हर्ष से अभिभूत हो कर, उष्ण एवं शीतल नयनजल से पीतवसन को भिगा कर तथा विशाखा को पूर्वशरीर प्रदान कर स्थाणु की भाँति मैं अवस्थान करने लगा। तदनन्तर मङ्गलार्थी मैंने उस क्षीणांगी को तुम्हारी कल्याण वार्ता

के द्वारा आश्वासन देकर पुनः उस को सुसज्जित करा कर द्वारका-नगरी में प्रवेश करवाया ॥ १५-१६ ॥

राधा—(उत्कण्ठा के साथ) सुन्दर ! तुम्हारी वन्दना करती हूँ, विशाखा को दिखाओ ।

कृष्ण—(नवबृन्दा को मुख की ओर देखने लगे)

नवबृन्दा—सखि ! विशाखा ने मुझसे कहा कि—हाय ! मैं पिता के आदेश से हत हो रही हूँ जब तक प्रियसखी के स्यमन्तकमणि का साक्षात् रूप से लाभ नहीं होता है तब तक उस के साथ साक्षात् करने का पिता ने निषेध किया है । इसी लिये नवबृन्दावन के कालिन्दी-निर्झर में मैं निवास कर रही हूँ ॥

राधा—सत्य, सत्य, माता संज्ञा ने भी कहा है वत्से राधिके ! स्यमन्तकमणि के हस्तगत होने पर तुम्हारा सर्वाभीष्ट पूर्ण होगा ।

नवबृन्दा—देव ! देखिये, देखिये, गिरिधर ! देखिये, वसन्तादि-षड्ऋतु का वैभव किस प्रकार एक ही साथ प्रकाश पा रहा है । जो कि वसन्तकालीन माधवीलता के द्वारा मृदुहास्य कर रहा है पुनः शिरीष के द्वारा पुष्पित, कदम्ब के द्वारा उत्फुल्लित, जातिपुष्प से प्रहसित, जम्बीर के द्वारा सुशोभित तथा श्यामलता के द्वारा मुकुलित हो रहा है ॥ १७ ॥

कृष्ण—प्रिये ! देखो देखो, कहीं तो कोकिल कुहुध्वनि कर रही है, कहीं वा झिल्लीकीट झीं झीं कर रहा है, कहीं राजहंस शब्द कर रहा है, कहीं शिखी गान कर रहा है, कहीं वा हारीतकी शब्द कर रहा है । इस प्रकार षड्ऋतु के संगत से मेरा परमानन्द हो रहा है ॥ १८ ॥

नवबृन्दा—देव ! देखिये देखिये, पवन किस प्रकार मलयाचल से दन्तुर (दांतवाला) सर्पसमूह के सृकदेश से पलायन कर, कमल-शोभित पम्पानदी का जल में स्नान कर, सर्पभोजी गरुड के प्रभु

आप की सेवा के लिये उपस्थित हो रहा है ॥ १९ ॥

कृष्ण—(तरुसमूह एव लतावली को देख कर) हे कदम्बसमूह! तुम सब कुशल हो? हे वकुलगण! तुम सब अच्छे हो? हे प्रियंगु-राजि! तुम्हारा कल्याण है? हे पीलुबृक्षगण! तुम सब कुशल से हो? हे आम्रबृक्षों तुम्मारा मंगल है? हे माधविलताऐ! तुम सब कुशल हो? आज यह राधा-सहचर श्रीकृष्ण दीर्घकाल के बाद तुम सब का अनुसरण कर रहा है॥ २० ॥

नवबृन्दा—देव! सम्मुख में यह नन्दीश्वरपवत अपनी कन्दरा को नवाभिसार-मन्दिर बना कर आनन्द उद्गार कर रहा है॥

कृष्ण—(राधा को देखते हुऐ) हे क्षीणोदरि! नन्दीश्वरपर्वत के ऊपर तटप्रान्त में विराजमान इस चंचलाक्षी मृगवधू को क्या पहि-चानती हो? जो कि तुम्हारो मरकतमणिमयी हार-लतिका को यवगुच्छ भ्रम से निर्भयता पूर्वक पुनः पुनः दशन करती थी। २१॥

राधा—क्यों नहीं पहिचानूँगी। यह तो मेरी प्रियसखी रंगिणी नामक हरिणी है।

श्रीकृष्ण—हे कल्याणि! जिस पर बैठ कर गोपों की मल्लक्रीड़ा का मैं बार बार दर्शन किया करता था यह वह शरत्कालीन मेघ के समान शुभ्र-मर्म्मर प्रस्तरमय विलासपीठ है॥ २२ ॥

राधा—नवबृन्दे! यह कौन है? जो कि कुसुमावली के द्वारा नागकेशर स्तवक को पराजित कर रहा है?

नवबृन्दा—हे सरले? इस का नाम कुब्जक है।

राधा—(पुष्पस्तवक उठा कर देखती हुई) हा धिक् हा धिक् इस स्तवक में दुष्ट भ्रमर छिप रहा है।

(एसा कह कर भय प्रकाश करना)

कृष्ण—हे चकित-हरिणाक्षि! भ्रमरयुक्त इस वृक्ष का त्यागकरो, यह कुब्जकपुष्प भयोत्पत्ति स्थान करके जगत में विख्यात है ॥२३॥

नवबृन्दा—(स्वगत) श्रीकृष्ण को बात सुन कर यह राधा मृदु हँसती हुई अपांग क्षेपण कर मेरी ओर देख रही है। (प्रकाश्य से) सखि ? तुम स्वयं पुण्डरीकाक्ष को पूछो।

कृष्ण—नवबृन्दे ! तुम्हारी सखी क्या कहना चाँहती है तुम निभय पूवक कहो।

नवबृन्दा—देव ! कुब्जासंग मधुसूदन (भ्रमर) का परमानन्द बर्द्धन करता है। इस में भय का कारण कैसे ?

कृष्ण—(मृदुहास्य पूर्वक) नवबृन्दे ! तुम्हारो सखो मिथ्या शंका कर रही है, देख, यह मधुसूदन कुब्जासंग त्याग कर मुख-सुगन्धि से कानन-आमोद-कारिणी इस के पोछे भाग रहा है !

राधा—(भय के साथ) हाय हाय ! चंचल भ्रमर ! ठहर ठहर इस लोलाकमल से तुम को प्रहार करती हूँ।

कृष्ण—देखो देखो, यह मधुकर तुम्हारे बदन गन्ध से उन्मत्त होकर पलाश में उल्लास वहन नहीं कर रहा है, प्रियंगु को विफल मान रहा है, मालती के गन्ध को चाँह नहीं रहा है, कुमुद में आनन्द वहन नहीं कर रहा है, मधुक में माध्वीक के लिये नही भाग रहा है और लवेनी के निकट नहीं जा रहा है ॥ २४ ॥

नवबृन्दा—यह वह पर्वतराज गोवर्द्धनगिरि सम्मुख में विराजमान है, जो कि अपने में विद्यमान निर्भर समूह के द्वारा भृंगार, वृक्षावली के द्वारा छाया-छत्र, स्फटिक के द्वारा पर्य्यंकावली, धोतोज्वल धातुओं से अलकार एवं रत्नसमूह के द्वारा दर्पण प्रदान कर रहा है ॥ २५ ॥

कृष्ण—हे सुन्दरि ! जो बार बार नृत्यछल से तुम्हारे कर्ण-भूषण उत्सव विधान के लिये मनोहर पुच्छों को अर्पण करता था वह मत्तमयूर गोवर्द्धनपर्वत में निविष्ट हो कर नृत्य कर रहा है ॥२६॥

राधा—हे ताण्डविक शिखण्डराज ! चिरकाल तक बढो।

कृष्ण—प्रिये ! गोवर्द्धन से यमुना जाने का जो तुम्हारा मार्ग है क्या वह स्मरण हो रहा है ?

राधा—क्यों नहीं। (संस्कृत में) आगे चम्पकवृक्षावली है, उस के आगे पन्नागश्रेणी है, उस के आगे जम्बुवृक्षसमूह है, उस के चारों ओर समुन्नत कदम्बवन है। इस प्रकार श्रेष्ठवृक्षों से क्रम परिचित यह विख्यात मार्ग है जो कि गोवर्द्धनप्रान्त से यमुना पर्यन्त है ॥२७॥

कृष्ण—(मृदुहास्य कर) तब तो आओ इस मार्ग में होकर यमुना चलें। (ऐसा कह कर सब वैसा करने लगे)

नवबृन्दा—अहो ! यमभगिनी यह निर्मला यमुना घूर्णन-युक्त सलिल से पूर्ण हो कर कमल परिव्याप्त निर्भर स हमारे नेत्र-युगल का आनन्द वर्द्धन कर रही है ॥ २८ ॥

कृष्ण—प्रिये ! देखो, सम्मुख में यह तरुश्रेष्ठ भाण्डीर प्रणयवश वायुकुल के द्वारा कुण्डलित हो रहा है। वह नयनकान्ति के द्वारा स्पर्द्धाकारी-मयूरपुच्छों से अवरुद्ध हो कर एवं शतकोटि शाखाग्र रूप भुजाओं स उद्दण्ड हो कर यमुनातटवर्त्ति वृक्षों में इन्द्रत्व प्राप्त कर रहा है ॥ २९ ॥

राधा—यह सुन्दर-पुष्पधारिणी कोमल मल्लीआँ सुदूरविस्तारी मनोहर गन्धावली के द्वारा चचल भ्रमरसमूह को अवरुद्ध कर मेरे चित्त का हरण कर रही हैं ॥ ३० ॥

कृष्ण—(श्रीराधा के कहे पूर्वश्लोक का पाठ करने लगे)

नवबृन्दा—सखि ! तुम्हारे हारसंघर्ष से मुकुन्द के वक्षः से सुरसौगन्धिक माला गिर गई है, देखो यह राजहंसी चञ्चुपुट से ले कर उड़ती जा रही है।

कृष्ण—अन्तःपुर दीर्घिका की ओर क्यों जा रही है ?

नवबृन्दा—सालोक्यादि मुक्ति को तुच्छ मानने वाले अतिमुक्त जन भी जब बृन्दावननिवास-वासना का त्याग नहीं कर पाते हैं तब

अन्य क्षुद्रव्यक्तियों की बात कहना ही क्या है ? ॥३१॥

कृष्ण—प्रिये ! माधवी एवं मालती का इस प्रकार मिलन पहले कभी नहीं हुआ है । इन का पुष्प चयन कर मैं कोई अपूर्व शिरोभूषण बनाती हूँ, जिस की शिक्षा गुरुकुल में कलाभ्यास के समय मैंने की है ।

(ऐसा कह कर दूर-गमन पूर्वक विस्मय के साथ)

अहो ! यह कौन है जो कि माधुर्य के द्वारा मनोहरण कर मणिभित्ति अवलम्बन कर सम्मुख में विराजमान है ?

(पुन: देखकर) यह तो मैं मणिभित्ति में प्रतिविम्बित हो रहा हूँ । (ऐसा कह कर औत्सुक्य के साथ)

यह अदृष्ट-पूर्व चमत्कारकारी गरीयान माधुर्यसार सम्मुख में स्फुरित हो रहा है, अहो ! जिस को देख कर मैं भी लुब्धचित्त होकर सरभस राधिका की भाँति उपभोग करने की कामना करता हूँ ॥३२॥

(आगे जाकर) निमेषरहित-नयन के समान भृङ्गावलीयुक्त स्तवक के द्वारा द्युतिधारण कर यह अम्लानपुष्पा मालतीमाला पृथिवी में देवी की भाँति विराज रही है ॥३३॥

(देवीचन्द्रावली का प्रवेश)

देवी—माधवि ! निश्चय इस हंसी के द्वारा नवबृन्दावन से यह सुरसौगन्धिक माला ली हुई है ।

माधवी—वह सत्य है, परन्तु यह माला नागरी-सङ्गसौरभ का उद्गार कर रही है । इसी शङ्का से मैंने यहाँ तुम्हें दी है ।

चन्द्रावली—(अपने अङ्ग के प्रति दृष्टिपात कर) सखि ! क्यों मैं सत्यभामा के भूषण के द्वारा भूषिता हुई हूँ ।

माधवी—(सालीक) राजनन्दिनि ! मेरी भूल हुई है ।

चन्द्रावली--(सम्मुख में देख कर) सखि ! देख, आर्यपुत्र अनतिदूर में विराजमान हैं।

माधवी—निश्चय आगे यह भर्त्ता (स्वामी) नहीं हैं। यह तो उन का इन्द्रनीलमय प्रतिविम्ब है।

चन्द्रावली– आश्चर्य ! प्रतिविम्ब की कैसी चमत्कारिता है ? (ऐसा कह कर आगे चल कर) सखि ! यह तो आर्यपुत्र मालती-चयन कर रहे हैं, अतः मैं अकेली वहाँ जाती हूँ।

(ऐसा करने लगी)

कृष्ण—(चन्द्रावली को देखकर आनन्द से स्वगत) क्यों मेरी जीवनेश्वरी राधा यहाँ आ रही है ? (प्रकाश्य से) प्रिये ! कैसे इतनी दूर आई हो।

(ऐसा कह कर सरोमाञ्च अवलोकन कर)

हे खञ्जननयने ! मैं गुरुजनों की शपथ खा कर सत्य कह रहा हूँ कि तुम ही एकमात्र मेरी प्रीतिसम्पादयित्री हो, तुम हृदय में कोई संशय मत करो, तुम मेरे प्राणधारण की श्रेष्ठ औषधि हो ॥३४॥

चन्द्रावली—(आनन्द के साथ स्वगत) तौ भी मौनालम्बन कर इस का अनुनय देखूँ।

नवबृन्दा—(लतान्तर में अवस्थान कर) हाय ! किस प्रकार राधा का वेष-धारण कर देवी चन्द्रावली यहाँ उपस्थित हुई है ? तौ भी जब तक माधव इस को राधिका मान कर कोई भया-नक भूल नहीं कर डारते हैं तब तक मैं इस हारीतपक्षि के द्वारा इस श्लोक को भेजती हूँ। (ऐसा कह कर केतकीपत्र में श्लोक लिख कर वेशगृह में निक्षेप करती है) (पुनः अवलोकन कर आनन्द से) भाग्यवश श्रीकृष्ण हारीत के द्वारा हस्त में निक्षिप्त इस पद्य को देख रहे हैं, अतः मैं छिप जाती हूँ। (ऐसा कह कर प्रस्थान)

कृष्ण—(पत्र को देख कर गोपन से पढ़ते हैं)

हे मधुब्रतेन्द्र ! जिस को नवकर्णिकार की माला मान कर भ्रम कर रहे हो उस को कुंकुमकर्द्दम से लिप्त पत्रवाली कैरवमालिका जानो ॥३५॥

(ऐसा कह कर चन्द्रावली के प्रति दृष्टि कर मत मन में)

साधु नवबृन्दे ! साधु, उचित अवसर पर उपयुक्त सेवा का विधान कर रही हो (प्रकाश्य में) देवि ! क्यों उदासीन की भाँति अवस्थान कर अन्तर में प्रसन्नतारूप सुधातरङ्ग को सूचित कर रही हो ॥

(ऐसा कह कर आदर के साथ अवलोकन कर)

हे चन्द्रावलि ! तुम शैत्यश्री एव सौरभसम्पत्ति के द्वारा चन्द्र एवं कर्पूर के गौरव को नष्ट कर रही हो, आज अपने वैभव के द्वारा मेरे अङ्गसमूह को सुखी करो ॥३६॥

माधवी—(लतान्तर में रह कर आनन्दभर से स्वगत) निश्चय विश्वकर्म्मा के प्रसाधन प्रभाव से यह सौभाग्यमाधुरी लाभ हुई है।

कृष्ण—प्रिये ! तुम्हारे अङ्गसङ्ग के लिये चञ्चलायमान इस सुहृज्जन को स्वयं अङ्गीकार करो (ऐसा कह कर अनुराग के साथ निकट गमन कर मिथ्या भय के साथ) धिक् धिक्, कष्ट है, मैं ने अनजान महान् अपराध किया है । क्यों कि यह तो देवी नहीं है परन्तु कोई अन्य कुमारी है (ऐसा कह कर विमर्ष अभिनय कर) हाँ जान लिया, वह विश्वकर्म्मा की नातिनी होगी जिस को विश्वकर्म्मा ने दूर से तर्ज्जनी-निर्द्देश के द्वारा दिखाया है ।

चन्द्रावली—(छल पूर्वक माला दिखाने लगी)

कृष्ण—(स्वगत) हंसी ने यह अनर्थ उपस्थित किया है । (प्रकाश्य में) आश्चर्य्य, आश्चर्य्य, यमुना के तीव्रप्रवाह के द्वारा मेरी यह सौगन्धिक माला अपहरण हुई है । वह इस के हाथ में किस प्रकार आई है ?

अतः मैं अन्तःपुर में जाकर स्वयं समस्त वृत्तान्त देवी को सुनाऊँ। उस से अपराध व कलङ्क का बिन्दु मात्र अवसर नहीं रहेगा।

माधवी—(निकट में जाकर राजनन्दिनि ! क्या व्यापार है ?

चन्द्रावली—स्वाभाविक महा अनुरागपूर की जो अभिरूपा (सादृशी) होती है वह।

माधवी—राजनन्दिनि ! नागरराज का यह व्यवहार लोकोत्तर चातुर्य्य लक्षण के द्वारा दुर्बोध है। आओ सत्यभामा को देखें ॥३७॥

चन्द्रावली—(भ्रमण पूर्वक राधा का दर्शन कर संस्कृत में) अहो ! राधिका की यह मूर्त्ति पूर्वदृष्ट विपद्चिन्हों से निर्मुक्त हो रहा है। मुख की प्रसन्नता अन्तर के निगूढ़-सुख को व्यक्त कर रही है। इस की दृष्टि तरलित हो रही है इस से यह सुन्दरी आज कंसारि की सङ्गम रत्न-उपलब्धि को व्यक्त कर रही है ॥

राधा—(देख कर सखेद स्वगत) चक्रवाकी-सङ्गम के लिये इन्दीवर को अभिनन्दित किया गया है परन्तु मात्सर्य्य परायण कलहंसी क्यों आकर मिली है ?।

चन्द्रावली—(मृदुहास्यकर) सखि सत्ये ! सत्य कहो, उस बलपूर्वक भुजदण्डपीडन के समय वह सुवृत्त कौस्तुभ तुम दोनों के बीच रहा कि नहीं ?

राधा—देवि ! दुःखित इस परिजन के प्रति तिरस्कार करना वृथा है।

माधवी—(सखेद-स्वगत) इस सुरतरङ्गिणी की लावण्यामृत-विभ्रमलहरी तरङ्गावली में निमग्न पुरुष कुञ्जर अपने को स्मरण नहीं कर रहे हैं तब तो किस प्रकार राजकन्यारूप दीर्घिका का स्मरण होगा ? ॥

चन्द्रावली—(कपट हास्य के साथ) अयि लोलुपे सखि ! मेरे

को आमन्त्रित न कर अर्थात् न पूछ कर इस महाव्रत को सुप्रतिष्ठिता कैसे की ?

राधा—देवि ! आप शरणागत व्यक्ति के रक्षण में असमर्था हो रही हो, तौ भी मुझ से परिहास कर रही हो। क्या ईश्वरियों को यह उपयुक्त है ? (संस्कृत में) कन्या बन्धुजन को अधोना होती है, उन्होंने मुझ को आप के गृह में प्रदान किया है। इस गृह का गृहपति अतिचञ्चल तथा साध्वियों के व्रत को ध्वंस करने वाला है। इस आश्रम में कोई सदाचारिणी प्रामाणिकी अभिभाविका नहीं है। अत: आज निस्तार के लिये आप को करुणा रूप नौका एकमात्र सम्बल है ॥३८॥

चन्द्रावली—(स्वगत) यथार्थ कहती है। (प्रकाश्य में) सखि ! अब तुम्हारा क्या अभिमत है ?।

राधा—देवि ! जब तक मैं स्यमन्तकमणि के द्वारा व्रतसमापन नहीं करती तब तक मेरो रक्षा कोजिये।

चन्द्रावली—सखि विश्वास करो, यह श्रीकृष्ण पुन: छल पूर्वक मुझे बञ्चना नहीं कर सकते हैं। क्यों कि यह विचक्षणा माधवी सखो सर्वदा मेरे पास रहती है।

माधवी—सुन्दरि ! विश्वकर्म्मा-प्रदत्त भूषण-पिटारी को अब तुम्हारे निकट भेज देती हूँ।

चन्द्रावली—सखि ! तुम माधवी-मण्डप में जाओ। मैं भी माधवी के साथ अन्त:पुर में जाती हूँ ॥३९॥

(ऐसा कह कर प्रस्थान करती है)

(सब का प्रस्थान होता है)

यह ललितमाधवनाटक के नवबृन्दावन विहार-
नामक अष्टम अध्याय का अनुवाद समाप्त
हुआ है ॥

नवमोऽङ्क

(अनन्तर नवबृन्दा का प्रवेश)

नवबृन्दा—(सम्मुख में देख कर आनन्द के साथ) यह शरदृऋतु भक्ति की भाँति मिलित हो रही है । जो भुवन के विशुद्ध साधन में दक्षा है । (शरत् पक्ष में) जो जगत में जल की स्वच्छता - क्रिया में दक्षा है, जो परमहंसगण के उल्लास विधान में समर्था है, (शरत् पक्ष में) श्रेष्ठ हस गण के उल्लास विधान में समर्था है, और जो विधु कृष्णचन्द्र के मधुरदर्शन साधन में निपुणा है (ऋतु पक्ष में) चन्द्रमा के मनोहर आलोक-साधन में निपुणा है ॥१॥

(शरद् ऋतु का प्रवेश)

शरत्—सखि नवबृन्दे ! कहाँ गई हो ?

नवबृन्दा—शरल्लक्ष्मि ! गुरु विश्वकर्म्मा के निकट ।

शरत्—किस लिये ?

नवबृन्दा—श्रीकृष्ण की आज्ञा से ।

शरत्—किस विषय में ?

नवबृन्दा—रैवत पर्वत पर सोलह हजार गृहनिर्माण व्यापार में ।

शरत्—उस का क्या कारण ?

नवबृन्दा—जगत् विघ्नकारी, नीतिज्ञान रहित धरणीतनय नरकासुर ने कपट कलह व्यपदेश से ब्रजपुरी से जिन सोलह हजार एकशत अश्रुपूर्णनयना कमललोचना का हरण किया है, अब क्रीड़ा-गुरु श्रीहरि ने उस नरकासुर का वध कर उन का उद्धार किया ॥२॥

शरत्—(आश्चर्यान्वित होकर) क्या वे सब गोकुलकुमारियाँ हैं ?

नवबृन्दा—इस में क्या सन्देह है । जब कि बृन्दावन में केशि-

मथन श्रीहरि के फलहीन एक क्षुद्रवृक्ष तक भी नहीं रहा है तब वहाँ गोपियों के अपूर्व पर्व युक्त प्रेम कल्पतरु की अस्तित्व सम्भावना कहाँ है ? ॥३॥

शरत—तो वे सब राजकन्या हैं यह प्रसिद्धि क्यों ?

नवबृन्दा—कुमारियों की किसी माधुर्य्य मधुधारा से मोहित होकर भूमिपुत्र नरकासुर ने कामाख्यादेवी को प्रतारित करने के लिये दानवकुमारों के साथ विवाह होगा इस प्रकार मिथ्या रटन के द्वारा उन को राजपुत्री कर के उद्भावित किया है ।

शरत्—सत्य सत्य, द्वारकापुरी में उन का प्रस्थापन कामाख्यादेवी का अभिमत है ।

नवबृन्दा—उस कामाख्यादेवी ने रुष्ट होकर इन्द्र को द्वारका प्रेरण कर नरकासुर की वध प्रार्थना की है ।

शरत्—सखि ! समस्त गोपकुमारियों का यहाँ मिलन संघटन हुआ । केवल पद्मा प्रमुख चार जन अर्थात् पद्मा, शैव्या, भद्रा एव श्यामला ये चार कन्या अवशेष रहीं ।

नवबृन्दा—उन की पहले से ही समाहृति हुई है ।

शरत्—कैसी समाहृति ?

नवबृन्दा—उन पशुपालश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने एक ही समय सात वृषों को स्तम्भित कर अनुराग सागर में मग्नदृष्टि वाली नग्नजित् दुहिता पद्मा को ग्रहण किया है । और भी-घन प्रणयघूर्णा में घोर तृष्णा वाली, मित्रबृन्दारूपिणी शैव्या को, कन्दर्प सर्प की गरलज्वाला से तपायमाना भद्रा को मुरहर श्रीकृष्ण ने मृदुहास्य रूप सुधाधारा से अभिसिञ्चित कर बलपूर्वक रङ्गस्थल से हरण किया है ॥४-५॥

और भी—उच्चखम्भ के मूलदेश में सन्निविष्ट जल में प्रतिविम्ब देखते हुए ऊपरि भाग में भ्रमरिचक्र के बीच बारम्बार भ्रमणशील मत्स्य को लक्ष्य कर ऊपर में वाण फेंक कर लीला से दो टुकड़े कर

सुभद्राग्रज श्रीकृष्ण ने पुनः मद्रराजनन्दिनी लक्ष्मणा नाम से परिचित श्यामला को प्राप्त किया है ॥६॥

शरत्—(आनन्द से) सौभाग्य वश पुनः गोकुल सुख वैभव का दर्शन करूँगा।

नवबृन्दा—सखि ! वसन्त शोभा के साथ अब वृन्दावन को विभूषित करो। देखो श्रीकृष्ण राधिका के साथ आ रहे हैं।

शरत्—किस प्रकार देवी की अनुमति प्राप्त की ?

नवबृन्दा—कुण्डलेश्वरनन्दिनी माधवी-विरहिता हो रही यह जान कर मधुवीर श्रीकृष्ण सुन्दर-विलास-प्रकाश के द्वारा उस को आनन्दित कर हास्यमुख से कहने लगे ॥ ७ ॥

हे देवि ! ब्रह्मा ने सत्य-लोक दर्शन के लिये प्रार्थना की है, अतः मैं वहाँ जाना चाहता हूँ। आप भक्ति पूर्वक अनुमति दीजिये। पक्षान्तर में-यह व्यक्ति कामपीड़ित हो कर सत्यभामा दर्शन की इच्छा कर रहा है अतः उस विषय में अनुमति-प्रदान कीजिय ॥८॥

शरत्—सखि ! प्रमाद है प्रमाद है।

नवबृन्दा—कैसा ?

शरत्—माधवी ने भूषणपेटिका समर्पण कर देवर्षिशिष्या सुकंठी नामक किन्नरी को राधा के निकट भेजा है।

नवबृन्दा—इस में कोई शंका नहीं है क्यों कि यह सुकंठी सत्यभामा में अनुरागिणी है।

तब तो मैं निश्चिन्त हो कर जा रही हूँ।

(ऐसा कह कर प्रस्थान)

(तदनन्तर श्रीराधिका का आनन्दविधान करते करते श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—हे कल्याणि ! तुम्हारे बिम्बाधर अमृतमधुरिमा की सुरभि को दूरीभुत कर रहा है, मुखबिम्ब पद्मगन्धयुक्त हो रहा है,

कंठस्वर कोकिलस्वर के गर्व को ध्वंस कर रहा है, अंग चन्दन की भाँति शीतल है, तुम समस्त सौन्दर्य-सम्पन्ना हो, तुम को आज प्राप्त कर मेरा इन्द्रिय समूह बार बार आनन्दित हो रहा है ॥९॥
(चारों ओर देख कर) अहो ! शोभा लक्ष्मी चारों ओर पवित्र कैरववन में विराजमान हो रही है, प्रशस्त-मार्गद्रोही अन्धकार-पुञ्ज क्षीण होता जा रहा है, क्षुद्रात्मा नक्षत्रों में क्रमशः अपचय की संघटना हो रहा है, अतः ऐसा बोध होता है कि शंकर का शिरोभूषण द्विजराज चन्द्र पूर्वदिशा में उदित हो रहा है ॥ १० ॥

नवबृन्दा--(निकट में जाकर) भुवन का अन्धकार नाशक, क्रम से रक्तवर्ण परित्याग करने वाला, विशुद्ध वैष्णवरूप चन्द्रमा दूर से अपनी अमृतमयी कान्ति को फेंकता हुआ आकाशमार्ग में प्रवेश कर रहा है ।
(पक्षान्तर में) जगत् के तामसिक-भाव को हरण करने वाला, क्रम से संसाराशक्ति का परित्याग करने वाला, विशुद्ध वैष्णव-चन्द्रमा मोक्ष लाभ को इच्छा को परित्याग करता हुआ विष्णुपद-प्राप्तिस्वरूपा भक्ति पथ में प्रवेश कर रहा है ॥ ११ ॥

कृष्ण—सखे कौस्तुभ ! विलासिनी चक्रवाकी के विरह से शोकाकुल यह चक्रवाक् श्रेष्ठ बार बार शब्द कर रहा है । अतः अपनी किरण श्रेणी का बिस्तार करो ।

राधा--(कौतुक के साथ देखने लगी)

कृष्ण--हे सुन्दरि ! देखो देखो, मध्यान्ह कालीन सूर्य के समान कान्तिवाला मणिराज कौस्तुभ की किरणावली से यमुना-पार की तटान्त भूमि में अन्धकार समूह दूरीभूत हो गया है । इस रात्रि के समय में भी दिवस ज्ञान से आक्रान्तचित्त हो कर चक्रवाक् युवक गभीर उत्कंठा से बार बार कान्ता के साथ मिल रहा है ॥१२॥

(पेटिका हाथ में सुकंठी का प्रवेश)

सुकंठो—सौभाग्य वश यहाँ सत्या के साथ श्रीकृष्ण मिलित हुए हैं। अतः लतान्तर में रह कर दर्शन करूँ।

(ऐसा करने लगी)

नवबृन्दा—हे कुन्ददन्ति! तुम्हारे दोनों नेत्र चन्द्रकान्तमणि के समान हैं, जब कि श्रीहरि का मुखचन्द्र उदित हुआ है तब वे अन्य प्रकार कैसे द्रवीभूत होंगे ॥१३॥

राधा—(आश्चर्य के साथ) कैसे पद्माकर में अथवा चन्द्रालोक में पद्मपुष्प समूह प्रफुल्लित हुआ है?

कृष्ण—देखो, सम्मुख में शुद्ध कावस्थली पद्माकर की भाँति आचरण कर रही है। क्यों कि उस में पद्मरागमणि समूह पद्म की भाँति निरन्तर प्रफुल्लित हो रहा है ॥१४॥

(नेपथ्य में) यह सुमनस्विनी माधवी बृन्दावन में विराज रही है। (इस अर्द्धोक्ति के बाद)

कृष्ण—(सम्भ्रम के साथ) हाय! यहाँ देवी आ रही है, अतः यहाँ से पलायन ही कल्याण कारक है।

(ऐसा कह कर सब सब ओर चले जाते हैं)

(पुनः नेपथ्य में)

जिस का स्तवक जगद्भूषण के भूषण है ॥१५॥

सुकंठी—हा धिक् हा धिक्, मधुमंगल के हस्त स्थित उस कामरूपदेशोत्पन्न शुकराज ने यह विघ्न उपस्थित किया है। अतः कन्दर में छिपी हुई सत्यभामा का अनुसरण करती हूँ। (ऐसा करने लगी)

(राधा का प्रवेश)

राधा—हाय हाय! यह कोई आ रहा है, इसने मुझ को कैसे देखा है?

सुकंठी—स्वामिनि! चिन्ता मत करिये, मैं आप की किंकरी सुकंठी हूँ।

राधा--(सहर्ष) सुकंठि ! मैंने जान लिया, जान लिया।

सुकंठी--स्वामिनि ! आप के बस्त्र गीले क्यों देख रही हूँ ?।

राधा--स्थलभ्रम से जल में गिर गई।

सुकंठी--माधवी प्रेरित इस अलङ्कार को ग्रहण कीजिये।

राधा--देखो, इस प्रस्तर में कोई चित्र दीख रहा है, इस के दर्शन का उपाय करो।

सुकंठी--बाहर जाकर आलोक (रोशनी)लाती हूँ।

राधा--मैं भी गीलाबस्त्र त्याग करूँ (ऐसा कह कर पिटारी ले कर चली जाती है)

सुकंठी--(बाहर आकर) यह तो मधुमंगल के साथ भर्त्ता सम्मुख में उपस्थित हो रहे हैं।

(अनन्तर श्रीकृष्ण का प्रवेश)

कृष्ण--सखा ! अनर्थकारी तुम्हारे हस्तस्थित वह कीर कहाँ है ?

मधुमंगल--उड़ कर सम्मुख में स्थित दाड़िमबृक्ष में बैठा है।

कृष्ण--तब आओ, प्राणबल्लभा का अन्वेषण करें। (एसा कह कर मारुत् का उपभोग कर) हे धीर ! तुम में धूलि संस्पर्श नहीं है, तुम दक्षिण-दिशा से प्रवाहित हो रहे हो, और बसन्त का आनुकूल्य विधान कर रहे हो, अतः हे सखे मलयानिल ! तुम से प्रार्थना करता हूँ बतलाओ तो मेरी नीलपद्माक्षी राधिका कहाँ है ? ॥ १६ ॥

मधुमंगल--सखे ! गोपन से कहो।

कृष्ण--(भ्रमण कर) हे कुरङ्गि ! ऐसा ज्ञात होता कि-तुमने इस वन की सीमा में रमणीय, नवीना जंगम-सुवर्णलता की समाना श्रीराधिका देखी है। क्यों कि उस राधा रूप गुरु से तुमने माधूर्य्य गर्भित चचल नेत्रलीला-दीक्षा को ग्रहण किया है ॥१७॥

(सम्मुख में दाड़िम वृक्ष को देख कर)

हे शुक ! क्या तुमने अनुपमा पीतकान्तिवाली उस मृगनयना का इस बन में अवलोकन किया है ? जिस का मैं अनुसन्धान कर रहा हूँ।

मधुमगल—वयस्य ! तुम्हारे **प्रश्न** का अनुवाद करता हुआ वह शुक उत्तर दे रहा है कि हे पीतांशुक ! अर्थात् पीताम्बरधारी ! स्फीत कान्ति धारण करने वाली तुम से ढूढ़ी हुई वह मृगलोचना मैं ने आज इस वन में देखी है ॥१८॥

सुकंठी—(निकट में आकर) भर्त्ता की जय हो, जय हो।

मधुमगल– आप क्यों आई हैं ?

सुकंठी—इस प्रश्नोत्तरानुरूप किसी मनुर कथा के श्रवणार्थ।

मधुमङ्गल—प्रश्नोत्तर को क्या आपने श्रवण किया है ?

सुकण्ठी—केवल प्रश्नोत्तर नहीं।

मधुमङ्गल—और क्या है ?

सुकण्ठी—जो कुछ देखा है वह देवी को निवेदन करूँगी।

(ऐसा कह कर चलने लगी)

कृष्ण—(सम्भ्रम से) भद्रे सुकण्ठि ! देवि के मन को कलुषित करने की चेष्टा मत करना। हम से संगीतविद्या में सर्वाधिपत्य वर को ग्रहण कीजिये।

सुकण्ठी—देवी की कृपा से रुद्राणी की गायिकाएं आकर मेरी चरणवन्दना करती हैं, तुम्हारे वर से क्या मिल सकता है ?।

कृष्ण—तुम्हारी इच्छा क्या है ? प्रार्थना करो।

सुकण्ठी—देव ! एक प्रार्थना है।

कृष्ण—निःसङ्कोच आवेदन करो।

सुकण्ठी—इस कन्दरा के बीच में कोई एक चित्रपट है, उसे देखने के लिये मेरी पूजनीया एक विद्याधरी उत्कण्ठित हो रही है। अतः कौस्तुभ आलोक के द्वारा प्रकाश कर अनुगृहीत कीजिये।

कृष्ण—(ईषत् हास्य के साथ भ्रमण करते करते) सखे

कौस्तुभ ! तुम समस्त रत्नमराडली की चूड़ामणि हो। अच्छा हुआ है अच्छा हुआ है क्यों कि विना कहे मेरे अभिलाष को तुमने पूर्ण किया है॥

मधुमङ्गल—हाय हाय ! पर्वत-कन्दरा में मध्यान्ह समय की अपेक्षा से भी अधिक उज्वल आलोक उत्पन्न हो रहा है।

(तदनन्तर राधिका प्रवेश करती है)

राधा—(अपने अङ्ग के प्रति लक्ष कर)
माधवी ने देवी की सज्जादि क्यों भेजी है।

(भ्रमण करती करती श्रीकृष्ण का देख कर) शफरी तो अञ्जलि-मात्र जल चाँहती थी परन्तु उस पर स्वयं नवजलधर धारा-वर्षण कर आनन्द वर्द्धन कर रहा है।

मधुमङ्गल—(कान में) हे वयस्य ! दुष्टा दासीपुत्र वनचारिणी-ने मुझ को वड़ी विपत्ति में डाला है।

कृष्ण—सखे ! कैसी विपत्ति ?

मधुमङ्गल—(रोष के साथ) मेरे को पूछते हो, वांए ओर देखो।

कृष्ण—(देख कर आवेग से) कैसे, यहाँ देवी किस प्रकार आयी है।

राधा—(स्वगत) हा धिक् हा धिक् ! देवी कन्दरा में प्रवेश कर रही है। (ऐसा कह कर अन्तर्हित हो जाती है)

कृष्ण—(स्वगत) निश्चय क्रोधारम्भ की गम्भीरता से देवी प्रच्छन्न हुई है।

मधुमङ्गल—(मृदुस्वर से) हताशे किन्नरि ! प्रिय-वयस्य के प्रति तुम्हारी इस प्रकार शठता उचित है ?

सुकराठो—(स्वगत) देवीनेपथ्य धारण करने वाली सत्यभामा

को देवी मान कर यह भीत हो रहा है। अतः इस के निकट जाकर समस्त निवेदन करूँ॥

(निकट में जा कर जनान्तिक के प्रति)

स्वामिनि! आप से श्रीकृष्ण का देवीभ्रम हो रहा है।

राधा—(मृदुहास्य से) इस मधुमङ्गल से परिहास करो।

सुकण्ठी—आर्य्य मधुमङ्गल! देवी रुष्टा हो कर कह रही है।

मधुमङ्गल—क्या कह रही है?

सुकण्ठी—अन्तःपुर में आगत इस ब्रह्मबन्धु को बाँध कर रखूँगी।

मधुमङ्गल—(भय के साथ) भो सखे! अब तो स्तम्भ की भाँति गम्भीर हो रहे हो।

कृष्ण—सखे! विस्मय से स्तम्भित हो रहा हूँ। क्यों कि यह स्वभाव से दक्षिणा हो कर धीरता का त्याग कर रही है।

(परामर्श कर)

(चिन्तापूर्वक) स्वभाव से धीरजन भी समयानुरोध से कभी अधीर हो जाता है। ऐसा कि सर्वंसहा वसुमती भी क्षमागुण परित्याग कर वहु वार विचलित हो जाती है॥१९॥

सुकण्ठी—(स्वगत) प्रभु के समक्ष धृष्टता-साहस उचित नहीं है। अतः यथार्थ कहती हूँ। (प्रकाश्य से)

आर्य्य! यह देवी नहीं है, सत्यभामा है।

मधुमङ्गल--सखे! तुमने इस दुर्मुखी का कपट प्रलाप सुना है?

कृष्ण--सुकण्ठि! विदर्भनन्दिनी की प्रियता के कारण तुम चपल हो रही हो! अतः तुम्हारे बचनों में दरिद्रता क्यों?

मधुमङ्गल--(संस्कृत से) हे चेटिके! तुम तो विषकण्ठी हो, लोग तुम को सुकण्ठी क्यों कहते हैं? क्या यह ऐसा है कि--अमङ्गल रूपा विष्टियोग को जिस प्रकार भद्रा नाम से अभिहित किया जाता है॥२०॥

कृष्ण--(निकट में जाकर अनुनय के साथ) देवि ! प्रसन्न हों प्रसन्न हों।

राधा--(मृदुहास्य पूर्वक) मैं देवी नहीं हूँ मानुषी हूँ।

कृष्ण--(सहर्ष) सुकण्ठिके ! तुम ने यह जो उपकार किया है उस का प्रत्युपकार मेरे लिये दुःसाध्य हो रहा है।

मधुमङ्गल--ही ही ! हे तुरङ्गमुखि चेटि ! तुम ने क्या यह टेढ़ो विद्या देवर्षि के निकट सीखी है ?

कृष्ण--प्रिये ! निकट में लाकर इस चित्रपट को देखो।

राधा--निश्चय यह नवबृन्दा के गुरु विश्वकर्म्मा का कला-कौशल है।

(नवबृन्दा का प्रवेश)

नवबृन्दा-सखि ! इस विचित्र चित्र का सम्यक्रूप से अवलोकन करो। इस में भली भाँति मथुरासम्बन्धिनी लीलामण्डली अनुक्रम से सन्निवेशित हुई हैं।

मधुमङ्गल—यह तो प्रथम है नन्दमहोत्सव।

नवबृन्दा—इस विचित्र बालक के दर्शन से भीतर बाहर आनन्द पूर्ण स्नेहातिशय से नबनीत निक्षेप कर गोपगण उत्सव कर रहे हैं ॥२१॥

(पुनः तर्जनी के द्वारा दिखा कर)

कौन पवित्र जन पूतना गति लाभ करने में समर्थ होगा ? जो पूतना हरि के कण्ठ संलग्न होने पर हरिणमणि युक्त हारधारिणी हुई है ॥२२॥

कृष्ण—मेरे पादांगुलिदल के द्वारा कुटी एवं भाण्डयुक्त शकट के भग्न होने पर मेरे पिता-माता आँगन में दुःख से कातर हो गये हैं मैं उन का निरन्तर स्मरण करता हूँ ॥२३॥

नबबृन्दा—यह तो तृणावर्त्तरूप-धारी वायु का नित्य विलास है।

कृष्ण—वह दुष्ट तृणावर्त्तासुर ने अपने निर्मित अज्ञान एवं अन्धकार के द्वारा सुहृज्जनों के मन एवं नयन को आवृत कर व्रज में निष्ठुर रूप को प्रकट किया है ॥२४॥

मधुमङ्गल—यह तो गोकुलेश्वरी स्वयं दधिमन्थन कर रही हैं।

राधा—मात: गोकुलेश्वरि ! वन्दना करती हूँ।

(ऐसा कह कर अश्रुत्याग करने लगी)

कृष्ण—(करुण के साथ) महान् कदर्थन रूप बाल्यचापल-समूह से समुद्गत प्रेमाधिक्य के द्वारा माता विह्वल हो गई उन माता का अवलोकन कर आज मेरा हृदय उत्तप्त घृत के समान पिघलता जा रहा है ॥२५॥

नवबृन्दा--गुरुदेव ने इस विषय में एक पद्य लिखा है।

यथा—हे व्रजेन्द्रमहिषि ! जो बलवान मुकुन्द ने अनर्गल सत्त्वादि गुणत्रय के द्वारा त्रिजगद्वर्त्ति चतुर्म्मुख प्रमुख प्राणियों को बाँध कर रखा है उन मुकुन्द को तुमने सूक्ष्म रज्जुओं से बाँधा है, अतः तुम्हारी प्रभावावली को हम क्या कह सकते हैं ? ॥२६॥

मधुमङ्गल--यह यमलार्ज्जुन-भञ्जन है ॥

नवबृन्दा--गुह्यक द्वय श्रीकृष्ण के उदूखल-बन्धन मोचन न कर क्यों चले गये ?

कृष्ण—(अश्रुयुक्त नयन से)

हे सखि ! माता यशोदा ने वात्सल्यमण्डल रूप दृढ़तररज्जु के द्वारा मेरा जो दृढ़तर बन्धन-निर्माण किया है, परमबन्ध विमोक्षण-कारी मैं उस के मोचन में असमर्थ हो रहा हूँ । दूसरे की बात क्या करना है ॥२७॥

नवबृन्दा—तुम वत्सगण को अमृतदान करते रहते हो, अतः वत्सासुर को अमृतदान करना (मार कर मोक्ष देना) तुम्हारा उपयुक्त हो रहा है। परन्तु अमित्रगण का वक राहित्य विधान कर

किस प्रकार मित्रगण को अवक्रता का (पालन) बिस्तार कर रहे हो ॥२८॥

कृष्ण--(राधा को देख कर) हे शशिमुखि! यमुना तटभूमि में वत्सचारण रूप महामहोत्सव से जिन दिनों को अतिवाहित किया है आज उन दिवसों के लिये मेरा चित्त अत्यन्त स्पृहायुक्त हो रहा है ॥२६॥

नवबृन्दा--उन समस्त गोपरमणी तथा गौओं को चरणावलो को हम सब अबनत शरीर से मङ्गल के लिये प्रणाम करती हैं कि जिन के अन्त:प्रणय के द्वारा मधुर क्षीरपान के लिये लुब्ध होकर क्षीरसागर अधिपति आनन्द से पुत्रभाव धारण कर रहे हैं ॥३०॥

कृष्ण--हे पद्माक्षि! सम्मुख में पर्वतगुहा के समान, गोपवालकों के क्रीड़ास्थल स्वरूप सर्परूप अघासुर का मृत शरोर बार बार देखा जा रहा है। उस के मुखादि छिद्रमार्ग में सर्वदा वायु प्रवेश कर रहा है जिस से वह उदर पूरक (भरा पेट सा) के समान प्रतीत हो रहा है ॥३१॥

नवबृन्दा--देखो देखो, हे सखि! चतुर परमेष्ठी ब्रह्मा अपने चार मुख से प्रकाशित वेदचारों के सारभाग के द्वारा जननयनानन्दकारी अपने जनक श्रीकृष्ण का स्तव कर रहा है ॥३२॥

मधुमंगल—इस सुगन्धि तालवन को देख कर मानो जीवन प्राप्त हा रहा है ॥

नवबृन्दा—(बलरामजी को देख कर) तुम बडे अद्भुत हो क्यों कि धेनुओं के पालक होकर भी धेनुक का बध किये हो। ताल-ध्वज होकर अत्युच्च तालवृक्ष को भांगने में कौतुकवान हो ॥३३॥

कृष्ण—यह भाण्डीरमार्ग में आर्य्य को अतिशय विक्रम घोषणा-कारिणी प्रलम्ब-पशु की मारणवेदी है।

नवबृन्दा—(स्वगत) ज्ञात होता है कि-राधिका को दुःख होगा

जान कर देव ने कालियदमन लीला नहीं दिखलाई।

कृष्ण—हे मनोहरकण्ठि ! देखो, सम्मुख में मुञ्जाटवी शोभा पा रही है। यहाँ शरपुष्प के साथ दावानल आना देख कर आभीर-समूह भीत होकर पंकजमाला के समान मेरे चारों ओर से घिर गया है ॥३४॥

नवबृन्दा—आगे यह वस्त्रहरण-तीर्थ (चीरघाट) है।

कृष्ण—प्रिये ! विशाखापृष्ठ में मस्तक के पास कृताञ्जलि हो कर कौन अबस्थान कर रही है मैं नहीं पहिचान रहा हूँ।

राधा—(लज्जा के साथ आत्मगत) मेरे को चित्रित जान कर भी परिहास कर रहे हैं (प्रकाश्य में) यह पद्मा है।

कृष्ण—पद्माक्षि ! पद्मा के वांए ओर ?

राधा—(असूया के साथ) अब अपने गुण-विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

कृष्ण—हे मुग्धाँए ! मस्तक में आंजल बाँध कर वस्त्र लो। मेरी इस बात पर तुमने भ्रू युगल कुञ्चित करके जो दृष्टिपात किया है उस से तुम्हारा अधर स्फुरित हो उठा, मन्दहास्य व्यक्त हो गया, एव रोदन के साथ असूया तथा भ्रुभंग प्रकाश प्राप्त हुआ। मैं तुम्हारे उस समय के मुख का स्मरण करता हूँ ॥३५॥

राधा—मस्तक में भांड (बर्त्तन) रख कर ये सब कौन खड़ी हैं?

नवबृन्दा—यज्ञपत्नियाँ होंगी।

कृष्ण—स्वभावसिद्ध मन्दस्मित एवं नेत्रयुगल के स्वाभाविक चांचल्य का संगोपन करने पर भी द्विजपत्नियों को राग-बन्हि धूमायित हो गई उस से एक अभूत पूर्व गति अंकुरिता हुई ॥३६॥

मधुमंगल—(अभिलाषा के साथ संस्कृत में) हे प्रिय-वयस्य ! क्या तुम्हें स्मरण है, द्विजपत्नियों ने आस्वादन के लिये नाना प्रकार भोजन द्रव्य प्रदान किया था, उन में से मयूरपुच्छ के समान गोला-

कार कुण्डली-पटलवाला एक आश्चर्य्य द्रव्य (जिलेपी) का हम सब ने भोजन किया है ॥३७॥

नवबृन्दा--देखो, यह गोवर्द्धन-धारण है ।

राधा—(संस्कृतभाषा में) समस्त गोपियों के हृदय - पर्वत मानो एक ही समय अपूर्वभाव से दो भाग से विभक्त हो उठा, एक तो पर्वत के गुरुत्व-विवेचना में सन्तप्यमान, और दिवारात्र प्रिय-दर्शन रूप महोत्सव से आनन्दयुक्त ॥३८॥

नवबृन्दा--गिरिमेखला में यह पद्य लिखा गया है । यथा-- ईषद् उद्गत गोपियों का स्तन-परिसर के प्रति बार बार दृष्टिपात करने पर गोवर्द्धन पर्वत कुछ चलायमान हो गया, उस से समस्त गोपवृन्द भयार्त्त हो कर स्तुति करने लगे । सम्मुख में हास्यमुख बलदेवजी को देख कर मधुसूदन नतवदन हो कर जय प्राप्त हो रहे हैं ।

कृष्ण--(शैलेन्द्रकन्दरा देख कर हास्यवदन से) हे पद्माक्षि ? तुम्हें स्मरण है कि--कपट द्युतक्रीड़ा में तुम पराजित हो गई । तुम ने सखी के साक्षात् में यह प्रण किया था कि जो पराजित होगा वह दो बार आलिंगन दान करेगा ॥३९-४०॥

राधा--(लज्जा के साथ आगे दृष्टि दे कर) क्यों इस पर्वत-शिखर में उपविष्ट हम दोनों के गले में हार नहीं दीख रहा है ?

कृष्ण—क्या तुम को विस्मृत हो गया है कि तुम्हारे कुण्ड-तीरस्थ निकुञ्जगृह में हम दोनों मिलन परिश्रम से निद्रित हो गये थे । ललिता ने अलक्षित में आकर हम दोनों के हार का अपहरण किया था ॥४१॥

नवबृन्दा—विपक्षियों को दर्शन मात्र से भवबन्धन से मुक्त करते हो अतः वरुणबन्धन से नन्दमहाराज को जो मुक्त किया उस में विस्मय की बात क्या रही ॥४२॥

(ऐसा कह कर आगे अवलोकन कर)

पृथिवी में भारतवर्ष उत्तम है, उस में मधुपुरी श्रेष्ठा है, मथुरामण्डल में वृन्दावन श्रेष्ठ है, उस में यमुनापुलिन श्रेष्ठ है, उन में रासस्थली अधिक श्रेष्ठ है, क्यों कि जहाँ गोपिका एवं श्रीकृष्ण के चरणों की परिचय प्राचुर्य्य-युक्त रेणु विराजमान हैं जो कि नारदादि महामुनियों के मनोराज्य में अर्च्चित हैं ।।४३।।

राधा—(चमत्कार के साथ) आश्चर्य्य ! वह वेणुशब्दमाधुरी सुनी जा रही है ।

(ऐसा कह कर अत्यन्त आनन्दपूर्वक कुछ पद गमन कर उन्माद के साथ) हे मातः ! वन में जगमोहन-कारिणी वंश ध्वनि का श्रवण कर मैं उद्घूर्णाभर से चञ्चलचित्त हो कर जाने को प्रवृत्ता हो रही हूँ । तुम यदि द्वार पर स्थूल अर्गल स्थापित करती हो तो उस से क्या होगा ? परन्तु किस प्रकार मेरी प्राणनिर्गम पथ की सीमा पर अर्गल रखने में समर्थ हो सकती हो ? ।।४४।।

(ऐसा कह कर उद्घूर्ण ग्रस्त हो गई)

कृष्ण—(औत्सुक्य के साथ) अहो ! रास नामक यह अक्षर द्वय जहाँ से उत्पन्न हुआ है उस शब्द के श्रवणमार्ग में आरोहण करने पर हम दोनों के मन प्रणयकेलिसिन्धु में निमग्न हो रहा है, मस्तक प्रमोदचक्र में निविष्ट हो कर घूर्णायमान हो जाता है हो जाता है ।।

नवबृन्दा—सखि ! यह रासोत्सव चित्रगत होकर भी तुम्हारे सम्बन्ध में सत्य हो रहा है ।

राधा--हा धिक् धिक् यह क्या चित्र में परिणत हुआ है ?

कृष्ण--हे राधे ! केलिकुञ्जों में नवमदन-विनोद से परितोष प्राप्त होने पर लज्जा दूरीभूत हो गई । जो समस्त रात्रियाँ निमेष की भाँति अतिवाहित हुई हैं उन समस्त शारदीय रात्रियों का स्मरण

हो रहा है क्या ?

(ऐसा कह कर उत्कम्प प्रकाश पूर्वक)

हे राधे ! यमुना-उपवन में आप सब के साथ बिविधक्रीड़ा में अन्य समस्त भूल गया था, क्या पुनः यह अतुल उत्सव-पूर्ण दिवस-समूह उपस्थित होगा ?

नवबृन्दा—इस अम्बिकावन में सुदर्शन प्रसादतीर्थ बिराजमान है। श्रीकृष्ण ने इस सुदर्शन को सर्पशरीर से मुक्त कर विद्याधर देह प्राप्त कराया है ॥४८॥

मधुमङ्गल—यह वह शङ्खचूड़ है।

राधा—(सभय) रक्षा करो, रक्षा करो।

(ऐसा कह कर श्रीकृष्ण को आलिंगन करती है)

कृष्ण—(आलिंगन-सुख आस्वाद कर) उत्तम, उत्तम, रे भइया शङ्खचूड़ ! मैं ने तुम को सङ्घर्ष में विनष्ट किया है । परन्तु उस पर भी तुम अपूर्व आनन्द दे रहे हो ॥

नवबृन्दा—देखो देखो, जिस अरिष्टासुर के लीलावश शिरः कम्पन करने पर शम्भु भीत होकर अपने वृष को मन्दराचल की गुहा में ले जाते हैं अहो आश्चर्य्य यह है कि उस दैत्य श्रेष्ठ अरिष्ट को श्रीहरि कौतुक वश क्रीड़ा करते करते वध करने लगे ॥४९॥

(पुनः दिखा कर)

हे कृष्ण ! जो बाहु नीलकमलनयना ब्रजबालाओं के कन्धे पर प्रयुक्त होकर नीलकमल की भाँति कोमल एवं स्निग्ध करके प्रतीयमान होता है वह बाहु आज केशीदानव के प्रति प्रयुक्त होकर बज्र की भाँति व्यवहार कर रहा है ॥५०॥

कृष्ण—यह व्योमासुर को वरण करने वाली मुक्तिकन्या का क्रीड़ाक्षेत्र है अर्थात् यहाँ व्योमासुर वध हुआ था ॥

मधुमङ्गल--यह अक्रूर—(ईतना कह कर कथा शेष न करना)

राधा—हाय हाय ! क्या करुँगी ? (ऐसा कह कर मूर्च्छित हो जाती)

कृष्ण--(सम्भ्रम के साथ आलिङ्गन कर) कोमले ! कातरा मत हो, यह चित्रमात्र है ।

राधा--(भावगोपन कर) अहो ! इस प्रसङ्ग को क्या दारुणता है । जो चित्रित होकर भी सन्ताप दे रही है ॥

नवबृन्दा--यह मथुराप्रस्थान का उपक्रम है ॥

कृष्ण--नवबृन्दे ! अक्रूरयात्रा की बात को विरमित करो, इसके आगे अन्य चित्र का अनुसरण करो, क्यों कि प्रिया के करुणविलाप मेरे स्मृतिपथ में उपस्थित हो कर अन्तरात्मा को विदीर्ण कर रहा है ॥५१॥

नवबृन्दा--जिस ने राजकीय रजक का वध किया है, जिस ने तन्तुवाय को वर दान दिया है, और जिस ने दमनकमाला को धारण किया है उस सुदाम के प्रियदेव को मैं नमस्कार कर रही हूँ ॥५२॥

कृष्ण--(हँस कर) प्रिये ! देखो देखो, ताम्बुलिकों का अनुराग । जिस से मैं भीतर-बाहर दोनों प्रकार से रञ्जित हो रहा हूँ ॥

राधा--इस चित्र को क्यों छोड़ते हो ?

कृष्ण--(स्वगत) अब गोपन नहीं कर सका, क्यों कि यह तो कुब्जा है ।

राधा--नवबृन्दे ! इस राजमार्ग में गोकुलनाथ के पीतवस्त्र का आकर्षण कौन कर रही है ?

नवबृन्दा--(कुछ हँस कर मुख को नीचे करने लगी)

कृष्ण--(कुछ हँस कर) यह दूती अत्यन्त निपुणा है, यद्यपि तुमने नियुक्त नहीं किया है तो भी यह तुम्हारे प्रति स्नेहपरायणा

हो कर बृन्दावन ले जाने के लिये मेरा वस्त्र धारण कर आकर्षण कर रही है ॥५३॥

राधा--इस ने तुम्हारी कीर्त्तिमण्डली के द्वारा ब्रह्माण्ड परिपूर्ण किया है, अब आप कितने छिपा सकते हैं ?

नवबृन्दा—देखो देखो, हरिसेवा समस्त धर्म से श्रेष्ठ है ऐसा मान कर बनमाला में आसक्ति कर अलिकुल मदजल से पुष्ट गुरुतर करीन्द्र का त्याग कर रहे हैं ॥५४॥

अहो ! देखो ! कृष्णरूप मेघ मल्लमरालगण को भय उत्पादन कर जगत का ताप निवारण कर रहा है । यद्यपि वह जगत् का जीवनदायक है तो भी किसी प्रकार से कंस को कल्याण प्रदान नहीं कर रहा है ॥५५॥

राधा—यह कौन है ? जिस के केश को खींच कर उच्चमञ्च से केशव भूमि पर गिरा रहे हैं ।

नवबृन्दा—यह वह दुष्ट कंस राजा है ।

राधा—(आनन्द के साथ) मेरा अत्यन्त प्रिय-साधन हुआ है ।

कृष्ण—निश्चय रात्रि का पहला याम अतिवाहित हो गया है ! कन्दरा के बाहिर छाया-विस्तार संकुचित हो रहा है । आइये, हम सब यमुनातट में चलें ॥

(ऐसा कह कर सब का बाहर चला जाना)

कृष्ण—यहाँ अति निकट में मेरी प्रतिमूर्त्ति है जिस के उपकण्ठ में मेरी महाविलास-विद्या की सिद्धभूमि रूप तमाल-रसाल की अन्तरालवर्त्तिनी कुञ्जशालिका विद्यमान है ।

(बांई ओर दृष्टिपात कर)

अहो माणिक्यकुट्टिम के तट पर और यमुना के प्रवाह में एवं कौस्तुभमणि में तुम्हारा मुख-मण्डल प्रतिबिम्बित हो रहा है । जो

एक हो कर भी वनभूमि में नाना चन्द्रावली को प्रकट कर रहा है ॥५६॥ (माधवी के साथ चन्द्रावली प्रवेश करती है)

चन्द्रावली—सखि ! विरहबिभ्रान्ता मैं बृन्दावन में प्रवेश कर रही हूँ । क्यों कि इस समय इन्द्रनीलमणि प्रतिमा के विना मेरा अन्य कोई अवलम्बन नहीं है ॥

माधवी—राजनन्दिनि ! मैं ने ऐसा सुना है कि भर्त्ता ने शुभ-क्षण में यात्रा की परन्तु अब तक ब्रह्मलोक में नहीं पहुँचे, यहाँ ही विराजमान हैं ॥

चन्द्रावली—सखि ! सत्य कह रही हो, क्यों कि उन का अङ्ग-सौरभ विस्तारित हो रहा है । वे अवश्य यहाँ ही होंगे ॥

कृष्ण—(कुञ्जदेहली में गमन कर) प्रिये ! इधर आओ, हम क्षण काल विश्राम सुख का अनुभव करें ।

नवबृन्दा—(स्वगत) प्रणयज असूया के द्वारा भ्रूद्वय वक्र करके नम्रमुखी राधिका आम्रबृक्ष के अन्तराल मे क्यों अवस्थित होने लगी ?

चन्द्राबली—(ग्रीवा उठा कर) सखि ! देख देख आर्य्यपुत्र कुञ्जगृह द्वार में अवस्थित हैं ।

कृष्ण—यहाँ निभयता से हमारा मिलन होगा, क्यों कि विदर्भ-राजनन्दिनी अब द्वारका में अवस्थान कर रही है ॥५७॥

चन्द्रावली—माधवि ! आर्य्यपुत्र ने निश्चय मुझे देखा है क्यों कि "विदभअङ्गभू" ऐसा कह रहे हैं ॥

माधवी—तुम तो लतान्तर में छिपी हुई हो, तुम्हारो दर्शन सम्भावना कहाँ है ? ऐसा बोध होता है वे उत्कण्ठित होकर भावना के द्वारा तुम्हें देख रहे हैं । अतः तुम एकाकिनी होकर अल-क्षितरूप में निकट में गमन कर उन को आनन्दित करो ॥

कृष्ण—चञ्चल-लोचना यह गौरी रुक्मिणी (अर्थान्तर में

स्वर्णमयी) हारलता की भाँति गुण के द्वारा उज्वलस्वरूपा होकर मेरे हृदय में अर्पिता होने के लिये उपयुक्ता होकर कण्ठ तट में क्या संलग्ना नहीं होगी ? ।५८।

चन्द्रावली—(अग्रसर होकर कृष्ण का अपांगदृष्टि से अवलोकन कर सम्मुख में अवस्थान करने लगी)

कृष्ण—(विस्मय के साथ आनन्द से मत्त हो कर) अहो ! आश्चर्य ! तुम तो रसालवृक्ष के अन्तराल में छिपी हुई थी परन्तु तमालमूल सेकै से आई ।

चन्द्रावली—(सभय से नवबृन्दा-मुख के प्रति देखने लगी)

नगबृन्दा--देव ! देवी साक्षात् रूप में यहाँ विराजमाना है।

कृष्ण--नवबृन्दे ! केवल वेश के द्वारा नहीं किन्तु सकल्प के द्वारा, क्यों कि यह उस प्रकार गम्भीरता का अवलम्बन कर रही है ॥

चन्द्रावली--(स्वगत) इस प्रकार वाक्य से मैं अत्यन्त सन्दिग्धा हुई हूँ।

कृष्ण—(नवबृन्दा को देख कर) सत्यभामा मुझे क्यों ?

(इस अर्द्धोक्ति में नवबृन्दा चक्षुः सङ्कोचित करने लगी)

चन्द्रावली—(खेद के साथ धीरे धीरे) हूं प्रेम के गौरव को जाना ।

कृष्ण—(अवलोकन कर स्वगत) हाय ! क्या वह देवी है ? तो सम्बरण करने के लिये चेष्टा करूँ ॥

(प्रकाश्य में) देवी अकोपना होकर भी क्यों आज प्रसन्ना नहीं हो रही है। इस का कारण न जान कर मेरा हृदय सद्य ही व्यथित हो रहा है ॥५६॥

चन्द्रावली—माधवि ! तुम कहाँ हो ?

माधवी—(निकट में आकर) यह मैं हूँ।

कृष्ण—(सशङ्क आत्मगत) हे सखे ! हे बालरसाल ! तुम अपने शरीर को इस प्रकार वढ़ाओ कि जिस से तुम्हारे अन्तराल में अवस्थित उस सुन्दरी को रुक्मिणी नहीं देखेगी ॥६०॥

माधवी—राजनन्दिनि ! रसालमूल में अपने द्वितीय शरीर का दर्शन करो॥

चन्द्रावली—(भली भाँति देख कर) यह उपयुक्त हुआ।

कृष्ण—(स्वगत) इस सहकार से कोई सहायता नहीं मिली है, अब तो छल का सहारा लेना होगा।

(प्रकाश्य से) देवि ! चञ्चल नेत्रबाला वदन को उठाओ, तुम्हारे इस मुखकमल को देख कर मृगलाञ्छन चन्द्र लज्जित हों, इस मलिन मुखचन्द्र को देख कर वड़ा दुःख हो रहा है क्यों कि तुम मेरे जीवन से अधिका हो ॥६१॥

माधवी—देव ! तुम्हारे प्रेम-कोमल अक्षरों की अभिरूपा (योग्या) मत समझो, यह सत्या नहीं है।

कृष्ण—उत्तम, माधविके ! तुमने मेरी हृदय शंका निरस्त की। इन्द्रजाल में अभिज्ञा नवबृन्दा ने इस मायामयी देवीमूर्त्ति का निर्माण किया है। और रसाल-मूलवर्त्ति मूर्त्ति सत्या है एसा ज्ञात होता है।

(अतः आम्रमूल के निकट गमन कर अनुनय के साथ)

हे कुण्डिनेश्वरसुते ! हृदय के सन्तोष रूप अमृत के द्वारा प्लावित होकर तुम विशुद्धा हो रही हो, इसीलिये अतःपुर से स्वयं यहाँ आई हो। असमय में मेरे प्रति क्यों प्रवल मानमुद्रा का बिस्तार कर रही हो ? ॥६२॥

नवबृन्दा—देव ! माधवी के पार्श्व में देवी अवस्थित हुई है।

कृष्ण—नवबृन्दे ! तो क्या रसालमूल में देवी की मायामयी मूर्त्ति है ?

नवबृन्दा— मायामयी नहीं है यह देवी की सत्यभामा नाम्नी कोई प्रियसखी है।

कृष्ण—अहो ! देवी की करुणामृतभरणा की कैसी गंभीरता ! क्यों कि उस के द्वारा सखीजन को सारूप्य प्रदान करने से मैं अत्यन्त विभ्रान्त हो गया ॥

राधा—(स्वगत) यहाँ से चला जाना मेरा एक मात्र उपाय है।

(ऐसा कह कर नवबृन्दा के साथ निष्क्रमण)

चन्द्रावली—(उत्प्रास के साथ मृदुहास्य करके) माधवि ! जिस के बीच में कज्जल की भाँति श्यामता है, जो नवी। पल्लव के समान उज्वल है, उस गुंजाफल के समान अधर का दर्शन कर मैं विशेष आनन्दित हुई ॥६३॥

कृष्ण—देवि ! अन्य प्रकार की शंका मत करना, सुगन्धी शैलशिला खण्ड का आघ्राण करते उस की कस्तुरी लग गयी होगी ॥

चन्द्रावली— देव ! कौमारकाल से मैं ने सुन्दर अध्ययन किया है, अतः अध्यापन-परिश्रम की आवश्यकता नहीं।

माधवी—राजनन्दिनि ! अवसर-क्रम से ईश्वरों (बडों) की उपासना होती है। हमारी अनवधानता के हेतु नीति-प्रबन्ध का जो अतिक्रमण हुआ है उस लिये द्वारकानाथ से क्षमा प्रार्थना करो।

कृष्ण—माधवि ! तुम्हारी प्रकृति अतिविचित्रा है, क्यों कि तुम सर्पी भाव का अवलम्बन कर नकुली का चरित्र प्रकाश कर रही हो। (ऐसा कह कर अञ्जलिजाड़ कर)

हे प्राणाधिके ! हे प्रियतमे ! हेदे वि ! आज मेरे प्रति प्रसन्ना हो। राहु सहसा चन्द्रकला का स्पर्श नहीं करता है। अतः चन्द्रावली के स्पर्श की बात का कहना ही क्या है ॥६४॥

माधवी—इस प्रकार सम्बोधन में प्रयोजन नहीं है। क्यों कि यह सत्यभामा नहीं है ।

चन्द्रावली—देव ! तुम्हारी सङ्कोचता को देख कर दुःखी हो रही हूँ। अतः प्रसन्न होकर निर्भयता से क्रीड़ा करो, यह मैं अन्तःपुर के लिये जा रही हूँ।

(ऐसा कह कर परिजन के साथ प्रस्थान)

कृष्ण—देवी तो अन्तःपुर को चली गई है, तब हम भी चलें

(ऐसा कह कर भ्रमण करते करते)

श्रीराधिका मेरे मुख के प्रति अपांग तरङ्ग निक्षेप पूर्वक क्रीड़ा प्रसङ्ग भंग से विवर्णमुखी होकर देवी को देख मस्तक अवनत कर आम्र-वृक्ष में छिप कर मेरे मन का आश्रय करने लगी ॥६५॥

(ऐसा कह कर प्रस्थान करने लगे)

(सब का प्रस्थान)

यहाँ ललितमाधवनाटक के चित्रदर्शन नामक
नवम अङ्क समाप्त हुआ ॥

दशमोऽङ्क

(अनन्तर युवती दोनों का प्रवेश)

तुलसी—सखि मालति ! कोई मङ्गलवार्त्ता तुम्हारी कर्णगोचर हुई क्या ?

मालती—सखि तुलसि ! कैसी मङ्गलवार्त्ता ?

तुलसी—भगवती पौर्णमासी ने कुटुम्बों के साथ गोष्ठेश्वर नन्द महाराज को लेकर सौराष्ट्रदेश में प्रवेश किया है ?

मालती—(आनन्द के साथ) सखि ! माधवीचतुःशाला में जा कर इस शुभवृत्तान्त को राधिका के लिये सुनाऊँगी।

तुलसी—सरले ! राधिका अब माधवी-चतुःशाला में नहीं है।

मालती—तब वह कहाँ है ?

तुलसी—उस चित्र-दर्शन दिवस में देवी केलिलक्षण देख कर परिहास करती उस को अन्तःपुर में ले गई ।

मालती—परिहास कैसा ?

तुलसी—भगिनि ! बोध होता है शुकपक्षियों ने समुन्नत दाड़िम-बुद्धि से स्तन पर और बिम्बफलज्ञान से अधर पर क्षत किया है । मयूरों ने फणिबुद्धि से तुम्हारी यह मणिमयी माला विदीर्ण की । अतः इस प्रकार से तुम्हारा बनवास हृदय को व्यथित कर रहा है ॥१॥

मालती—हँसने दो, परन्तु तो भी यह कनिष्ठा होकर सौभाग्य से गरीयसी मानी जाएगी ॥

तुलसी—सत्य कहती हो, देख देख, आज श्रीकृष्ण कौस्तुभ के हजारों किरणों से सूर्यदेव को तिरस्कृत कर राधासङ्ग लाभ के लिये युक्ति कर सौधपृष्ठ में विराजमान हुए हैं ॥२।
अतः आओ हम अपने अपने घर चलें।

(ऐसा कह कर प्रस्थान)

(विष्कम्भक हुआ है)

(तदनन्तर सुवर्णदण्ड पर अवस्थित शुकपक्षी को हाथ में ले कर विदूषक एवं उस के उपास्यमान श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

कृष्ण—अहो मेरी प्रिया स्नेह से उद्दीपिता होकर भी विदर्भसुता के द्वारा अन्तःपुर में अवरुद्धा हो गई । जो कलसी से आवृत प्रदीप-शिखा की भाँति मेरे मनो मालिन्य दूर करने में असमर्था हो रही ।

मधुमङ्गल—ऊँचे स्वर से मत कहो क्यों कि यहाँ देवी के परि-जन चारों ओर भ्रमण कर रहे हैं ॥

कृष्ण—सखे कौस्तुभ ! तुम्हारी ज्योति से मेरी यहाँ विद्य-मानता का अनुमान कर सकती है । अतः आज मृदुता का अवलम्बन करो ॥

(नवबृन्दा का प्रवेश)

नववृन्दा—देव ! देवी ने मुझे भेजा है।

कृष्ण—नवबृन्दे ! किस लिये ?

नवबृन्दा—कीरराज के लिये।

कृष्ण—सखे ! शुकपक्षी को दे दो।

मधुमङ्गल—(नवबृन्दा के हाथ शुकपक्षी का दण्ड अर्पण करने लगा)

कृष्ण—(उत्कण्ठा के साथ) सखि नवबृन्दे ! परिमल से उज्वल एवं मनोहर-अङ्गवाली, अन्तःपुर में सत्राजित्कन्या करके विख्याता, कर्णालम्बी रत्नकुण्डल के किरणों से शोभित गण्डवाली उस राधिका को देखने के लिये मेरा मन उत्कण्ठित हो रहा है।'४

नवबृन्दा—यह विषय दुर्लभ प्रतीयमान हो रहा है। उस देवीने वहु प्रकार वञ्चित कर अपना चातुरी विद्या का अध्यापन कर लिया है अतः गभीर अनुरागप्रकटन छल से सत्यभामा को अपनी छाया की भाँति कर अपने पास रख लिया है।

मधुमङ्गल-आश्चर्य ! सत्य ही यह कौस्तुभ अतिचञ्चल है क्यों कि निषेध करने पर भी हर्म्यपृष्ठ को आलोकित कर रहा।

कृष्ण—सखे ! यह कौस्तुभ-किरण नहीं है। अतः इस को तिरस्कृत मत करो।

नवबृन्दा--आर्य्य मधुमङ्गल ! सत्यभामा को सखा पिङ्गला स्यमन्तक मणि ले कर इधर आ रही है।

(पिंगला प्रवेश करती है)

पिंगला--(कृष्ण को देख कर लज्जा के साथ) देव ! स्वामी सत्राजित् ने राजनन्दिनी सत्यभामा को देने के लिये इस मणीन्द्र को भेजा है। (ऐसा कह कर श्रीकृष्णहस्त में देती है)

कृष्ण--(मणि को हृदय में रख कर आनन्द से) हाय ! प्रिया

के परिवार के संगम से उस के संगोपाय को प्राप्त हो रहा हूँ।

मधुमङ्गल--किस प्रकार ?

मैं युवतीवेश और कलाविलास को धारण कर मणि हाथ से पिङ्गला का अनुसरण कर देवी के द्वारा भी सादर अभ्यर्थित होकर रात्रि में उस मृगाक्षी के साथ विहार करूँगा ॥५॥

नवबृन्दा--सत्य, यह विधान दुर्लक्ष्य है।

कृष्ण--नवबृन्दे ! सन्ध्या निकट में है, तुम अन्तःपुर में प्रवेश करो, हम निर्जन में स्त्रीवेश धारण करते हैं ॥

(ऐसा कह कर मधुमङ्गल एवं पिंगला के साथ प्रस्थान)

नवबृन्दा--(आगे चल कर) यह तो देवी परिजनवर्ग से परिवृता हो कर सत्यभामा को दक्षिणपार्श्व में लेकर मणिमन्दिर में विराजमान है।

(तदनन्तर उस प्रकार से चन्द्रावली प्रवेश करती है)

चन्द्रावली--(नर्महास्य के साथ) सखि सत्ये ! मैं अत्यन्त गौरव से तुम्हारा इस अन्तःपुर में लालन-पालन कर रही हूँ। तौ भी तुम वनमाला के अर्थात् वनश्रेणी के (पक्षान्तर में) श्रीकृष्ण को वनमाला के साथ एकत्र वाससुख का स्मरण कर क्यों हरिणी की भाँति उत्कण्ठिता हो रही हो ? ॥

राधा--(अभिलाषा के साथ हास्य पूर्वक) देवी ! समस्त सुख के आवास स्थान इस अन्तःपुर में मेरे मन में वनमाला का संगाभिलाष क्यों होगा ?

नवबृन्दा--(निकट में आकर) देवी ! कामरूप देश से आनित जिस शुक पक्षीराज की कथा तुमने सुनी है वह यह शुकपक्षी है।

चन्द्रावली--(आनन्द के साथ) मैं सन्तुष्ट हुई हूँ क्यों कि इसका आकार अति सुन्दर है।

नवबृन्दा--देवी ! इसकी बुद्धि अति तीक्ष्ण है । अतः इसका स्वभाव भी अति सुन्दर है ।

चन्द्रावली--हे कञ्चुकी ? पके दाड़िम फल के द्वारा इस शुक-राज को आनन्दित करो ।

कञ्चुकी--देवी ! आपकी जैसी आज्ञा ।

(ऐसा कह कर शुकपक्षी के साथ प्रस्थान करती है)

(तदनन्तर स्त्रीवेषधारी श्रीकृष्ण एवं पिंगला के साथ अनुगम्यमान होकर मधुमङ्गल प्रवेश करता है)

मधुमङ्गल--(परिक्रमण कर) देवी ! सत्यभामा को स्यमन्तक-मणि दान करने के लिए सत्राजीत ने इन रमणिओं को भेजा है ।

चन्द्रावली--(श्रीकृष्ण को देखकर स्वगत) अहो ! आश्चर्य सौन्दर्य है यह उज्वल श्यामवर्णा सुन्दरी कौन है जो कि कान्तिसमूह से मेरे अलिन्द को इन्द्रनीलमणिमय कर रही है ।

नवबृन्दा—देवी ! यह सौभाग्य-भागिनी रथाङ्गी नामक सत्य-भामा की वयस्या है ।

राधा—(कृष्ण को पहिचान कर हास्य करने लगी) माधवी-आर्य मधुमङ्गल ! यह श्यामला भली भाँति अवगुण्ठता होकर नवीन वधू की भाँति क्यों लज्जिता हो रही है ।

पिंगला—सखि ! इसकी प्रकृति अति सङ्कोचशील है ।

नवबृन्दा—(देवी को देख कर) यह रथाङ्गी बार बार उत्सुका हो रही है । तुम्हारे सम्मुख अपने सङ्गी के साथ बोलने में लज्जिता हो रही है । अतः अपने प्रियजन की सङ्गाभिलाषिणी सत्यभामा को स्वर्णमन्दिर में भेज दो ॥६॥

चन्द्रावली—सखि सत्ये ? स्वर्णमन्दिर में जाकर इस रथाङ्गी को आलिङ्गन करो ।

राधा—(मृदु हँसकर) जैसो आज्ञा।

(कृष्ण के साथ सपरिवार प्रस्थान करने लगी)

चन्द्रावली—माधवी ! मैंने सुना कि भगिनी राधिका के निकट सूर्यविम्ब के समान एक मणिरत्न है।

(नेपथ्य में शुकपक्षो श्रीकृष्णोक्त "स्नेहेन दिप्ता" इस पद्य का पाठ करने लगा)

चन्द्रावली—(नेपथ्याभिमुख में अवलोकन कर) यह शुकपक्षी क्या पाठ कह रहा है सुनूँ।

(वेषगृह में "अद्य प्रियां परिमलोज्वलरम्यगात्राम्" इत्यादिश्लोक पाठ करने लगा)

चन्द्रावली—(खेद के साथ) सखि ! सुनने की वात मैंने सुनी। (पुनः नेपथ्य में) "पिङ्गलामनुसृत्य मणिसङ्गी" इत्यादिश्लोक पाठ होना)

चन्द्रावली— माधवी ! तुमने तो सुना है क्या ?

माधवी—केवल सुना नहीं देखा भी है।

चन्द्रावली—सखि ! यदि सत्या अन्तःपुर में वास करती है तो मेरा मङ्गल कहाँ है। अतः किसी उपाय से मैं इसको कुण्डीनपति के घर भेजती हूँ ॥७॥

माधवी— राजनन्दिनी ! अच्छी युक्ति की है।

चन्द्रावली—आश्चर्य, वञ्चनविद्या का कैसा वैलक्षण्य है क्यों कि विशेष सावधानी से भी हम सब वञ्चित हुई हैं। अतः आओ स्वर्णमन्दिर में चले। (प्रस्थान)

(तदनन्तर श्रीकृष्ण प्रवेश करते हैं)

श्रीकृष्ण—(आनन्द के साथ) हे सुन्दरी ! चञ्चल चकोर के चमत्कार उत्पन्न करने वाला नयनयुगल को किंचित् उन्नमित करो

और सुधाकर के माधुर्य तिरस्कार में निपुण श्रेष्ठ हास्य-सुधा का वर्षण करो ॥८॥

राधा—(लज्जा के साथ) सुन्दर ! केवल मुख में प्रिय इस प्रकार वचन का प्रयोजन नहीं। (संस्कृतभाषा में) हे देव ! तुमने त्रिजगत कर्ण के चमत्कार-कारो जिस प्रेम-उद्रेक, डिण्डिम (वाद्य विशेष) का प्रदान किया है वह अब नीरव हो रहा है ॥६॥

श्रीकृष्ण—प्रिये ! ऐसा मत कहो, हे मधुरेक्षणे ! चञ्चल अपाङ्ग-भङ्गी-अभ्यासक्रीड़ा में अतिपटु बहुत सुनयना सुन्दरियाँ मौजूद हैं। परन्तु तुम्हारे विना मुझे क्षणभर भो मङ्गल-सम्भावना नहीं है। आकाश तारावली से परिवृत होकर और चन्द्रकिरण से आलिगित होकर भो बृष-राशिस्थ सूर्य को कान्ति के विना किसी प्रकार स्वच्छता प्राप्त नहीं कर सकता (पक्षान्तर में) शुद्ध मुक्ताफलों से युक्त होकर भी चन्द्रावली की कान्ति से आलिंगित होकर भो मैं बृषभानुनन्दिनी आपके विना आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता हूँ ॥१०॥

नवबृन्दा—चारुमुखी ? यह बात उपचार नहीं है सत्य ही है।

श्रीकृष्ण—प्रिये ! तुम्हारे मनोहर मुख का दर्शन कर मेरे हृदय में उपमा के लिये किसी वस्तु का प्रवेश नहीं होता है क्यों कि हे प्रिये! तुम्हारे चरणरूप गोद में कमल स्थानलाभ प्राप्त करने की विज्ञता नहीं प्राप्त कर रहा हे। रत्नमुकुर चरणांगुष्ठनख की तुल्यता विधान करने में दक्ष नहीं हो रहा है। हे चण्डि! अधिक क्या कहूँ, समुज्वल कलावाली आनन्दमयी चन्द्रावली भी तुम्हारे मुखमण्डल के निमञ्छन में औचित्य लाभ करने में समर्थ नहीं हो रही है ॥११॥

(माधवी के साथ चन्द्रावली प्रवेश कर रही है)

चन्द्रावली—माधवी ! तुमने सुना है।

माधवी—हाँ।

श्रीकृष्ण—(सम्मुख देखकर) देखो ! देखो ? देवी निकटवर्ती

आ गई है। (ऐसा कह कर सब सम्भ्रम के साथ उठ जाते हैं)

चन्द्रावली—(निकट में आकर) सखि! सत्यभामे! तुम्हारे पिता सत्राजीत् ने तुमको जिस आश्चर्य मणिन्द्र का दान किया है उसको देखने के लिए मैं आई हूँ।

नवबृन्दा—(श्रीकृष्ण के हाथ से मणि लेकर दिखाने लगती है)

चन्द्रावली—सुना है यह मणीन्द्र क्षीरोदसागर मन्थन के समय उत्पन्न हुआ है।

मधुमङ्गल—देवि! ऐसा ही है।

चन्द्रावली—वहाँ एक और आश्चर्य है।

नवबृन्दा—देवि! वह कैसा है?।

चन्द्रावली—दानवों के द्वारा धन्वन्तरि के हाथ से बलपूर्वक अमृत-कुम्भ छीने जाने पर आर्यपुत्र ने उस समय एक अपूर्वरूप को प्रगट किया था जो मोहिनी करके प्रसिद्ध है।

कृष्ण—(स्वगत) निश्चय देवी ने मुझे जान लिया है नहीं तो असमय मोहिनी की बात क्यों उठाई है।

चन्द्रावली—वह मोहिनी मूर्त्ति यथार्थ नाम की थी जिससे योगिराज शङ्कर भी अति मोहित हो गये थे। उसमें हम सब का कहना ही क्या है।

सब—(स्वगत) इस प्रकार दूरूह रूपधारण की बात देवी ने कैसे जानी।

चन्द्रावली—(मृदुहास्य के साथ) सखि! सत्यभामे इसमें ऐसा कोई उपाय है कि जिस से हम सब उस रूप को देख सकेंगे।

राधा—(ईर्ष्यापूर्वक भ्रू भङ्गी प्रकट कर कृष्ण को देखने लगी)

कृष्ण—(स्वगत) जब सम्मुख में ऐसा हुआ है तो वचन के द्वारा मेरी वञ्चन-चातुरी अत्यन्त निष्फल हुई है। (प्रकाश्य में) देवी! आज मुझको पहचानने में समर्थ होगी अथवा नहीं इसकी परीक्षा

के लिए मैंने इस वेष को धारण किया है।

चन्द्रावली--(कृत्रिम सम्भ्रम का प्रकाश कर) हाय ? हाय ? यह तो आर्यपुत्र है । (ऐसा कह कर मस्तक अवनत करने लगी)

मधुमङ्गल--भो प्रियवयस्य ! हमारी देवी तुमको पहिचान कर जीत गई है। अतः तुम अपने को चतुर मत समझो।

माधवी--आर्य ! मधुमङ्गल ! यह तो काले भुजङ्ग के दंशन में वज्राघात हो रहा है।

चन्द्रावली--मुग्धे ! माधवी ! इस महोत्सव में क्यों दुःख करती हो, इस दुर्लभ रूपामृत का पान करो।

राधा--(स्वगत) हाय हाय मैंने पराधीनता की पराकाष्ठा का अनुभव किया है।

चन्द्रावली—देव ! मैं हतभागिनी अति अमङ्गलमयी मणिदर्शन की उत्कंठा प्रकाश कर तुम्हारे निकट अपराधिनी हुई हूँ।

कृष्ण—देवि ! जैसी इच्छा तिरस्कार करो परन्तु तुम्हारी करुणा ही मेरा आश्रय है।

(नेपथ्य में) सखि ! जो सुनने का था सुना है।

मधुमङ्गल—कञ्चुकी के हाथ में यह फिर पढ़ रहा है।

कृष्ण—(स्वगत) मेधावी शुकने यह कदर्थना की है।

(पुनः नेपथ्य में) "अन्तःपुरेऽस्मिन् सत्या" अर्थात् "यह सत्यान्तपुःर में" इत्यादिश्लोक का पाठ होना।

राधा—(खेद के साथ स्वगत) उत्तम अरे कीर उत्तम, मुझे खूव अनुग्रहीत किया है। अतः अव दुर्लभ अभीष्टदान में अनुग्रह-कारी तीर्थराज कालीदह में प्रवेश कर शीघ्र हो इस शरीर को सर्प-गण को उपहार दूँगी।

(ऐसा कह कर नवबृन्दा एवं पिंगला के साथ प्रस्थान करने लगी)

चन्द्रावली—देव ! एक निवेदन करना चाहती हूँ।

कृष्ण—देवी ! आज्ञा कीजिये।

चन्द्रावली--देव ! तुम्हारे विलास-सुख का व्याघात करने के कारण मैं ने महान पाप किया है। अतः कृपा कर आज्ञा कीजिये कि मैं गोष्ठराज के गोष्ठ में निवास कर तुमको सुखी करूँ।

(नेपथ्य में) यह तो गोष्ठपति नन्दराज श्रीकृष्ण को आलिंगन करने के लिए व्याकुल होकर और बन्धुगण में वेष्टित होकर सुवर्ण-शकट में आरोहण कर यशोदा एवं पूर्णमासी के द्वारा सुशोभित होकर आनन्द से द्वारिका के द्वारपथ में प्रवेश कर रहे हैं ॥१२॥

श्रीकृष्ण—(आनन्द के साथ) सखे ! देवी के मङ्गलमय ध्यान-फल से सकुटुम्ब गोष्ठराज प्राप्त हुए हैं। अतः आओ वहीं गमन करें।

(ऐसा कहकर दोनों का प्रस्थान)

चन्द्रावली--उपयुक्त समय में बन्धुगण उपस्थित हुए हैं। (नेपथ्य में) पौर्णमासी के द्वारा मार्ग दिखाने पर परिजन के साथ यशोदा रोहिणीदेवी के गृह पर गमन कर रही हैं ॥१३॥

माधवी--सौभाग्य सौभाग्य, क्यों कि ठकुरानी रोहिणी तुम्हारे दुःख को जानती है।

चन्द्रावली--अतः चलें गुरजन की बन्दना करें। (ऐसा कह कर जाने लगीं) यह तो रानी रोहिणी का अन्तःपुर है। (नेपथ्य में) अहो गोपराज-महिषी यशोदा के नयनों से अश्रुधारा और स्तनदोनों से दुग्धधारा एक साथ वर्षित हो रही है। वे उन धाराओं से अत्यन्त स्नेह के साथ अपने पुत्र को अभिसिंचित कर रही है ॥१४॥

चन्द्रावली—यह तो गोकुलेश्वर की गोद में आर्यपुत्र उपविष्ट हैं। अतः मैं अब कुछ समय अपेक्षा करूँ।

(तदनन्तर यशोदा-पौर्णमासी-मुखरादि का प्रवेश होता है।)

यशोदा—(कृष्ण के मस्तक का आघ्राण कर अश्रुविसर्जन-पूर्वक) तात ! निश्चय तुम हमें भूल गये हो, नहीं तो बहुकाल से

मेरा स्मरण क्यों नहीं किया है।

कृष्ण—(नयनजल के साथ) मा ! इस प्रकार कह कर इस लज्जित व्यक्ति को पुनः लज्जित क्यों कर रही हो।

मुखरा—भगवति पौर्णमासि ! श्रीकृष्ण कोटि ब्रह्माण्ड के नाथ हैं ऐसा आपसे सुन कर भी मेरे निकट गोपनागर रूप से प्रतिभात हो रहा है॥

कृष्ण—(मृदु हँस कर) आर्य्य ! मुखरे ! आपने मेरे मन की वात कहा है, ऐसा आशीर्वाद दीजिये जिस से कि आप सब का उस प्रकार मङ्गलभाजन बनूँ॥

पौर्णमासी—हाय ! बहुकाल के बाद मेरा सौभाग्यवीज अंकुरित हुआ है। क्यों कि आज यशोदा की गोद में उपविष्ट माधव को देख रही हूँ॥

कृष्ण—अम्बा ! मैंने जो पशु-पक्षियों को वढ़ाया था क्या वे आप सब को सुख दे रहे हैं ?

पौर्णमासी—मुकुन्द ! सुख क्यों कहते हो, "दुःख" ऐसा कहो।

यशोदा—(संस्कृत में) तुम ने मातृवियोग से दुःखित जिस हरिण-शिशु को स्नेहभर से दुग्ध-भाण्ड में रख कर कपिला गो का दुग्ध पान करा कर परिपुष्ट कराया है वह आज तुम को न देख कर कातर होकर उच्च आर्त्तनाद के द्वारा ब्रजवासियों का मर्म भेद कर व्याघ्र के समान क्रीड़ा विस्तार कर रहा है॥१५॥

पौर्णमासी—हे कंसारि ! जिन मयूरों ने तुम को स्निग्ध पिञ्छ रूप कर्णभूषण का उपहार दिया है उन को देख कर कौन दुःखित नहीं हो रहा है, जो मयूर समूह आकाश में समुदित नीलवर्ण नवीन मेघ को देख कर "तुम उदय हुए हो" ऐसा मान कर नृत्य करता रहता है॥१६॥

कृष्ण—(क्षणकाल मौनी होकर) भगवति ! मेरे वयस्य सखाओं का मङ्गल तो कहो ?

पौर्णमासी—वे सब तुम को देखने के लिये गोपराज के साथ सुधर्म्मा प्रासाद में अपेक्षा कर रहे हैं, अतः शीघ्र उन की अभिलाषा पूर्ण करो ॥

कृष्ण—जो आप की आज्ञा, ऐसा ही करूँगा ॥

(भ्रमण करते करते स्वगत)

माता की वन्दना के लिये ललिता एव पद्मा का यहाँ आगमन उचित है ॥　　　　(ऐसा कर कर प्रस्थान)

चन्द्रावली—निकट में जाने का यह अवसर है।

(वैसा करने लगी)

पौर्णमासी—(आनन्द के साथ) गोष्ठेश्वरि ! सम्मुख में यह चन्द्रावली है ।

(चन्द्रावली निकट में जाकर वाहुयुगल के द्वारा यशोदा को आवृत करने लगी)

यशोदा—(स्नेह-पूर्वक) वत्से ! सौभाग्यवश पुनः तुम को देख रही हूँ ।　　　　(ऐसा कह कर कण्ठ धारण करने लगी)

चन्द्रावली—(यशोदा का अभिवादन कर अश्रुपूर्ण नयन से) मातः ! इस से बढ़ कर तुम्हारे कारुण्य-विलास की प्रचुरता क्या होगी ? आपने अपने चरण स्पर्श की सौभाग्य-भागिनी की ॥

यशोदा—वत्से ! हमारे उस गोकुलनिवास की वात क्या तुम भूल गई हो ?

चन्द्रावली—मातः ! कोटिमाता की भाँति स्नेहमयी आप जहाँ निवास कर रही हैं वहाँ निवास-सौभाग्य को कौन पामरी भूल सकती ।

मुखरा—(चन्द्रावली को आलिंगन कर) हा राधे ! वहुकला

से तुम को नहीं देख पाई हूँ ।

यशोदा—(व्यथा के साथ) हाय धात्रि ! तुम ने क्यों शोक-नगर की अर्गलकुञ्चिका (कुञ्चि) रूप "राधा" इस अक्षर युगल का प्रकाश किया है ? ।

चन्द्रावली—हाय कनिष्ठभगिनि ! मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि एकवार भी तुम को न देख पाई हूँ ॥

रोहिणी—हा त्रिलोकसुन्दरि वत्से ! तुम कहाँ गई हो ?

पौर्णमासी—हाय हाय ! मैं बज्र से भी कठिना हूँ, क्यों कि राधा को खोकर अब तक जीवित हो रही हूँ ॥

रोहिणी—(धैर्य्य के साथ) प्रियसखि यशोदे ! चन्द्रावली बडा कष्ट पा रही है, अतः शोकत्याग कर उस को सान्त्वना दो ।

यशोदा—(चन्द्रावली का आलिङ्गन कर) तुम दुःख मत करो, इस के प्रतिकार का कोई उपाय नही है ॥

(तदनन्तर कञ्चुकि दोनों के द्वारा अनुगम्यमाना होकर ललिता और पद्मा पृथक् रूप में प्रवेश करती है)

पद्मा—(बांए ओर देख कर आश्चर्य्यान्वित होकर) यह कौन है अपूर्वरूपा ? पहले देखी हूँ ऐसा ज्ञात होता है। (निकट में जाकर अश्रुपूर्ण नयन से) सुन्दरि ! तुम को देख कर ललिता ज्ञान कर प्रेम से विकल हो रही हूँ ॥

ललिता—(सगद्गद) सखि ! क्या तुम पद्मा हो ? ।

पद्मा—(आवेग के साथ) हाय ! यह तो ललिता है !

(ऐसा कह कर भुजाओं से वेष्टन करना)

ललिता—(गाढ़रूप में आलिङ्गन कर सजल-नयन से) प्रिय-सखी चन्द्रावली ने तुम्हें क्यों छोड दिया !

पद्मा—सखि ! मैं मन्दभागिनी हूँ ।

कञ्चुकी—यह भगवती रोहिणी का मन्दिर है, यहाँ दोनों

बहिन प्रवेश कीजिये।

दोनों—निश्चय राज्ञी की वन्दना के लिये हम दोनों को लाया गया है।

रोहिणी—भगवति! यह कौन है? जिस को देख ललिता का भ्रम हो रहा है।

पौर्णमासी—(व्यग्रता के साथ) हाय हाय, देखो यह वह राधिका की प्राणसखी है।

(ऐसा कह कर सब सम्मुख में भागने लगी हैं)

ललिता—आश्चर्य! गोकुलेश्वरी प्रमुख गोकुल के समस्त बन्धु यहाँ उपस्थित है?

(ऐसा कह कर रोदन करती करती सब के चरण-प्रान्त में गिर जाती है)

सब—(क्रन्दन करतीं उठा कर कण्ठ से लगाने लगीं)

चन्द्रावली—हाय सखि ललिते! जीवित हो?

(ऐसा कह कर आलिङ्गन करती है)

ललिता—(आनन्द से आश्चर्यान्वित हो कर) यह तो प्रियसखी चन्द्रावली है (ऐसा कह कर आलिङ्गन कर) यह तो अमृत-सागर में स्वर्ग की चिन्तामणि मिली है, क्यों कि गोकुलबन्धु के साथ तुम्हारा सङ्गलाभ हुआ है।

चन्द्रावली—ललिते! मैं तुम को भगिनी-रूप में लाभ कर रही हूँ।

ललिता—हा सखि राधे! तुम्हारा दर्शन दुर्लभ हुआ है।

(मुखरा का आलिङ्गन कर रोदन करने लगी)

पद्मा—(चन्द्रावली का आलिङ्गन कर) हाय प्रियसखि! भाग्यवश तुम को देख पाई हूँ।

पौर्णमासी—देखो यह रुक्मिणीमूर्त्ति पद्मा का आलिङ्गन कर

नयनजल से द्रवित (विगलित) हो रही है।

ललिता—(विस्मय के साथ) भगवति ! प्रियसखी रुक्मिणी को चन्द्रावली करके सुना जा रहा है।

पौर्णमासी—ऐसा ही है।

ललिता—तो सूर्यदत्ता अर्वाचीना सत्यभामा नाम्नी कुमारी का दुःख निदान यह प्रसिद्धि क्यों है ?

पौर्णमासी—वत्से चन्द्रावलि ! बलदेव-जननी रोहिणी-मुख से तुम्हारे दुःख का कारण सुना है, अतः चिन्ता मत करना।

यशोदा—वत्से ! तुम ही राधिका स्थान पर वर्त्तमान हो, तब हमारे सम्मुख तुम्हारी क्या चिन्ता है।

चन्द्रावली—सखि ललिते ! सुनो,

(संस्कृत में) हाय ! जो मेरे प्राणों से भी प्रियतम होने में उपयुक्त है, वह सौन्दर्य्य-अवलोकन क्षणकाल के लिये भी नयन पथ के पथिक न हुआ, परन्तु जो दुरन्त मनोवेदना में दक्ष है वह मेरे श्रेष्ठ सहवासि रूप में यहाँ वास करने लगी ॥१७॥

(व्यस्त होकर वकुला प्रवेश करती है)

वकुला—देवि ! मैं पुनः पुनः निषेध कर रही हूँ तो भी वह सत्या भाषण सर्पों से परिपूर्ण कालियह्लद में प्रवेश करने को जा रही है।

पौर्णमासी—भाग्यवश पद्मिनी-हृदय उत्तापकारी शीतलपवन सर्पों के मुखविवर में विलीन हो गई।

वकुला— देखा है, नवबृन्दा के भर्त्ता को यह कथा जनाने पर वह विह्वल होकर सत्या का अनुसरण कर रहे हैं।

सब—विलम्ब से प्रयोजन नहीं चलो उस सर्पावास में चलो।

(ऐसा कह कर स्खलितगति से सब का प्रस्थान)

(अनन्तर पिङ्गला के द्वारा अभ्यर्थमाना राधिका प्रवेश करती है)

राधा—(संस्कृत से) सवप्रकार से परतन्त्रता के कारण श्रीकृष्ण-सग मेरे लिये सुखजनक नहीं हुआ है। मिलन से भी दुःखमय विच्छेद का भय रहता है। अतः मरण ही मेरी एक मात्र गति यह निश्चय है ॥

पिङ्गला—राजनन्दिनि ! तुम्हारा इस प्रकार साहस उचित नहीं है।

राधा—(अवज्ञा के साथ) सखि ! यह कालि-ह्लद निविड तरङ्गभङ्गी के साथ सचरित कृष्णभुजङ्गमण्डली के द्वारा मेरे नयनों का आनन्द विधान कर रहा है।

(वामाक्षिस्पन्दन का अभिनय कर तिरस्कार पूर्वक संस्कृत में) मेरी वामदृष्टि रूपिणी लूता कृपणा होकर भी स्फुरित हो कर प्राण पतङ्ग को धरने लिये के चारों ओर आशाजाल का विस्तार कर रही है ॥२०॥

पिङ्गला--निकट में मङ्गल की सूचना हो रही है अतः मुहूर्त्त काल की अपेक्षा करो ॥

राधा--दृष्टि मर्कटी के आश्वास में मेरा क्या विश्वास है ?

(ऐसा कह कर अवतरण करने लगी)

(तदनन्तर नवबृन्दा के साथ श्रीकृष्ण का प्रवेश)

कृष्ण—हे कठोरे ! शीतल-छाया युक्त सौरभमयी यह तनुलता को जो कि मेरे चिर विरही प्राणपक्षी का एक मात्र आश्रयस्थल है उस को अत्यन्त कृश कर सद्य सर्पविष रूप अग्नि में निक्षेप कर रही हो, हाय ! तुम मेरे लिये विन्दुमात्र करुणा नहीं कर रही हो ॥२१॥

(एसा कह कर ह्लदावगाहन का अभिनय करने लगे)

नवबृन्दा—देव ! यह मणीन्द्र समस्त अनर्थ दूर करता है।

(ऐसा कह कर श्रीकृष्ण-मणिबन्ध में मणिबन्धन करने लगी)

राधा—हाय धिक् हाय धिक् इस हतभागिनी को सर्प भी दंशन नहीं कर रहे हैं ।

(ऐसा कह कर सर्पों के निकट जाने लगी)

कृष्ण—(सम्भ्रम भर से निकट गमन कर) महासाहसिनि ! यह क्या अन्याय कार्य्य कर रही हो ।

(ऐसा कह कर पृष्ठदेश से दोनों भुजाओं द्वारा कण्ठ-देश धारण करने लगे)

राधा—(शोक से अनसुनी की भाँति आनन्द पूर्वक) बडा भाग्य है, एक ही साथ दो भुजङ्ग मुझ को वेष्टन कर रहे हैं । (ऐसा कह कर स्पर्शसुखानुभव का अभिनय कर) उपयुक्त समय पर अपकारी बस्तु भी प्रिय हो जाती है क्यों कि यह सर्पस्पर्श भी सुख-बोध हो रहा है (ऐसा कह कर संस्कृत में) अनुकूल विधाता ने इतने दिवस के बाद मेरे चिरवाञ्छित का साधन किया है, इतने दिवस के बाद मैं कृष्णभुजङ्ग को प्राप्त हुई । अब तो मेरी यातनाएे चिरकाल के लिये दूर होंगीं ॥२८॥

नवबृन्दा—परमसौभाग्य, श्रीकृष्ण-बाहु में इसको इस प्रकार का ज्ञान हो रहा है ।

राधा—(नेत्र को ईषत् उन्मीलित कर) आश्चर्य, मणिकान्ति के द्वारा भूषित मस्तक होकर यह भुजङ्ग मुझे दंशन नहीं कर रहा है ।

नवबृन्दा—हे सौभाग्यवती ! निर्मल मलयवायु सेवी चक्रांकित मणिधारी कृष्ण-भुजङ्ग एवं कृष्ण-भुजा इन दोनों में कोई भेद नहीं है ।

कृष्ण—हे मनोहराङ्गी ! तुम्हारे सौन्दर्य-माधुर्य समूह से लक्ष्मी तक भी भीत होती है । उस अपूर्व शरीर को परित्याग कर जगत् को विफल नेत्र करने में क्यों उद्यत हो रही हो ।

राधा-- (वक्रग्रीवाकर देखती हुई) हाय धिक्कार धिकार मैं निहत होकर के भी विशेष रूप से निहत हो गई हूँ क्यों कि इस नगण्य व्यक्ति के लिये आप अपने त्रिलोक सुखवर्धनकारी शरीर को कालीदह में निक्षेप कर रहे है ।

कृष्ण—(तट में आकर राधिका के हाथ में स्यमन्तक मणि बांधकर मृदु हास्य के साथ तिरस्कार पूर्वक)
हे निष्ठुरे ! तुम अनुराग से स्वयं सर्पों के विषदन्त का भंजन कर भोगाभिलाषी मुझे कामना वस्तुओं से निवारण करने में क्यों उद्यता हुई हो। (ऐसा कह कर पिङ्गला के साथ दोनों का प्रस्थान) तदनन्तर पौर्णमासी आदि के द्वारा अनुगम्यमाना होकर रोती हुई रोती हुई यशोदा प्रवेश करती हैं)

यशोदा—हाय हाय ! उस कालिय ने हतास होकर चला गया है, पुनः इस मन्दभागिनी के लिए वह आ रहा है।
नवबृन्दा—(स्वगत) राधिका को परवश्यता रूप बाधा निवृत्त करने के लिए मैंने जिस कौशल की अवतारणा की है वह सिद्ध हुआ है (प्रकाश्य में) हाय पूजनीय आर्य्यागण ! अब आप सब शान्त होइये। क्यों कि खेद परित्याग के लिए गरुड़ध्वज सत्यभामा को उठा कर तीर में (तट पर) आगये हैं ।

सब—(गद् गद में) अच्छा है अच्छा है, मङ्गल मङ्गल (ऐसा कह कर धैर्य धारण करने लगे) (नेपथ्य में) दुर्गादेवी को पार्श्व में रख कर श्रेष्ठ बृषभ-आरोहण पूर्वक अर्धचन्द्रचूड़ महादेव जी त्रिभुवन के गुरु पद्मयोनि ब्रह्मा को आगे कर श्रीकृष्ण दर्शन के लिए शीघ्र ही द्वारिकापुरी में प्रवेश कर रहे हैं ।।२५-२६।।

नवबृन्दा— देखो देखो, गिरीन्द्रनन्दिनीवल्लभ शङ्कर के आनन्द बर्धन के लिए मुकुन्द आगे आकर उपस्थित हो रहे हैं ।

सब—(दूर से श्रीकृष्ण को देखकर आनन्द प्रकाशित करने लगे)

पौर्णमासी—नवबृन्दे ! तुम्हारी प्राणसखी सत्या कहाँ है।

नवबृन्दा—आगे माधवमण्डप में।

पौर्णमासी—हरि के बिना जाने शीघ्र सत्या को कुण्डननगर में भेजती हूँ।

मुखरा—मैं जाकर उसको ले आती हूँ। (ऐसा कह कर भ्रमण करने लगी)

(पिङ्गला के साथ राधा प्रवेश करती है)

राधा—सखि ! यहाँ कौन कथोपकथन कर रही है ? ।

पिङ्गला--देवि ! रुक्मिणि के कुटुम्ब गण तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं।

राधा--हाय ! मेरे लिए मरण दुर्लभ हो रहा है। (ऐसा कह कर मुख ढ़क कर रोदन करती है)

मुखरा--(दूर से देख कर चमत्कार के साथ फिर आती हैं।)

पौर्णमासी--मुखरे ! क्यों फिर आरही हो ।

मुखरा—भगवती ! कुछ बोलना चाहती हूँ परन्तु भय होरहा है।

पौर्णमासी—मुग्धे ! भय क्या है, विश्वस्त चित्त से कहो।

मुखरा—(अश्रुपूर्ण गद् गद कण्ठ से कान कान में) ऐसा है।

पौर्णमासी—(तिरस्कार पूर्वक)प्रलापिनी ! चुप हो तुम्हारा ऐसा भाग्य कहाँ है।

यशोदा—भगवती ! यह क्या कर रही है।

पौर्णमासी—गोकलेश्वरी ! वह अवश्यम्भाविनी कथा है।

मुखरा—(पुनः कान कान में कहने लगी)

पौर्णमासी—जान लिया जान लिया महारत्न के कारण तुम भ्रान्ता हो रही हो।

मुखरा—नातनी ललिते ! तुम एक बार आकर देखो।

ललिता—(पौर्णमासी के मुख के प्रति देखने लगी।)

पौर्णमासी—वहाँ जाती हूँ, उस में दोष क्या है (सब का गमन में उद्यत होना)

पौर्णमासी— (ललिता एवं मुखरा के साथ कुछ आगे जाकर औत्सुक्य के साथ) यद्यपि इस सौन्दर्य का सर्वाङ्ग नहीं दीख रहा है तो भी यह वराङ्गी मेरे अन्तः में कुछ करुणा का संचार कर चमत्कार आरोप कर रही है।

ललिता—(निकट में जाकर गद्गद से) अयि! क्षिणोदरी! क्यों रोती हो।

राधा—(मुख से अञ्चल दूर कर रोती रोती) हाय हाय! यह तो मेरी प्रियसखी ललिता कहाँ से आई है। हाय! वत्सला भगवती कहाँ से आई और आर्या मुखरा भी कहाँ से आई। (ऐसा कह कर आनन्द से घूर्णित होकर पृथ्वी में गिरजाती है)

ललिता—(विचित्र रूप से शब्द करती हुई राधा को आलिङ्गन कर प्रमोद मूर्छा को प्राप्त होती है)

पौर्णमासी--अहो! वत्सा राधिका किस प्रकार यहाँ आई है। (ऐसा कह कर उच्चैःस्वर से रोने लगी)

मुखरा--नातिनी! पुनः तुमको प्राप्त किया है। (ऐसा कह कर उन्माद का आचरण करने लगी)

यशोदा-- (रोहिणी के साथ भागकर गद्गद के साथ) हा वत्से! तुम जीवित हो (ऐसा कह कर मुखचुम्बन करने लगी)।

चन्द्रावली--(कम्पिताङ्ग होकर) क्या? यह मेरी भगिनी राधिका है। (ऐसा कह कर स्खलित गति से राधा का कण्ठ धारण करने लगी)

पौर्णमासी--अहो! तीव्र तृष्णार्त्तों के लिए मरुप्रदेश में स्वयं कृतिम नदी उपस्थित हुई है।

राधा--(सबका चरण बन्दन कर उत्कण्ठा के साथ) मेरी

भगिनी चन्द्रावली कुशल में है ? ।

चन्द्रावली--(गाढ आलिङ्गन कर) वहिन ! यह दुर्जन हत-भागिनी चन्द्रावली है ।

(ऐसा कह कर रुदन करती है)

राधा--(आनन्द सम्भ्रम के साथ चरण में गिर कर) हा धिक् हा धिक् हतदैव के द्वारा मैं प्रतारित हुई हूँ ।

(अनन्तर कृष्ण का प्रवेश)

कृष्ण-- (आनन्द के साथ) वहुकाल के बाद अपने को गोकुल-वासी मान कर आनन्द-मुग्ध हो रहा हूँ ।

यशोदा—(कृष्ण का आलिङ्गन कर) तात ! वड़े सौभाग्य का विषय है कि वधू को लेकर तुम कालीदह से निष्क्रान्त हुए हो ।

नवबृन्दा—गोकुलेश्वरी ! वह भुजङ्गसङ्गती मायामयी है ।

(ऐसा सुनकर सब हँसने लगे)

ललिता—सखि ! राधे ! विशाखा कहाँ है ? ।

नवबृन्दा—देखो यह विशाखा निज निर्झर से उठकर आनन्द के साथ आ रही है ।

सव—(प्रत्युद्गमन कर विशाखा को आलिङ्गन करने लगे।)

विशाखा—(गुरुजनों का चरणबन्दन कर राधा का आलिङ्गन करती है)

ललिता—हे सखि विशाखे ! सौभाग्य से ही तुम्हें देखा है ।

(ऐसा कह कर दोनों आलिङ्गन करती हैं)

चन्द्रावली—(जनान्तिक में) भगवती ! मेरे वचन के अनु-सार राधिका के पाणिग्रहण के लिए आर्यपुत्र को निवेदन कीजिये ।

पौर्णमासी—वत्से ! तुम सर्वजनों के शीर्ष स्थानियाँ हो । अतः श्रवण करो । हे देवी ! तुम से मधुरिपु के हाथ में राधिका को सम-र्पण करने पर इनका विवाह विधान में रत्नधारा अभिषेक की प्रेम

सौभाग्य रूप घण्टाध्वनि त्रिजगत में हर्ष-विधान करेगी और "यह साध्वी है यह देवी है" यह प्रसिद्धि चिरकाल उदित रहेगी।

चन्द्रावली—(हर्ष के साथ) आर्ये ! मेरी ऐसी इच्छा है अतः गोकुलेश्वरी के साथ इसका सम्पादन कीजिये।

पौर्णमासी—(यशोदा को निवेदन करने लगी)

यशोदा—पुत्र ! वत्सा चन्द्रावली कुछ निवेदन करना चाहती है।

कृष्ण—मातः ! आज्ञा दीजिये, इसकी किस अभिलाषा को पूर्ण करूँ।

यशोदा—इस प्रकार।

कृष्ण—मातः ! जैसी आज्ञा, ऐसा ही होगा। (ऐसा कहकर निकट में जाकर जनान्तिक में देवी के प्रति) देवी ! यह गुरुतर महाभार अत्यन्त दुर्वह है। अतः इससे और कुछ आदेश करो।

चन्द्रावली—(प्रणय ईर्ष्या के साथ) उपयुक्त समय पाकर भय करना तुम्हारे पक्ष में उचित है। (ऐसा कहकर राधा का कर धारण पूर्वक) हे पुण्डरीकाक्ष ! यह मेरी भगिनी है। आप मुझ से अधिक इसका आदर करना (ऐसा कह कर श्रीकृष्ण के हाथ में समर्पण करने लगी)

कृष्ण—(मृदुस्वर से) देवी ! तुम्हारे अनुग्रह को कौन अभ्यर्थना नहीं करेगा। (ऐसा कह आदर के साथ ग्रहण करने लगे)। (नेपथ्य में) जाम्बवान् के मुख से यह वृत्तान्त अवगत कर पर्वतराज विन्ध्य रैवत पर्वत के साथ बांऐ हाथ में गोवर्द्धन का हाथ ग्रहण कर अपने नगर से श्रीकृष्णनगरी में प्रवेश कर रहा है।

पौर्णमासी—देखो देखो वसुदेवजी वृष्णीवंशीय वीरों से परिवृत होकर हलधर का हाथ धारण कर अपूर्व विवाहवेदी में प्रवेश कर रहे हैं। इधर देवकी यदुकुल-रमणियों से सेवित होकर रेवती देवी को सद्भाव से ग्रहण कर उपस्थित हो रही है ॥२७॥

नवबृन्दा—देखो देखो ! श्यामा उत्कण्ठिता होकर दोनों हस्तों से भद्रा का दक्षिणहस्त एवं शैव्या का वाम हस्त ग्रहण कर आगे आ रही है। (नेपथ्य में) श्रीराधिका के विवाह-विधान में देवी रुक्मिणी प्रसन्न होकर अपने पिता का प्रण खण्डन करने लगी। उस समय कार्यदक्ष गरुड़ मृदुहास्य के साथ उन कुमारिओं के सोलह हजार एक सौ को लाकर पर्ववेदी में प्रवेश कर रहा है ॥२८-२९॥

यशोदा—आश्चर्य, दैव की एक समय सब प्रकार से अनुकुलता होती है।

पौर्णमासी—देखो देखो दाहिन में श्रीदाम के साथ एवं बांये ओर सुबल के साथ सुशोभित होकर परम आनन्द के साथ सम्मुख में नन्द प्रवेश कर रहे हैं। (उसी प्रकार नन्द का प्रवेश होना)॥३०॥

नन्द—भगवती ! चिर पोषित मनोरथ का पूर्ण होने के कारण में चरितार्थ हो गया हूँ। (श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करने लगे)

(राधा एवं चन्द्रावली पौर्णमासी के अन्तराल में रहकर गोपराज-नन्द को प्रणाम कर रही है।)

नन्द—वत्स ! परस्पर परस्पर को प्राण से भी अधिक मान कर सौभाग्यवती हो ।

पौर्णमासी—समस्त सतीबृन्दों के साथ यह अरुन्धती पथ-रोध कर रही है, और अखण्डित व्रतवाली अगस्त्य-पत्नी लोपमुद्रा आकर मिल रही है ॥३१॥

नवबृन्दा—देखो देखो ! देवताओं के अधिपति इन्द्र पुलोमतनया सची को लेकर, कुवेर अपनी भार्या रिद्धी को लेकर, सूर्य-सुत यम धूमोर्णा को लेकर, वरुण गौरी नाम्नी भार्या को लेकर, चण्ड-किरणवाला सूर्य अपनी पत्नी विश्वकर्मा पुत्री संज्ञा को लेकर, वायु-देव शिवा को लेकर, अग्निदेव अपनी पत्नी स्वाहा को लेकर, और चन्द्रदेव रोहिणी को लेकर द्वारिका में उपस्थित हो रहे हैं ॥३२॥

(नेपथ्य में) यह सैरिन्ध्री (कुब्जा) नाना प्रकार सुगन्ध अङ्ग-राग को प्रस्तुत कर रही है। आगे सुदामा आनन्दित मन से प्रचुर माला ग्रन्थन कर रहा है । यह तन्तुवाय विविध उत्कृष्ट वस्त्रों को रचना कर रहा है। इस प्रकार अति आनन्द से विह्वलचित्त परि-जनों से पूर्ण होकर द्वारिका नगरी अत्यन्त उल्लास प्रकट कर रही है। ॥३३॥

ललिता—विशाखे ! पुनः श्रीराधाकृष्ण दोनों का सङ्गम महोत्सव दर्शन कर तुम अत्यन्त कृतार्थ हुई हो।

पौर्णमासी—हे यशोदामात अर्थात् श्रीकृष्ण ! अभिषेक की समस्त वस्तु उपस्थित है। अतः पहले राधा के साथ पर्ववेदि को भूषित करो और उसके बाद क्रम से कुमारिओं के साथ विवाह वेदिओं को अलङ्कृत करो।

कृष्ण—(सब का अभिनन्दन कर निर्जन में) प्राणेश्वरी राधे ! प्रार्थना करो इससे आगे तुम्हारा क्या प्रिय करूँगा।

राधा—(आनन्द के साथ संस्कृत में) स्वभाव से मधुर प्रेम से मनोहारिणी वे सखीगण आकर मिलित हो रही हैं । भगिनी चन्द्रावली एवं श्वश्रु गोष्ठेश्वरी को प्राप्त हुई हूँ । इस बृन्दावन के निकुञ्ज धाम में आपके साथ नाना रस सम्पन्न मिलनोत्सव सम्पन्न हुआ है। अतः इसके आगे मेरा क्या प्रियतर कर्तव्य अवशिष्ट रहा है। तो भी ऐसा हो-ये सब स्थिरबुद्धिवाले जनगण बहुकाल से तुम में आशा मात्र धारण कर माधुर्यमय गम्भीर मधुपुर में निवास कर रहे हैं। हे गोकुलपते ! किशारवय का सख्यता धारण कर तुमको अवश्य उनके नयनपथ के पथिक होना पड़ेगा ॥३४-३५॥

और भी तुम्हारे लीलास्थान समूह को सौरभ विस्तारकारी वनसमूह से परिव्याप्त और माधुर्य समूह से परवेष्टित मथुरा नामक जो पवित्र भूमि विराज मान है उसमें गोपीभाव से मुग्धचित्त हम सब से परवेष्टित होकर प्रफुल्ल-वदन से उल्लासमय वेणु वादन करो।

कृष्ण—प्रिये ! ऐसा ही होगा ।

राधा—किस प्रकार ।

कृष्ण—(स्थगित की भाँति दायीं ओर दृष्टिपात करने लगे)

(गार्गी के साथ एकानंशा का प्रवेश)

एकानंशा—सखि ! राधे इसमें कुछ संशय मत करो । क्योंकि तुम सब उस श्रीमद्‌गोकुल में वर्तमान हो । परन्तु मैंने समय-क्षपण के लिए लीला विस्तार किया है । अतः इसको मन मन में अनुभव करो । श्रीकृष्ण भी उस गोकुल में आकर अवस्थित हैं, ऐसा विश्वास करो ।

गार्गी—(स्वगत) मैंने पिता के मुख से जो सुना वह सफल हुआ ।

राधा—(समस्त श्रवण कर आनन्द से विह्वल होने लगी)

गार्गी—सखि ! शान्त हो ।

राधा—(आश्वासित होकर वक्रदृष्टि से श्रीकृष्ण को देखने लगी)

कृष्ण—प्रिये ! तुम्हारा और अधिक क्या प्रिय साधन करूँगा ।

राधा—(मृदुहास्य कर) हम सब वहिरङ्ग जन के द्वारा अलक्षित होकर अपने अपने स्वरूप से गोकुल को विभूषित करेंगी ।

कृष्ण—प्रिये ऐसा ही होगा । अब आओ तुम्हारी भगिनी की प्रार्थना को सफल करें ॥३६–३७॥

(ऐसा कहकर सबसे आवृत होकर दोनों चले जाते हैं)

सब का प्रस्थान होता है ।

यहाँ ललितमाधवनाटक के पूर्ण–मनोरथ नामक दशमोऽङ्क समाप्त हुआ ।

इस नाटक में मन्मथ मनोहारी श्रीहरि अपने इच्छारूप समुचित उदात्त नायकता को प्रकाश कर लीला के द्वारा ललितभाव प्राप्त हो रहे हैं ।

यह ललितमाधव नाटक समाप्त हो रहा है ।

श्रीश्रीराधारमणो जयति

श्रीरामशिष्यं कटके सुजन्मं पौगण्डकाले गुरुसान्निधाप्तम् ।
गौरोदयोर्व्यां परियान्तमाशु श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।१

गौराङ्गदासादिभिरुन्मदेन वृन्दावने वासकृतं सहर्षम्।
भावानुरागेण वदन्तमुच्चैः श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।२

गौडीयभक्तै रचिता रसाढ्या उद्दीपिता ग्रन्थवरा हि येन ।
साहित्यरत्नं ब्रजभूषणं तं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।३

विज्ञैः समेतं सुमनःसरस्स्थं ग्रन्थानुलेखं परिशोधयन्तम् ।
सद्भक्तिसिद्धान्तनिधिं सनिष्टं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।४

सौम्यं कृपालुं मधुभाषकण्ठं शुक्लाम्बरं क्षीणतनुं नितान्तम् ।
निःसङ्गमानन्दवपुं महान्तं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।५

लीलास्मरन्तं सततं जपन्तं देवाग्र उन्मत्तपरं नटन्तम् ।
संकीर्तनामोदमोदं प्रसिद्धं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।६

भक्ताधरोच्छिष्टललातिचित्तं स्नेहाभिमूर्तिं चलनातिधीरम्
भक्तानभक्ताञ्च नमन्तमुत्कं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।७

रोमाञ्चकम्पाश्रुतरङ्गयुक्तं मुग्धं प्रशान्तं नितरां हसन्तम् ।
वैराग्यसिन्धुं करुणैकबन्धुं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।८
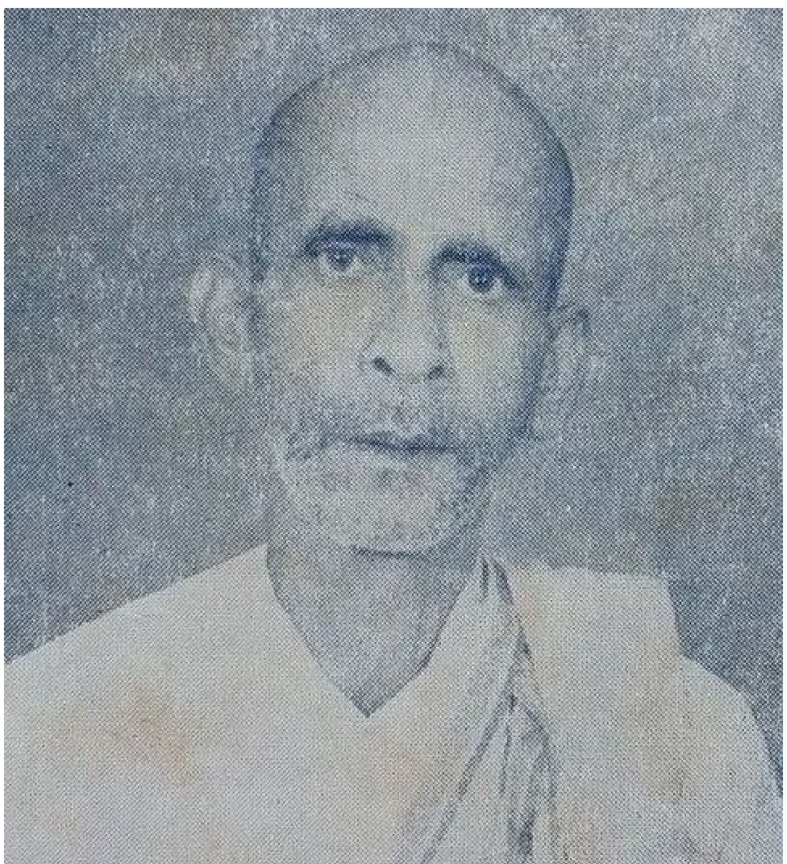
इति श्रीश्रीवृन्दावननिवासिना श्रीश्रीवृन्दावनदासेन विरचितं
श्रीश्रीकृष्णदासाष्टकं सम्पूर्णम्